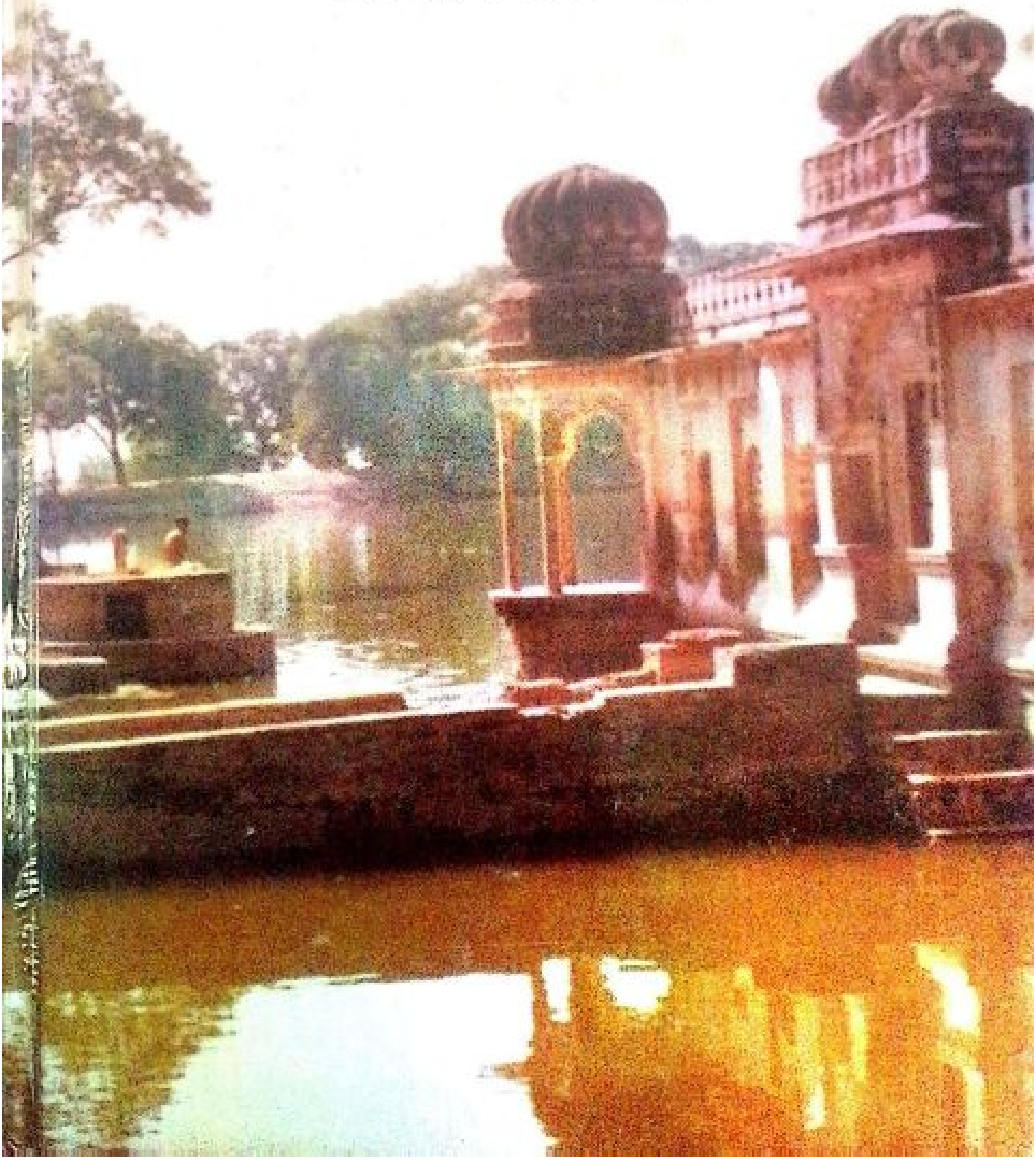
मालवा के राठौड़

लेखक

डा. रेखा द्विवेदी

डा. सहदेवसिंह चौहान



मालवा के राठौड़

लेखक
डा. रेखा द्विवेदी
डा. सहदेवसिंह चौहान

श्री नटनागर शोध संस्थान,
सीतामऊ (म.प्र.)

प्रथम संस्करण – 2012 ई.

मूल्य :– 500.00 (पाँच सौ रुपये)

प्रकाशक :– श्री नटनागर शोध संस्थान,
सीतामऊ, (मालवा), 458990

मुद्रक :– बी.आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन
425, नीमड़ी कालोनी, अशोक विहार फेज–4,
दिल्ली, 110052

विषय सूची

H.H. GAJSINGH II
MAHARAJA OF MARWAR-JODHPUR

UMAID BHAWAN PALACE
JODHPUR - 342 006

12.07.2012

शुभ संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष की अनुभूति हुई कि महाराजकुमार रघुबीरसिंहजी द्वारा स्थापित "श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ" निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है तथा समय-समय पर इतिहास अनुसंधान के कार्य में भी गतिमान है।

"मालवा के राठौड़" नामक यह पुस्तक निसंदेह मालवा और भारतवर्ष के राठौड़ों के गौरवमय इतिहास लेखन में एक महत्वपूर्ण शोध ग्रन्थ है। मालवा अपनी भौगोलिक विशेषता के साथ ही साथ यहां के वीरों की वंश परम्परागत धवलकीर्ति को उजागर करने वाला प्रान्त रहा है। इस प्रान्त पर मारवाड़ के राठौड़ राजवंश से निकली हुई शाखाएं रतलाम, सीतामऊ, अमझेरा, झाबुआ एवं कन्नौज के राठौड़ों की शाखाएं अलीराजपुर व जोबट तथा इन शाखाओं से निकली उपशाखाओं के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का शोधपूर्ण लेखन इस पुस्तक का मौलिक आधार है।

पुस्तक के लेखक द्वय डॉ. रेखा द्विवेदी एवं डॉ. सहदेवसिंह चौहान ने मालवा का संक्षिप्त परिचय देने के साथ राठौड़ राजवंशों एवं ठिकानों के इतिहास के साथ-साथ वंशावलियां देकर वर्तमान पीढ़ियों को उनके पूर्वजों के गौरवमय इतिहास से जोड़ने का प्रयास किया है जो सराहनीय है।

संस्थान के पूर्व अध्यक्ष, स्व. महाराजा कृष्णसिंहजी ने **"मालवा के राठौड़"** इतिहास की महती योजना को प्रारम्भ कर इस क्षेत्र के इतिहास की महत्वपूर्ण कमी को पूरा करने का काम किया है और इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ के अध्यक्ष एवं सीतामऊ महाराजा पुरंजयसिंहजी को हार्दिक बधाई देता हूँ।

शुभकामनाओं सहित।

महाराजा गजसिंह
मारवाड़-जोधपुर

TEL : PALACE : 0291-2510101-8, OFFICE : 2511110 FAX : 0291-2510928 e-mail : office@maharajajodhpur.com

भूमिका

मुगल सम्राट अकबर के शासन काल में ही जोधपुर राज्य के संस्थापक जोधा के वंशजों ने मालवा में आकर बसना प्रारम्भ कर दिया था; मालवा और गुजरात की सीमा पर झाबुआ एवं अमझेरा राज्यों की स्थापना भी उसके वंशजों द्वारा यहाँ की गयी थी। 15वीं शताब्दी में अलीराजपुर तथा जोबट राज्य की स्थापना हुई। आगे जाकर 'मोटा राजा' उदयसिंह के पुत्रों में से रतनसिंह द्वारा रतलाम के प्रथम राज्य की स्थापना की गयी। रतनसिंह के साथ उसके रिश्तेदार भी तब मालवा में बसने लगे थे। रतलाम राज्य के वंशजों ने ही सैलाना राज्य की स्थापना की तथा रतलाम के जप्त होने के बाद वहाँ के शासक केशवदास को कालान्तर में तीतरोद का परगना मिला और उसके द्वारा सीतामऊ राज्य की स्थापना की गयी।

यों शनैः शनैः मालवा में रतलाम, सीतामऊ, सैलाना, अमझेरा, झाबुआ आदि राठौड़ रियासतों की स्थापना वीरवर जोधा के वंशजों द्वारा की गयी थी। अलीराजपुर एवं जोबट रियासत मालवा में पूर्व में विद्यमान थी। इन राठौड़ रियासतों में से रतलाम के प्रथम राज्य' पर सर्व प्रथम महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंह ने एक विस्तृत इतिहास की रचना की जिसे राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा 1950 ई. में प्रकाशित किया गया। सीतामऊ राज्य का इतिहास भी डा. रघुबीरसिंह की प्रेरणा से डा. शिवदत्तदान बारहठ द्वारा लिखा गया जिसे सम्पादित किया डा. मनोहरसिंह राणावत ने और 2002 ई. में श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ द्वारा प्रकाशित किया गया। अमझेरा राज्य का इतिहास ठा. रघुनाथसिंह संदला द्वारा लिखा गया, जिसे राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर द्वारा प्रकाशित किया गया। इसी प्रकार झाबुआ, अलीराजपुर, जोबट आदि राज्यों के राजनैतिक इतिहास पर पी–एच.डी. शोध प्रबंध लिखे गये।

मालवा के राठौड़ रियासतों पर तो पूर्व में लेखन कार्य हुआ है, लेकिन मालवा के क्षेत्रीय राठौड़ जागीरदारों पर अब तक कोई शोध पूर्ण कार्य नहीं हुआ। इस ग्रंथ में प्रथम बार मालवा क्षेत्र के राठौड़ जागीरदारों

का इतिहास और क्षेत्रीय इतिहास में उनके योगदान का विवरण दिया जा रहा है । मारवाड़ में राठौड़ों के इतिहास पर अनेक लेखनी चली और कई राठौड़ खापों का विस्तृत इतिहास लिखा गया। परन्तु मालवा इस कमी को पूरा नहीं कर पाया था। मालवा के राठौड़ों ने भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व योगदान दिया था। यहाँ के राठौड़ जागीरदारों तथा उनके सगे सम्बन्धियों ने न केवल राजनैतिक किन्तु अनेक निर्माण कार्यों को अंजाम देकर भारतीय स्थापत्य एवं संस्कृति में भी अपना अमूल्य योगदान दिया था। इतिहास की इन विलुप्त कड़ियों को प्रकाश में लाना आवश्यक था। अतः मेरे पिता एवं श्री नटनागर शोध संस्थान के भूतपूर्व अध्यक्ष के.एस. राठौर साहब का सपना था कि सम्पूर्ण मालवा में बिखरे इन राठौड़ वीरों के इतिहास को एक कड़ी में पिरोया जाय। उन्होंने अपने जीवनकाल में ही इस कार्य को करवाने का बीड़ा उठाया और इसी तारतम्य में मालवा के राठौड़ों का वृहत इतिहास लिखने के लिये श्री नटनागर शोध संस्थान के अधिकारियों को निर्देश दिये गये। उन्हीं के सुनिर्देशन में प्रश्नावली तैयार करके सभी रियासतों के राठौड़ जागीरदारों के पते प्राप्त कर डाक द्वारा उन्हें प्रश्नावलियाँ भेजी गयीं जिसके तहत उनकी समस्त ऐतिहासिक जानकारी चाही गयी थी परन्तु दुर्भाग्य से कुछ चार–छः प्रश्नावलियाँ ही भरकर वापस आई, तब संस्थान के अधिकारियों द्वारा समस्त राठौड़ रियासतों की राठौड़ जागीरों का सर्वे कर उनकी वंशावली तथा कुछ ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त की गयी। समस्त ऐतिहासिक सामग्री को एकत्र करके 'मालवा के राठौड़' शीर्षक से एक वृहत इतिहास की रचना की गयी।

प्रस्तुत ग्रंथ में उपरोक्त समस्त राठौड़ रियासतों एवं इनकी समस्त राठौड़ जागीरदारों का संक्षिप्त इतिहास, इनकी वंशावलियाँ आदि देने का भरसक प्रयास किया गया है।

ग्रंथ लेखन में आधार ग्रंथों के लिये श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में संग्रहीत प्राथमिक आधार सामग्री विशेषकर गुरां निर्भयसिंह संग्रह, बड़वा की पोथियाँ, सीतामऊ राज्य की अभिलेखीय सामग्री, तत्कालीन पत्राचार, शिलालेखों का उपयोग किया गया है तथा सर्वेक्षण के द्वारा भी

इसे पूर्णता प्रदान की गयी है। विभिन्न प्रयासों के बावजूद भी अलीराजपुर के ठिकाने, सोंडवा, मोरासा, ओंडवा, पिपलियावाट, चापरिया तथा जोबट के ठिकाने बोरझाड़, कन्दा आदि का इतिहास प्राप्त नहीं हो पाया। जावरा वैसे तो राठौड़ रियासत नहीं थी परन्तु वहाँ भी कुछ ठिकाने राठौड़ों के विद्यमान थे, अतः मालवा में होने के नाते उन ठिकानों की वंशावलियाँ भी ग्रंथ में जोड़ दी गयी है।

यों इस ग्रंथ को मौलिक एवं संशोधकों के लिये उपयोगी बनाने का प्रयास श्री नटनागर शोध संस्थान द्वारा किया गया है।

ग्रंथ के लेखन का कार्य संस्थान के शोध अधिकारी डा. रेखा द्विवेदी तथा डा. सहदेवसिंह चौहान द्वारा संस्थान के उपनिदेशक डा. मनोहरसिंह राणावत के निर्देशन में किया गया। साथ ही डा. मनोहरसिंह राणावत द्वारा इसका सम्पादन भी किया गया। ग्रंथ को पूर्ण करने में समय–समय पर महाराज राजसिंह, सीतामऊ का भी अभूतपूर्व योगदान रहा उनके द्वारा समय–समय पर अनेक निर्देश मिलते रहे। कम्प्यूटर टाइपिंग एवं सेटिंग का कार्य श्री पंकज आसलिया द्वारा किया गया। प्रूफ रिडिंग का कार्य श्री राजनारायण द्विवेदी एवं श्री कृष्णपालसिंह चौहान द्वारा किया गया तथा फाइनल प्रूफ रिडिंग डा. रेखा द्विवेदी एवं डा. सहदेवसिंह चौहान द्वारा की गयी।

आशा है विद्वतजन ग्रंथ में रही कमियों की ओर संस्थान का ध्यान आकर्षित करेंगे ताकि अगले संस्करण में उन कमियों को पूरा किया जा सके।

पुरंजयसिंह राठौर
अध्यक्ष,
श्री नटनागर शोध संस्थान,
सीतामऊ (म.प्र.)

अध्याय – 1

मालवा की भौगोलिक स्थिति

मालवा समुद्र सतह से 23^0 30′ और 24^0 30′ अक्षांश उत्तर तथा 74^0 30′ और 70^0 10′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है ।[1] समुद्र तल से मालवा की ऊँचाई 1500 से 2000 फीट है ।[2] दक्षिण में नर्मदा नदी, पूर्व में बेतवा एवं उत्तर–पश्चिम में चम्बल नदी इसकी सीमाएँ निर्धारित करती थीं। पश्चिम में कांठल एवं बागड़ के प्रदेश और उत्तर–पश्चिम में इसकी सीमा हाड़ौती तक फैली हुई थी। मालवा के पूर्व एवं दक्षिण–पूर्व में बुन्देलखण्ड और गोण्डवाना प्रदेश इसकी सीमा निर्धारित करते थे।[3] मालवा के उत्तर में विंध्य व दक्षिण में सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियाँ हैं। पूर्व में भोपाल से चंदेरी तक तथा पश्चिम में अमझेरा से चित्तौड़ तक ये पर्वत श्रेणियाँ मालवा की सीमा रक्षक के रूप में स्थित हैं। मध्य में स्थान– स्थान पर जो पहाड़ियाँ हैं, वे भी विंध्य श्रेणियों का एक अंग हैं।[4]

नामकरण

वस्तुतः यह क्षेत्र मूल रूप से अवन्ती जनपद कहलाता था । अवन्ती जनपद से इसका नाम मालवा कैसे पड़ा ? यह कहना निश्चित रूप से संभव नहीं है । अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि मालवगण से संबंधित रहने के कारण यह क्षेत्र मालवा कहलाने लगा। मालवगण मूलतः पंजाब के निवासी थे और सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात राजस्थान के क्षेत्र में बस गये थे । तदनन्तर उसकी कुछ शाखाएँ अवन्ति क्षेत्र में आकर बस गयी तभी संभवतः इस क्षेत्र का नाम 'मालवा' पड़ा ।[5]

माल मूलतः संस्कृत का शब्द है । जिसका अर्थ मैदान, ऊँची भूमि या उन्नत भूमि आदि। धोखा भी इसका अर्थ बताया गया है ।[6] प्राकृत छन्द

का एक प्रकार मालवा कहा जाता है। महाभारत में मालवा नाम की एक नगरी भी बतायी गयी है । मालव मण्डल, मालव देश, मालव विषय आदि प्राचीन मालव राज्य को कहा जाता था।[7]

मालव लोग प्रायः खूँखार तथा लड़ाकू होते थे। समाज इनके भय से आतंकित रहता था। उज्जैन तथा आस-पास के क्षेत्र में ये बहुतायत में पाये जाते थे। उज्जैन के आस-पास मालव राजा बहुत काल तक विद्यमान थे।[8]

विश्व संस्कृति का विकास अरण्य संस्कृति से हुआ । अतः विश्व का एक अंग होने के कारण भारतीय संस्कृति का विकास भी अरण्यों से ही हुआ । भारत के ऋषि मुनि भी जंगलों में बैठकर ही वेदों का अध्ययन कर, चिन्तन कर वेदों का सार लिखा करते थे। महाकाल वन में हैहय राजकुमार अवन्ति ने माहिष्यमति से आकर अपना पृथक राज्य स्थापित किया तब से महाकाल वन अवन्ति क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आगे जाकर इसी अवन्ति के बढ़ते हुए क्षेत्र का नाम 'मालवा' हुआ ।[9]

उस अवन्ति क्षेत्र में ओंकारेश्वर, महेश्वर आदि सम्मिलित थे । आकर और अवन्ति मिलकर पूरा क्षेत्र मालव कहलाने लगा । मालव गणराज्य की स्थापना से ही इस क्षेत्र का नाम मालवा पड़ा और तब से ही यह क्षेत्र मालवा नाम से ही जाना जाता है ।

जलवायु और वर्षा

यहाँ की जलवायु समशीतोष्ण है। यहाँ न तो अधिक बारिश होती है न अधिक गर्मी पड़ती है और न ही अधिक सर्दी पड़ती है। अनुकूल जलवायु के कारण सभी ऋतुऐं अपने समय-समय पर क्रमानुसार आती हैं। ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और बसंत यहाँ की प्रमुख ऋतुएँ हैं। प्रत्येक ऋतु दो-दो माह की होती है ।

मालवा में मानसून की वर्षा अरब सागर से आती है। मालवा की रातें हमेशा ठण्डी होती हैं। उष्ण कटिबन्धीय होने से मालवा में हिमपात

नहीं होता है । यहाँ की हर ऋतु का अपना एक आनन्द होता है । शायद इसी कारण मालवा के ऐसे सुहाने मौसम और सुहानी शाम का वर्णन कालिदास और राजशेखर ने भी किया है ।[10] इसकी इसी विशेषता के कारण सभी मुगल सम्राटों ने इसे पसन्द किया है और यहाँ तक कि कट्टर धार्मिक प्रवृत्ति से ओतप्रोत मुगल सम्राट औरंगजेब जो इन चीजों से कोसों दूर था उसने भी इसे 'शबे मालवा' नाम दिया था ।[11]

जमीन और पैदावार

मालवा का उत्तरी भाग विंध्य की कठोरता से पूर्ण तो दक्षिणी भाग लावा की मिट्टी अपने में समेटे हुए है। यह पूरा क्षेत्र अनेक छोटी–मोटी नदियों से सिंचित होता रहता है। नर्मदा घाटी का क्षेत्र मालवा के दक्षिण में पहाड़ी क्षेत्र बनाता है। तलहटी का यह क्षेत्र समतल और उपजाऊ है । मालवा का मध्य भाग मैदानी है । मैदानी तथा उपजाऊ क्षेत्र होने के कारण अक्सर मालवा पर बाहरी आक्रमण होते रहे हैं । ऐसा माना जाता है कि मैदानी क्षेत्र एवं सरलता से उपज प्राप्त होने से यहाँ के निवासी आराम पसन्द और संतोषी होते हैं

उपजाऊ भूमि और मनोहर मौसम के कारण यहाँ के लोगों का कृषि प्रेम अत्यधिक बढ़ता गया और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करने की आदत पड़ गयी। जनता की समृद्धि के कारण यहाँ दार्शनिक, साहित्यिक और कला के क्षेत्र में विशेष उन्नति होती गयी। मालव भूमि में विश्व विख्यात विभिन्न प्रतिभायें पल्लवित होती गयीं ।[12] मालवा के इस मनोरम वातावरण के कारण यहाँ की सांस्कृतिक परम्पराएँ भी प्रगति की ओर अग्रसर हुई । यहाँ के लोगों का रहन–सहन भी प्रभावित हुआ। यहाँ के संतुलित प्राकृतिक सौन्दर्य को कालिदास ने भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया है।

कृषि – मालवा कृषि प्रधान क्षेत्र है। यहाँ की मिट्टी काली, दूमट तथा उपजाऊ है। यहाँ ज्वार, गेहूँ, चना, अफीम, मक्का, मूंगफली, सोयाबीन, अलसी, वर्तमान में यहाँ इसबगोल, रतनजोत, आलिया आदि की खेती भी

की जाती है। फल एवं सब्जियाँ भी यहाँ बहुतायत से होती हैं। जो सम्पूर्ण भारत में पहुँचती हैं ।[13] अबुल फजल ने लिखा है कि यहाँ दोनों ही फसलें उत्तम हैं । विशेषतः गेहूँ, अफीम, गन्ना, आम, तरबूज एवं अंगूर। अंगूरों के बारे में वह कहता है कि धार और हासलपुर में अंगूरलताएँ दो बार फलती हैं। खाने के पान की पत्तियाँ भी उत्तम गुणवत्ता की हैं ।[14]

जब टेवरनियर मालवा में यात्रा कर रहा था, तब यहाँ कोसों दूर तक फैले हुए गेहूँ और चावल के खेतों को देखकर उसे फ्रांस के खेतों की सुध आ गई।[15]

मालवा की समशीतोष्ण जलवायु यहाँ होने वाली उत्तम कृषि उपज का महत्त्वपूर्ण निर्धारण तत्व है।

मालवा के खरबूजे तो उत्तम गुणवत्ता के होते थे। धार के खरबूजे प्रसिद्ध थे। यह बड़ी संख्या में बराबर दिल्ली भेजे जाते थे तथा बादशाह के भोजन में परोसे जाते थे, और बड़े–बड़े अमीर भी इन्हें बड़े चाव से खाते थे।[16]

नील सापेक्षतः कम अनुपात में पैदा होती थी उसके साथ "मोरिण्डा सेट्रोफोलिया" जिसकी जड़ लाल रंग रंगने के काम आती थी एवं वस्त्रोद्योग में काम आती थी, यहां पैदा होती थी ।[17]

इब्नेबतूता ने लिखा है कि मालवा में उत्तम तांबूल–पत्र (पान) उत्पन्न होते हैं, यहाँ तांबूल–पत्र इतनी अधिक मात्रा में पैदा होते हैं कि वह सामाजिक जीवन की एक आर्थिक संस्था बन चुकी है ।[18]

सुल्तान महमूद शाह गुजराती की मृत्यु पर शोक सभा में पान बांटे गये । विवाह में स्वागत के लिये अतिथियों को भी पान बांटे जाते थे, महमूद द्वितीय ने मेदिनीराय को सेवा से निकालने के प्रतीक के रूप में पान दिया ।[19]

मालवा के आम की उत्तमता के विषय में जहाँगीर ने लिखा है कि आम अनेक भागों में होता है किन्तु मालवा के आम की सुगंध, मिठास,

गुदाज और आकार में शायद ही कोई स्पर्धा कर सकता होगा।[20]

मांडू में एक खास खुरासानी इमली नामक वृक्ष बाओबाब होता है उसका तना मोटा तथा शाखाएँ पर्णविहीन होती हैं, जिनमें कद्दू के समान बड़े–बड़े फल लगते हैं। ऐसा माना जाता है कि महमूद खलजी अफ्रीका से इसे माण्डू लाया था ।[21]

इसी वृक्ष को अबुल फजल ने इमली लिखा है। यहाँ जो इमली होती है वह नारियल के समान होती है एवं इसका गूदा बहुत सफेद होता है।[22] इस वृक्ष को मात्र बरसात में पत्ते आते हैं मार्च में इसकी कलियाँ पकती हैं एवं स्थानीय लोग इसके रस को शर्बत में प्रयोग करते हैं।[23]

अनाज में मुख्यतः गेहूँ, चना, मटर, ज्वार, बाजरा, मूंग, उड़द, मक्का एवं तुवर का उत्पादन होता था, जिसमें से गेहूँ व चना की बड़ी मात्रा का निर्यात भी किया जाता था। चावल का उत्पादन घरेलू उपभोग हेतु कम मात्रा में किया जाता था, किन्तु गन्ना, तंबाकू, कपास, अलसी, तिल, मूंगफली, लहसुन, हल्दी, अदरक आदि का उत्पादन घरेलू उपभोग से भी अधिक मात्रा में होता था।[24]

इसके अतिरिक्त अजवायन, राई, धनिया अदरक सामान्य हैं। इसी सूची में गन्ना, सौंफ, मीठा नीम, मिर्ची, धनिया, अजवायन, जीरा, राई, हल्दी, बड़ी सौंफ, पान, काली मिर्च, अदरक या सोठ आदि भी आते हैं ।[25] यहाँ की कृषिगत सम्पन्नता के बारे में इब्नबतूता ने एक कहानी बतायी है, जिसके अनुसार शेख इब्राहिम ने एक तरबूज की खेती से एक खानकाह बनाया और सभी प्रकार के प्रवासी एवं गरीब लोगों को खाना खिलाया फिर भी 13 लाख टका सुल्तान महमूद तुगलक को भेंट किये।[26]

वृक्ष एवं फलों की अन्य विविधता में खिरनी, महुआ, पीपल, वटवृक्ष, सागौन, इमली आदि का उल्लेख भी मिलता है ।[27]

पशु – यहाँ पर पालतू एवं जंगली दोनों प्रकार के जानवर पाये जाते हैं। पहाड़ी एवं वृक्ष संकुल भू–भाग में शेर, चीता, भालू, सियार, जंगली सुअर,

चौसिंगा हिरण, नीलगाय और सफेद पैरों वाला चौसिंगा हिरण, सांभर एवं हिरण की अन्य प्रजातियाँ पायी जाती थीं ।[28]

मालवा के पूर्व में गोंडवाना का क्षेत्र है, जो दक्षिण में बन्हाड तक फैला हुआ है. गोंडवाना में जो गहन वन हैं, उनमें असंख्य हाथी भरे हुए थे, जो मध्ययुगीन युद्ध में शक्ति के महत्त्वपूर्ण साधन थे ।[29]

सांभर की खाल से सेना के लिये उत्कृष्ट साजो–सामान तैयार किये जाते थे। पालतू जानवरों में सींग वाले पशु गाय, बैल एवं भैंस आदि प्रमुख थे, एवं निर्यात का बड़ा भाग था, भेड़ एवं बकरियाँ तो असंख्य हैं और उनका अनुमान भी संभव नहीं है। ऊंट मालवा में यदा–कदा ही प्राप्त होते थे, यहाँ की जलवायु उनके अनुकूल नहीं थी, उनके लिये गर्म, रेतीली, शुष्क पठारी जलवायु आवश्यक है। मालवा की प्रायः सभी नदियों में मछलियाँ अच्छे आकार व स्वाद में भरपूर मात्रा में पायी जाती थीं ।[30]

जल संसाधन –

मालवा में जल की प्राप्ति मुख्यतः नदियों व तालाबों से होती है। मालवा की प्रमुख नदियाँ नर्मदा, क्षिप्रा, कालीसिंध, बेतवा हैं। हर दूसरे–तीसरे कोस पर इनमें पहाड़ियों से निकलकर पानी की धाराएँ मिल जाती हैं, जिससे कि नदियों का विस्तार बहुत हो जाता है। यहाँ पर जगह–जगह पर झीलें हैं जिनमें बरसात का पानी एकत्रित हो जाता है, जिसकी वजह से बहुत बड़े क्षेत्र में हरियाली फैली रहती है।[31]

देश के इस भू–भाग पर जो कि विंध्य के उत्तर में स्थित है, सभी मुख्य जलधाराएँ इसी पर्वतमाला से निकलती हैं, सोन को छोड़कर जो कि उत्तर की ओर बहती हैं। बेतवा, चम्बल, कालीसिंध, माही, पार्वती, सिंध एवं क्षिप्रा पश्चिम में ईशान कोन एवं पूर्व में सभी प्रायः उत्तर की ओर बहती हैं, जब तक कि गंगा के दोआब में नहीं मिल जाती।[32]

नर्मदा को छोड़कर अन्य कोई बड़ी नदी विंध्य के दक्षिण में नहीं है, जो मैकाल पर्वत श्रेणी से निकलती है और दक्षिण–पश्चिम में बहती है

तथा भड़ौच के पास समुद्र में मिल जाती है ।[33] जलभरी नदियों, जलाशयों एवं तालाबों तथा वर्षा से प्राप्त होने वाली सिंचाई की सुविधा से यह क्षेत्र कृषि सम्पन्न है ।

जंगल एवं वृक्ष

मालवा में विभिन्न प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं। इनका उपयोग भी विभिन्न कामों में होता है। कुछ वृक्ष औषधीय होते हैं, तो कुछ फलदार भी होते हैं । हर मौसम में यहाँ फल प्राप्त होते हैं। आम, जामुन, खजूर, करौंदे, अमरूद, सीताफल, रामफल, इमली, टिमरू आदि फल यहाँ विशेषतौर पर पाये जाते हैं । वृक्षों की लकड़ी कृषि उपकरण बनाने में भी काम आती है। धर्म प्रधान प्रवृत्ति के कारण कुछ वृक्षों की पूजा भी की जाती है तथा कुछ वृक्षों की लकड़ी से धार्मिक अनुष्ठान होम आदि भी किये जाते हैं ।[34]

मालवा में ऐसा माना जाता है कि तालाब आदि का तट तब तक शोभित नहीं होता जब तक वहाँ वृक्ष न हों। क्योंकि वृक्षों से तटबन्ध मजबूत होता है। मालवा एवं इससे लगे हुए प्रदेशों में बहुतायत में जंगल हैं, इनमें से अनेकों में इमारती लकड़ी के विपुल भंडार हैं, विशेषतः टीक के वृक्षों के।[35]

"मालवा राज्य में वनों से अनेक उपजें प्राप्त होती थीं, मधु एवं इससे मिलने वाला मोम, इनमें रहने वाले जीव जंतु आदि। विशिष्ट मौकों पर सजावट के लिये मोम का कृत्रिम वृक्ष, बत्तियाँ बनायी जाती थीं। शाहजादा ग्यासशाह के विवाहोत्सव में तथा महमूद खिलजी द्वितीय के स्वागतोत्सव में सजावट हेतु मोम, रेशम तथा तारों का कृत्रिम वृक्ष बनाने का उल्लेख मिलता है।[36]

इस प्रान्त का सारा प्रदेश मालवा के पठार पर स्थित था, इसमें कई स्थानों पर घने जंगल थे और उनमें हिंसक पशु बहुतायत में थे, कभी-कभी तो उनमें जंगली हाथी भी मिल जाते थे ।[37]

मआसिर-ए-महमूदशाही में लिखा है कि शिकार स्थलों से (दमशाह)

सुल्तान को 29 हाथी मिले थे।[38]

अबुल फजल ने भी विजयगढ़ सरकार के हाथी एवं घोड़ों का उल्लेख किया है।[39]

धार के जंगलों में लम्बे–लम्बे बाँस होते थे और वहाँ लाख भी बनती थी, जिससे वहाँ लखारों की अक्सर आवश्यकता पड़ जाती थी।[40]

नदियाँ – मालवा में अनेक छोटी–छोटी नदियाँ हैं। इनमें माही, चम्बल, नर्मदा, नेवज आदि प्रमुख हैं । माही नदी धार जिले के अमझेरा के निकट की पहाड़ियों से प्रारंभ होकर सरदारपुर में दिखाई देती है। उत्तर की ओर बहती हुई यह रतलाम तथा राजस्थान के बांसवाड़ा जिले में होती हुई गुजरात के मध्य से बहती हुई विशाल रूप धारण कर लेती है। चम्बल मालवा की मुख्य नदी है। यह मऊ के निकट जनापाव नामक पहाड़ी से प्रकट होती है। वहाँ से यह इन्दौर, उज्जैन, रतलाम, मंदसौर जिलों से होती हुई राजस्थान में प्रवेश करती है। आगे जाकर यह यमुना में मिल जाती है। नर्मदा नदी मालवा की दक्षिणी सीमा को निश्चित करती है। देवास, धार, झाबुआ जिलों की सीमा के दक्षिणी तट पर बहकर अरब सागर में मिलती है। कालीसिंध का उद्गम देवास जिले की बागली तहसील से हुआ है। यह शाजापुर, राजगढ़ जिलों में बहती हुई राजस्थान में प्रवेश करके चम्बल नदी में मिल जाती है । बेतवा नदी मध्यप्रदेश के भोपाल क्षेत्र से प्रकट होती है । इसका पुराना नाम वेत्रवती है । बेस और धसान इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं । नेवज कालीसिंध की सहायक नदियों में है। इसका पुराना नाम निन्ध्यिा है। पार्वती नदी आष्टा से होती हुई चम्बल में मिलती है। शिवना प्रतापगढ़ से निकलकर मंदसौर होती हुई चम्बल में मिलती है। शिप्रा नदी का उद्गम इन्दौर नगर के दक्षिण–पूर्व के काँकरी पहाड़ी से हुआ है। खान और गम्भीर नदियाँ इसकी सहायक नदियाँ हैं। गम्भीर नदी का उद्भव भी इन्दौर नगर के निकट से हुआ है। यह इन्दौर, उज्जैन होते हुए शिप्रा में मिल जाती है।[41]

व्यापार एवं वाणिज्य

मालवा की अनुकूल भौगोलिक पृष्ठभूमि यहाँ के व्यापार एवं वाणिज्य के लिये भी सहायक बनी है। कृषि प्रधान उत्तर भारत और उद्योग प्रधान दक्षिण भारत के मध्य स्थित होने से यह क्षेत्र दोनों क्षेत्रों के बीच सेतु का कार्य करता है। विदिशा, उज्जैन, माहिष्मती आदि मालवा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र जहाँ एक ओर पाटली पुत्र, श्रावस्ती, कोशाम्बी, मथुरा आदि उत्तर भारतीय केन्द्रों के राजमार्गों से जुड़े रहे, वहीं दूसरी ओर दक्षिण–पश्चिम भारत के भृगुकच्छ, नासिक, प्रतिष्ठानपुर आदि से भी उसका सुगठित व्यापारिक सम्पर्क बना रहा ।[42]

जो सड़कें इस क्षेत्र में बनी हुई थीं वे केवल सैनिक दृष्टि से ही नहीं अपितु व्यापारिक दृष्टि से भी उपयुक्त थीं। इन मार्गों से मालवा के व्यापार की चहुमुखी उन्नति हुई। जो यूरोपीय व्यापारी भारत के पश्चिमी किनारे पर बस गये थे वे प्रायः मालवा की राह ही उत्तर भारत को जाते थे। मालवा के इन व्यापारिक मार्गों पर यात्रियों की सुविधाओं को ध्यान में रखकर पूर्ण प्रबंध किये गये थे ।[43]

मुगल साम्राज्य के विभिन्न सूबों में उद्योग धंधों की दृष्टि से गुजरात के बाद मालवा सूबे की गणना की जाती थी।[44] मालवा का कपड़ा उद्योग बहुत व्यापक था। यहाँ महीन धागों से कपड़ों की बुनाई की जाती थी। रंगीन छपे हुए कपड़े जिन्हें 'छींट' कहा जाता था यहाँ बहुतायत में बनते थे। विदेशों तक में इन कपड़ों की मांग की जाती थी। ईरान में यह छींट बहुतायत से बिकती थी साथ ही टर्की में भी ये जाती थी। इस छींट के एक–एक थान का मूल्य 20 से 60 रुपये तक होता था।[45]

खनिज संसाधन

मालवा के पहाड़ी क्षेत्रों में विविध प्रकार और विविध रंगों के पत्थर मिलते हैं, अनेक पहाड़ियों में सफेद से लेकर गुलाबी तथा पीला संगमरमर भी उपलब्ध है । यह पत्थर व खदानें रोजगार के साधन हैं । इनका प्रयोग

शाही इमारतों में ही किया जाता था।[46]

समतल एवं बेसाल्ट से निर्मित मालवा के इस पठार में धात्विक खनिजों का कोई भी प्रकार नहीं देखा जा सकता है। मेवाड़ एवं मारवाड़ की सीमावर्ती पहाड़ियाँ एवं प्रारंभिक चट्टानों में अच्छी गुणवत्ता वाला कच्चा लोहा पाया जाता है, जोकि प्रांत के उत्तर–पश्चिम तक फैली है।[47]

मालवा राज्य के चरमोत्कर्ष काल में उसमें ऐसे प्रदेश थे, जिनमें बहुमूल्य पत्थरों की खानें थीं, इनमें पन्ना का प्रदेश, रायपुर, रतनपुर और बैरागढ़ में हीरों की खानें थीं । खानें स्थानीय राजाओं के नियंत्रण में थीं किन्तु राजाओं ने मालवा के सुल्तान का आधिपत्य स्वीकार किया हुआ था, इस कारण वे अपने खिराज में यह बहुमूल्य पत्थर देते थे और मालवा राज्य को समृद्ध करते। अन्य रत्न और जवाहारात में हमें याकूत–ए–हीरामन (लाल) फिरोजा–ए–झामुसद (हरा) का उल्लेख मिलता है ।[48] बहुमूल्य पत्थरों की विपुलता के ही कारण याकूत की तश्तरीए फिरोजा का कप जैसी बहुमूल्य वस्तुओं का उत्पादन हुआ।[49]

यह मालवा की विशेषता थी कि महमूद खलजी प्रथम ने यह वस्तुएँ "अबु मिर्जा" को भेंट दी थीं। भेंट वस्तुओं में रुबी का चमचा, याकूत का कप, अकिक की तश्तरी, फिरोजा की तश्तरी और अत्यस्टार की बस्सी थी ।[50]

उद्योग धन्धे

वस्त्र उद्योग :– मालवा में वस्त्र उद्योग ने काफी उन्नति की थी, अबुल फजल ने लिखा है कि यहाँ बहुत ही महीन धागे के कपड़े बुने जाते थे।[51]

टेवरनियर लिखता है कि "सिरोंज में ऐसी बारीक मलमल बुनी जाती है कि उसको ओढ़ लेने पर भी, ओढने वाले के अंग–अंग स्पष्ट दिख पड़ते हैं मानो उसके शरीर पर कुछ भी कपड़ा नहीं है। व्यापारी इस कपड़े को विदेश भेजते हैं और इस प्रांत के सूबेदार मुगल बादशाह के

अंतःपुर एवं बड़े–बड़े अमीरों के लिये ऐसा बहुत सा कपड़ा भेजा करते हैं। साम्राज्ञियाँ तथा अमीरों की स्त्रियाँ गर्मी के दिनों में इसी प्रकार के कपड़े से बने वस्त्र पहनती हैं और बादशाह व अमीर उस वेशभूषा को बहुत पसंद करते हैं। उन स्त्रियों का नृत्य देखते हैं ।[52] रेशम के वस्त्र "अतलस" अर्थात सादा रेशम, "अतलस मालुम" अर्थात् रंगीन रेशम, किमखाब रेशम और सोने के तार से बनते हैं, और "मुलाम कार्य" अर्थात् आकृतियों का काम भी मालवा में प्रचलित होने का उल्लेख मिलता है।[53]

जब मालवा में रेशम वस्त्रों की प्रगति हो रही थी, तब सूती वस्त्र भी पीछे नहीं रहे थे, शिहाब हाकिम ने उच्च दर्जे के सूती वस्त्रों में "मुसावर" अर्थात् छपे वस्त्र और उनकी बारीकी का उल्लेख किया है।[54] जामा–ए–हिन्दी[55] में वस्त्रों का भी उल्लेख किया है, जिसमें धागे से आकृतियाँ और चित्र बने होते हैं एवं कपड़ा इतना उत्तम और नाजुक रहता था कि घड़ी करने पर उसे अंगुली की नोंक पर रखा जा सकता था, किन्तु खोलने पर काफी विस्तृत आकार का होता था।[56] मालवा के रंगीन, छपे हुए कपड़े बहुत प्रसिद्ध थे और वे बहुतायत में मिलते भी थे ।[57] इस कपड़े को छींट कहा जाता था और विदेशों तक में इसकी माँग थी, ये रंग–बिरंगे कपड़े कई स्थानों में बनते थे, परंतु सिरोंज में रंगे हुए कपड़े दूसरे स्थानों के कपड़ों से अधिक नूतन और सुन्दर ही नहीं दिखते थे बल्कि ज्यों–ज्यों यह कपड़े धुलते जाते थे उनका रंग उत्तरोत्तर निखरता जाता था । ऐसा कहा जाता है कि इस विशेषता का प्रधान कारण सिरोंज के पास से बहने वाली नदी के पानी के विशेष गुण हैं और बरसात के समय के मैले पानी में यदि यह रंगाई की जाती थी तब तो यह विशेषता अत्याधिक दिखाई पड़ती थी।[58] छींट के एक थान का मूल्य 20 से 60 रुपये होता था।[59] मालवा की ये छींटें ईरान में बहुतायत से बिकती थी और वहाँ की साधारण जनता इन छींटों से पहनने के कपड़े, बिस्तर की चादरें या तकियों की खोलियाँ बनाते थे। ईरान की औरतों में तो इन छींटों का बहुत ही प्रचार था और

सिरोंज के व्यापारी ईरान के रीति–रिवाज तथा वहाँ की रुचि के अनुकूल कपड़ा बनवाकर तथा रंगवाकर वहाँ भेजते थे। तुर्की तक में इन छीटों की खपत होती थी ।[60]

सोना–चाँदी उद्योग – आभूषण प्राचीनकाल से ही नारी के शृंगार का प्रधान अंग रहे हैं । मालवा में भी स्वर्णकारों की कला पर्याप्त विकसित थी। नियामतनामा के चित्रों में हमें पुरुष वेशधारी महिला भी गहने पहने दिखते हैं। कान की बालियाँ और चूड़ियाँ स्पष्ट दिखती हैं। ग्यासशाह के विवाह में अमीरों की स्त्रियों को झुना और झुमारतली गहने देने का स्पष्ट उल्लेख है।[61] तत्कालीन समय में समाज के संभ्रात व अमीर लोग सोने–चाँदी के पात्र प्रयोग करते थे। सोने के धूपदान और चाँदी का फूलदान सुल्तान के दैनिक जीवन के अंग थे ।[62]

जरदोजी – यह काम मालवा में सामान्य था । जरदोजी वस्त्रों पर किया जाने वाला काम बारीक व कलात्मक कार्य होता है। अनेक वस्तुओं में जरदोजी का प्रयोग होता था। जरदोजी वस्त्र में (काबा में) रत्न जड़ाकर सुल्तान और अमीर पहनते, विजय, विवाह, राजदूतों के आगमन ऐसे अवसरों पर महमूद खलजी जरदोजी वस्त्र वितरित करता था। उसे सर्वोच्च सम्मान माना जाता था। टोपी (कुलाह) और कमरपट्टे पर भी जरदोजी का काम होता था । हाथियों की जरदोजी झूल विशिष्ट अवसरों पर प्रयोग होती थीं। इन सबमें अधिक पूँजी निवेश होता था। अतः ये चीजें सरकारी कारखाने में ही बनती थीं ।[63]

पटाखे आतिशबाजी उद्योग – मालवा में पटाखों एवं आतिशबाजी उद्योग ने भी उल्लेखनीय प्रगति की थी। यह उद्योग इतना उन्नत था कि शिहाब हाकिम ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि "पटाखे बनाने वाले आकाश में बाण छोड़ते हैं, और गुरु–शुक्र जैसे हजारों तारे आकाश में चमकने लगते हैं। वे ऐसी सुन्दर चकरी चलाते हैं कि जिसे आकाश चक्र भी नहीं बना सकता। उनकी चरखियों में विविध रंग उभरते हैं।

पटाखों में से वह हाथी, जिराफ, सिंह, ऊँट आदि के आग के चित्र बनाते हैं, फिर भी वे इतने सजीव दिखते हैं कि कोई उन्हें नैसर्गिक पशुओं से पहचान नहीं सकता। यह देखकर महान समरक्षाकार को भी आश्चर्य होता है।[64]

मिट्टी के बर्तन एवं कलाकृतियाँ – मालवा में विशेषतः माण्डू में मिट्टी के बर्तनों ने उच्च दर्जा प्राप्त कर लिया था उसका काफी बड़ी मात्रा में निर्माण किया जाता था। पर्सी ब्राउन ने लिखा है कि "पंद्रहवीं सदी में माण्डू में ओपदार मृद भांड का उद्योग बड़ा समृद्ध था और कुम्भकारों के रंग बिरंगे उत्तम रंगों से उनकी व्यवसाय प्रवीणता दिखती है। उनके पास कुछ गुप्त सूत्र थे जो अब लापता हो गये हैं, जिसमें प्राप्त वैदुर्य नीले रंग की चमक से श्रेष्ठतर कुछ नहीं हो सकता है। ये कलाकार संभवतः मुल्तान से आये होंगे जो मूलतः ईरान से अपनी कला प्राप्त करते होंगे।[65]

उज्जैन में भी मिट्टी के बर्तनों का उद्योग सुविकसित था, उज्जैन के लोग अच्छे कुम्भकार थे।[66] अन्य उद्योगों में मालवा में हथकरघा उद्योग भी महत्त्वपूर्ण था।

धर्म एवं जातियाँ

अनुकूल जलवायु, उपजाऊ भूमि आदि विशेषताओं के कारण यहाँ सभी धर्म एवं जातियों के लोग बसते हैं। जो भिन्न–भिन्न कारोबार के द्वारा अपना जीवन यापन करते थे। यहाँ ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र सभी वर्णों के लोग निवास करते हैं। यहाँ मुस्लिम वर्ग का आगमन 1305 ई. के बाद हुआ जब अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति एनुलमुल्क मुल्तानी ने मंदसौर तक अपना अधिकार कर लिया था।[67] अफगान सारे मालवा में फैले हुए थे, किन्तु उनका क्षेत्र सीमित ही था। मुगलों ने प्रायः बड़े क्षेत्रों को ही अपनाया। ग्रामीण क्षेत्रों में इनकी आबादी कम थी। मुस्लिम वर्ग में शेख, सैय्यद, मुगल एवं पठान आदि प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त रुई पींजने वाले पिंजारे, फल सब्जी के व्यापारी कुंजड़े, मांस विक्रेता कसाई, कपड़े

रंगने वाले रंगरेज, नागोरी, अजमेरी आदि नाम कार्य तथा क्षेत्र विशेष से आने के कारण पड़े। राजपूत पूरे मालवा में सर्वत्र फैले थे तथा समाज का यह विशेषकर सैनिक वर्ग था।

यों मालवा भारत की हृदयस्थली है। यहाँ की परम्पराएँ समूचे भारत से प्रभावित हुई हैं। इसके उत्तर से दक्षिण की ओर व्यावसायिक मार्ग तथा पूर्व से पश्चिम तक के मार्ग का यह मालवा चौराहा था।[15] इसीलिये यहाँ की सांस्कृतिक धरोहर समूचे भारत का गौरव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. मालवा थ्रू द एजेज, कैलाशचन्द्र जैन, पृ. 16 ।
2. जान मालकम., 1, पृ. 4 ।
3. मालवा में युगान्तर, डा. रघुबीरसिंह, पृ. 2 ।
4. इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, पृ. 98 ।
5. हिस्ट्री आफ मालवा, सुख सम्पतिराय भण्डारी, भाग 1, पृ. 43 ।
6. ये अर्थ वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत हिन्दी शब्द कोश में दिये गये हैं ।
7. मालवी संस्कृति और साहित्य, डा. भगवतीलाल राजपुरोहित, पृ. 20–21 ।
8. मालवी संस्कृति., पृ. 25–26 ।
9. मालवी संस्कृति., पृ. 28 ।
10. मालवी संस्कृति., पृ. 40 ।
11. हिस्ट्री आफ औरंगजेब, यदुनाथ सरकार कृत भाग 5, पृ. 380 ।
12. मालवी संस्कृति., पृ. 40–42 ।
13. मालवी संस्कृति., पृ. 52 ।

14. आईन–ए–अकबरी, भाग 2, 1989, पृ. 207; मिडिवल मालवा यू. एन.डे. कृत पृ. 356 ।
15. टेवरनियर., 1, पृ. 57 ।
16. नवाजिश., पत्र 2 ब, 3 अ ।
17. जान मालकम, पृ. 7–8 ।
18. रेहला., पृ. 67; आइन., खण्ड 2, पृ. 208 ।
19. मिडिवल मालवा, पृ. 357 ।
20. तुजुक–ए–जहाँगीरी, पृ. 377 ।
21. यजदानी, माण्डू, पृ. 2; जन.बी.बी. आर.ए.एस., पृ. 355; मिडिवल मालवा पृ. 358 ।
22. आईन., भाग 2, पृ. 208 ।
23. मिडिवल मालवा, पृ. 358 ।
24. जान मालकम, पृ. 8 ।
25. इन्दौर स्टेट गजेटियर, भाग 2, पृ. 94; नियामतनामा (माण्डू) में इसकी प्रक्रिया लिखी हुई है। मिडिवल मालवा, पृ. 357 ।
26. रेहला., पृ. 167 ।
27. मिडिवल मालवा, पृ. 358 ।
28. जॉन मालकम, भाग 1, पृ. 9 ।
29. मिडिवल मालवा, पृ. 4 ।
30. जॉन मालकम, भाग 2, पृ. 10 ।
31. आईन., भाग 2, अंग्रेजी अनु. 1989, पृ. 206 ।
32. इम्पीरियल गजेटियर, भाग 9, 1908, पृ. 323 ।
33. इम्पीरियल गजेटियर, भाग 9, 1908, पृ. 323 ।
34. मालवी संस्कृति., पृ. 53 ।
35. जॉन मालकम, भाग 1, पृ. 9 ।
36. तारीख–ए–मुजफ्फरशाही, (पांडु अति. 26270), पत्र 45 अ; मआसिर–ए–महमूदशाही, पत्र 124 ब ।

37. मालवा में युगान्तर, पृ. 3, इन्दौर, 1938 ।
38. मआसिर–ए–महमूदशाही, पत्र 118 अ ।
39. आइन., भाग 2, पृ. 216 ।
40. नवाजिश, पृ. 29 ।
41. वही, पृ. 44–48 ।
42. इकानामिक आर्गेनाइजेशन इन एशियण्ट इण्डिया, श्यामसुन्दर निगम, पृ. 205–206 ।
43. स्टोरिया डी मोगोर, मनुची, अनुवाद विलियम इर्विन, भाग 1, पृ. 68 ।
44. हिस्ट्री आफ औरंगजेब यदुनाथ सरकार कृत, भाग 5, पृ. 380 ।
45. मालवा में युगान्तर, डा. रघुबीरसिंह कृत संपा. डा. मनोहरसिंह राणावत, पृ. 6 ।
46. मिडीवल मालवा, पृ. 359 ।
47. जॉन मालकम, पृ. 7 ।
48. मआसिर–ए–महमूदशाही, पत्र 120 ब ।
49. मआसिर–ए–महमूदशाही, पत्र 123 ब ।
50. मआसिर–ए–महमूदशाही, पत्र 302 ब ।
51. आईन., 2, पृ. 95; इण्डिया., पृ
52. टेवरनियर., 1, पृ. 36–37; मालवा में युगान्तर, पृ. 5 ।
53. मआसिर–ए–महमूदशाही, प. 120 ब ।
54. मआसिर–ए–महमूदशाही, प. 124 अ ।
55. यह वस्त्र फैजाबाद जिले में स्थित मांडा के जामदानी वस्त्रों जैसा दिखता है ।
56. मआसिर–ए–महमूदशाही, प. 303 अ ।
57. मनुची, 2, पृ. 425 ।
58. टेवरनियर., 1, पृ. 56, भाग 2, पृ. 29–30 ।
59. टेवरनियर., 2, पृ. 5 ।

60. टेवरनियर., 1, पृ. 56; डा. रघुबीरसिंह, पृ. 6 ।
61. मआसिर–ए–महमूदशाही, प. 124 अ ।
62. मआसिर–ए–महमूदशाही, प. 120 ब ।
63. मआसिर–ए–महमूदशाही, प. 124 अ, 330 अ, 125 ब ।
64. मआसिर–ए–महमूदशाही, प. 125 अ; मिडिवल मालवा, पृ. 361।
65. ब्राउन, इंडियन आर्किटेक्चर (इस्लामिया पीरियड), पृ. 63; मिडिवल मालवा, पृ. 361 ।
66. आईन., भाग 2, पृ. 208 ।
67. शोध साधना, वर्ष 20, अंक 16, पृ. 130–131 ।
68. मालवी संस्कृति., पृ. 36 ।

***

अध्याय – 2

राठौड़ों से पूर्व मालवा का संक्षिप्त इतिहास एवं मालवा में राठौड़ों का आगमन

मालवा के राठौड़ रियासतों के राजा एवं राठौड़ जागीरदार राठौड़ वंश के राजपूत क्षत्रिय हैं जो अयोध्या के मर्यादा पुरुषोत्तम प्रातः स्मरणीय महाराजा श्री रामचन्द्रजी के द्वितीय पुत्र कुश के वंश में बताये जाते हैं ।[1] मालवा के जितने राठौड़ शासक एवं जागीरदार हैं (अलीराजपुर एवं जोबट को छोड़कर ये सब मारवाड़ नरेशों के ही वंशज हैं और उनके पूर्वज मारवाड़ (जोधपुर) नरेशों को ही अपना मुखिया मानते चले आये हैं। भारत के इतिहास का एक बड़ा भाग उनकी शूरवीरता के कार्यों से भरा है।

यह राठौड़ वंश क्षत्रियों के 36 राजवंशों में से एक प्राचीन राजवंश है, जिसने भारत वर्ष के कई प्रातों में समय–समय पर राज्य किया है । एक प्रांत से अपना अधिकार उठ जाने पर दूसरे प्रांत पर अपना अधिकार स्थापित करते रहे । इस वंश का पहला वर्णन ई. पू 300 वर्ष पहले भी मोर्यवंशी सम्राट अशोक के शिलालेखों में मिलता है । इसके पहले भी यह लोग राज्य करते थे किन्तु उस समय का कोई विवरण नहीं मिलता है।

राठौड़ शब्द की उत्पत्ति

ई. सन् 269 (वि.सं. 212) वर्ष पूर्व भारत पर सम्राट अशोक का शासन था। अशोक बड़ा प्रतापी और धार्मिक राजा था। उसने अपने राज्य के प्रत्येक प्रान्त में अपनी धर्माज्ञायें खुदवाई थी। उनमें शाहबाजगढ़, मानसेरा (उत्तर–पश्चिमी सीमान्त प्रदेश), गिरनार (सौराष्ट्र), और धवली (कलिंग) की धर्माज्ञाओं में कम्बोज और गांधार वालों के उल्लेख के बाद ही 'रठिक', 'रिस्टिक' (राष्ट्रिक) या 'लठिक' शब्दों का प्रयोग मिलता है।[1]

डा.डी.आर. भण्डारकर इस राष्ट्रिक और इसी के बाद लिखे 'पेतेणिक' शब्द को एक शब्द मानकर, इसका प्रयोग महाराष्ट्र के वंश परम्परागत शासक वंश के लिए किया गया मानते हैं।[2] परन्तु शाहबाजगढ़ से मिले लेख में 'यवन कंबोय गंधरनें रठिकनं पितिकनं' लिखा होने से प्रकट होता है कि, ये रिस्टिक (रठिक) और 'पेतेनिक' (पितिनिक) शब्द दो भिन्न जातियों के लिए प्रयोग किये गये थे।

सी.वी. वैद्य उक्त राष्ट्रिक शब्द से महाराष्ट्र निवासी राष्ट्रकूटों का तात्पर्य लेते हैं ।[3] और उन्हें उत्तरीय राष्ट्रकूटों से भिन्न मरहठा क्षत्रिय मानते हैं।[4] परन्तु पाली भाषा के 'दीपवंश' और 'महावंश' नामक प्राचीन ग्रंथों में महाराष्ट्र निवासियों के लिए 'राष्ट्रिक' शब्द का प्रयोग न कर 'महारट्ट'[5] शब्द का प्रयोग किया गया है। डा. हुल्श 'रठिक' अथवा 'रट्रिक' (राष्ट्रिक) शब्द से पंजाब के 'आरट्टों' का तात्पर्य लेते हैं ।[6] परन्तु यदि आरट्टदेश' की उत्पत्ति में – 'आसमन्तात् व्याप्ता रट्टा यस्मिन स आरट्ट :" इस प्रकार बहुब्रीह समास मान लिया जाय तो एक सीमा तक सब ही विद्वानों के मतों का समाधान हो जाता है। राष्ट्रकूटों के लेखों में उनकी जाति का दूसरा नाम 'रट्ट' भी मिलता है। इसलिए राष्ट्रकूटों का पहले पंजाब में रहना और फिर वहाँ से उनकी एक शाखा का दक्षिण में जाकर अपना राज्य स्थापित करना मान लेने में कोई आपत्ति नजर नहीं आती।

उणिडकवाटिका में राष्ट्रकूट राजा अभिमन्यु का एक दानपत्र मिला है।[8] उसमें संवत् न होने से विद्वान लोग उसे विक्रम की सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ का अनुमान करते हैं उसमें लिखा है –

ऊँ स्वस्ति अनेकगुणगणालंकृतयशसां राष्ट्रकु (कू)टा ना (नां) तिलकभूतो मानांक इति राजा वभूव'

अर्थात अनेक गुणों से अलंकृत और यशस्वी राष्ट्रकूटों के वंश में तिलकरूप मानांक राजा हुआ। एलोरा की गुफाओं के दशावतार वाले मन्दिर में लगे राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग के लेख[9] में लिखा है –

"नवेत्ति खलु कःक्षितौ प्रकट राष्ट्र कूटान्वयम् ।"

अर्थात – पृथ्वी पर प्रसिद्ध राष्ट्रकूट वंश को कौन नहीं जानता। इसी राजा के वि.सं. 810 (ई.सं. 753) के दानपत्र[10] में, और मध्यप्रान्त के मुलतई गांव से मिले, नन्दराज के वि.सं. 766 (ई.स. 709) के ताम्रपत्र[11] में भी इस वंश का उल्लेख राष्ट्रकूट वंश के नाम से ही किया गया है। इसी प्रकार और भी अनेक राजाओं के लेखों और ताम्रपत्रों में इस वंश का यही नाम दिया है। परन्तु पिछले कुछ लेख ऐसे भी हैं, जिनमें इस वंश का नाम "रट्ट"[12] लिखा है।

सिरुर से मिले अमोघवर्ष (प्रथम) के लेख में उसे 'रट्टवंशोद्भव' कहा है।[13] नवसारी से मिले इन्द्र तृतीय के वि.सं. 971 (ई.स. 914) के ताम्रपत्र[14] में अमोघवर्ष को 'रट्टकुललक्ष्मी' का उदय करने वाला लिखा है। देवली के ताम्रपत्र[15] में लिखा है कि इस वंश का मूल पुरुष 'रट्ट' था। उसका पुत्र 'राष्ट्रकूट' हुआ। उसी के नाम पर यह वंश चला है।[16] घोसूंडी (मेवाड़) के लेख में इस वंश का नाम 'राष्ट्रवर्य' और नाडोल के ताम्रपत्र में 'राष्ट्रौड' लिखा है ।[17]

राष्ट्रकूट शब्द में 'राष्ट्र' का अर्थ राज्य और 'कूट' का अर्थ समूह, ऊँचा या श्रेष्ठ होता है। इसलिए इस 'राष्ट्रकूट' शब्द से बड़े या श्रेष्ठ राज्य का बोध होता है। यह भी सम्भव है कि, 'राष्ट्र' के पहले 'महा' उपपद लगाकर इस जाति से शासित प्रदेश का नाम ही 'महाराष्ट्र' रखा गया हो।[18] आजकल देश और भाषा के भेद से राष्ट्रकूट शब्द के और भी अनेक रूपान्तर मिलते हैं – 'राठवर, राठवड़, राठउर, राठउड़[19] राठड[20], रठड़ा[21], और राठौड़।

डा. बर्नले राष्ट्रकूटों[22] के पिछले लेखों में 'रट्ट' शब्द का प्रयोग देखकर इन्हें तैलुगू भाषा बोलने वाली रेड्डी जाति से मिलाते हैं। परन्तु वह जाति तो वहाँ की आदिम निवासी थी और राष्ट्रकूट उत्तर से दक्षिण में गये थे। मयूरगिरि के राजा नारायणशाह की आज्ञा से उसके सभा कवि रूद्र

ने वि.सं. 1653 (ई.स. 1596) में राष्ट्रौढ वंश महाकाव्य" लिखा था। उसके प्रथम सर्ग में लिखा है –

'अलक्ष्यदेहा तमवोचदेषा राजन्नसावस्तु तवैकसूनु : ।
अनेन राष्ट्रं च कुलं तवोढ राष्ट्रो (ष्ट्रो) ढनामा तदिह प्रतीतः ।।29।।

अर्थात – उस (लातनादेवी) ने आकाशवाणी के द्वारा उस राजा (नारायण) से कहा कि यह तेरा पुत्र होगा, और इसने तेरे राष्ट्र (राज्य) और वंश का भार उठाया है, इसलिए इसका नाम 'राष्ट्रोढ' होगा।

राठौड़ शब्द संस्कृत भाषा के राष्ट्रकूट शब्द से बना है। जैसाकि हम पूर्व में लिख आये हैं कि राष्ट्रकूट शब्द के अनेक प्राकृत रूपान्तर राठवट, राठवड, राठउड, राष्ट्रवर्ग व राष्ट्रोठ आदि पाये जाते हैं।[23] इस प्रकार राठौड़ वंश के लिए अनेक शब्द मिलते हैं । इन सभी शब्दों का एक ही अर्थ राष्ट्र जाति या वंश में श्रेष्ठ है।[24] राठौड़ मूलतः दक्षिण के महाराष्ट्र व उसके आस–पास के निवासी थे। पहले से राष्ट्रवंशी सामन्त व राजा अपने वंश के पूर्व महा शब्द लगाते थे। जिससे राष्ट्रवंशी स्वयं को महाराष्ट्री कहने लगे। जिसका प्राकृत रूप महारठिय या मराठी अभिलेखों में मिलता है।

राठौड़, मारवाड़ में कन्नौज से आये थे। कन्नौज में इन्होंने लगभग 200 वर्ष से अधिक समय तक राज्य किया था। इससे पहले इनका राज्य दक्षिण में था, पर इनका इतिहास ई. सन् छटी शताब्दी से पहले का नहीं मिलता। राठौड़ों का उत्तर से दक्षिण में जाना और फिर वहाँ से उत्तर में आना पाया जाता है और ऐसा ही राठौड़ मानते हैं। छटी शताब्दी से राठौड़ों के इतिहास की कुछ कुछ सामग्री मिलती है, पर उससे भी सिलसिलेवार इतिहास तैयार नहीं होता। वैसे शिलालेखों में कुछ–कुछ प्रमाण इस बात के भी मिलते हैं कि अशोक के काल में राष्ट्रीक (राठौड़) वंश का राज्य दक्षिण भारत में मौजूद था। जैसा कि हम आगे बता चुके हैं परन्तु उनके संवत, राजधानी व राजा का नाम, कुछ भी प्राप्त नहीं होते।

यहाँ से चलकर आगे छटी शताब्दी में अभिमन्यु नामक एक राजा का नाम मिलता है, जो इस वंश का था उसी के दिये हुए एक ताम्रपत्र से यह भी पता चलता है कि वह मानांक नामक राजा की चौथी पीढ़ी में था। इससे आगे सं. 650 वि. तक का कुछ भी इतिहास नहीं मिलता। इसके बाद से इनका इतिहास अधिक स्पष्ट मिलता है। वि.सं. 1030 तक 380 वर्ष में तो 19 राष्ट्रकूट राजा दक्षिण में हुए और इसी समय उसके पश्चिमी भाग का नाम 'महाराष्ट्र' पड़ गया, जो आज भी महाराष्ट्र के नाम से विख्यात है।

वि.सं. 650 में इस वंश का 'दन्तिवर्मा' नामक राजा दक्षिण में राज्य करता था। जो वहाँ के राष्ट्रकूट राजा कृष्ण के पुत्र इन्द्र[25] का वंशज था। दन्तिवर्मा के बाद इन्द्रराज, गोविन्दराज, कर्कराज, इन्द्रराज (द्वितीय), दन्तिदुर्ग राजा हुए । दन्तिदुर्ग बड़ा प्रतापी राजा था। उसने वि.सं. 810 से कुछ पहले सोलंकी राजा कीर्तिवर्मा (द्वितीय) से उसके राज्य का काफी बड़ा भू–भाग छीनकर दक्षिण में राठौड़ों का फिर से शक्तिशाली राज्य स्थापित किया और सोलंकियों का विरुद 'वल्लभ' धारण किया।[26] दन्तिदुर्ग के निःसन्तान मरने पर उसका चाचा कृष्णराज (प्रथम) गद्दी पर बैठा। इसने दक्षिण के सोलंकियों का रहा सहा राज्य भी अपने अधिकार में कर लिया। हैदराबाद निजाम राज्य में एलोरा में जो कैलाश मन्दिर पर्वत को काट कर बनाया गया है वह इसी राजा का बनवाया हुआ है। कृष्णराज के बाद उसका पुत्र गोविन्दराज (द्वितीय) राज्य की गद्दी पर बैठा किन्तु यह भोग विलास में लीन रहता था । इसलिए उसका छोटा भाई ध्रुवराज वि.सं. 836 के करीब उसको राजसिंहासन से उतार कर स्वयं राजगद्दी पर बैठ गया।[27] ध्रुवराज ने उत्तर में अयोध्या तक और दक्षिण में कांची तक विजय प्राप्त की। उसके बाद गोविन्दराज (तृतीय) अमोघवर्ष गद्दी पर बैठा। उसने मान्यखेट नगर को अपनी राजधानी बनाया। उसने लगभग 62 वर्ष तक राज्य किया। अमोघवर्ष के समय का अरबी भाषा में 'सिलसिलालुतवारीख' नामक एक ग्रंथ है, जिसे अरब के सौदागर सुलेमान ने हि. सन् 237 (ई. सन् 852) में लिखा था। इसमें सुलेमान ने उसके विषय में लिखा है कि

ने वि.सं. 1653 (ई.स. 1596) में राष्ट्रौढ वंश महाकाव्य' लिखा था। उसके प्रथम सर्ग में लिखा है –

'अलक्ष्यदेहा तमवोचदेषा राजन्नसावस्तु तवैकसूनु : ।
अनेन राष्ट्रं च कुलं तवोढ राष्ट्रो (ष्ट्रो) ढनामा तदिह प्रतीतः ।।29।।

अर्थात – उस (लातनादेवी) ने आकाशवाणी के द्वारा उस राजा (नारायण) से कहा कि यह तेरा पुत्र होगा, और इसने तेरे राष्ट्र (राज्य) और वंश का भार उठाया है, इसलिए इसका नाम 'राष्ट्रोढ' होगा।

राठौड़ शब्द संस्कृत भाषा के राष्ट्रकूट शब्द से बना है। जैसाकि हम पूर्व में लिख आये हैं कि राष्ट्रकूट शब्द के अनेक प्राकृत रूपान्तर राठवट, राठवड, राठउड, राष्ट्रवर्ग व राष्ट्रोठ आदि पाये जाते हैं।[23] इस प्रकार राठौड़ वंश के लिए अनेक शब्द मिलते हैं । इन सभी शब्दों का एक ही अर्थ राष्ट्र जाति या वंश में श्रेष्ठ है।[24] राठौड़ मूलतः दक्षिण के महाराष्ट्र व उसके आस–पास के निवासी थे। पहले से राष्ट्रवंशी सामन्त व राजा अपने वंश के पूर्व महा शब्द लगाते थे। जिससे राष्ट्रवंशी स्वयं को महाराष्ट्री कहने लगे। जिसका प्राकृत रूप महारठिय या मराठी अभिलेखों में मिलता है।

राठौड़, मारवाड़ में कन्नौज से आये थे। कन्नौज में इन्होंने लगभग 200 वर्ष से अधिक समय तक राज्य किया था। इससे पहले इनका राज्य दक्षिण में था, पर इनका इतिहास ई. सन् छटी शताब्दी से पहले का नहीं मिलता। राठौड़ों का उत्तर से दक्षिण में जाना और फिर वहाँ से उत्तर में आना पाया जाता है और ऐसा ही राठौड़ मानते हैं। छटी शताब्दी से राठौड़ों के इतिहास की कुछ कुछ सामग्री मिलती है, पर उससे भी सिलसिलेवार इतिहास तैयार नहीं होता। वैसे शिलालेखों में कुछ–कुछ प्रमाण इस बात के भी मिलते हैं कि अशोक के काल में राष्ट्रीक (राठौड़) वंश का राज्य दक्षिण भारत में मौजूद था। जैसा कि हम आगे बता चुके हैं परन्तु उनके संवत, राजधानी व राजा का नाम, कुछ भी प्राप्त नहीं होते।

यहाँ से चलकर आगे छटी शताब्दी में अभिमन्यु नामक एक राजा का नाम मिलता है, जो इस वंश का था उसी के दिये हुए एक ताम्रपत्र से यह भी पता चलता है कि वह मानांक नामक राजा की चौथी पीढ़ी में था। इससे आगे सं. 650 वि. तक का कुछ भी इतिहास नहीं मिलता। इसके बाद से इनका इतिहास अधिक स्पष्ट मिलता है। वि.सं. 1030 तक 380 वर्ष में तो 19 राष्ट्रकूट राजा दक्षिण में हुए और इसी समय उसके पश्चिमी भाग का नाम 'महाराष्ट्र' पड़ गया, जो आज भी महाराष्ट्र के नाम से विख्यात है।

वि.सं. 650 में इस वंश का 'दन्तिवर्मा' नामक राजा दक्षिण में राज्य करता था। जो वहाँ के राष्ट्रकूट राजा कृष्ण के पुत्र इन्द्र[25] का वंशज था। दन्तिवर्मा के बाद इन्द्रराज, गोविन्दराज, कर्कराज, इन्द्रराज (द्वितीय), दन्तिदुर्ग राजा हुए । दन्तिदुर्ग बड़ा प्रतापी राजा था। उसने वि.सं. 810 से कुछ पहले सोलंकी राजा कीर्तिवर्मा (द्वितीय) से उसके राज्य का काफी बड़ा भू–भाग छीनकर दक्षिण में राठौड़ों का फिर से शक्तिशाली राज्य स्थापित किया और सोलंकियों का विरुद 'वल्लभ' धारण किया।[26] दन्तिदुर्ग के निःसन्तान मरने पर उसका चाचा कृष्णराज (प्रथम) गद्दी पर बैठा। इसने दक्षिण के सोलंकियों का रहा सहा राज्य भी अपने अधिकार में कर लिया। हैदराबाद निजाम राज्य में एलोरा में जो कैलाश मन्दिर पर्वत को काट कर बनाया गया है वह इसी राजा का बनवाया हुआ है। कृष्णराज के बाद उसका पुत्र गोविन्दराज (द्वितीय) राज्य की गद्दी पर बैठा किन्तु यह भोग विलास में लीन रहता था । इसलिए उसका छोटा भाई ध्रुवराज वि.सं. 836 के करीब उसको राजसिंहासन से उतार कर स्वयं राजगद्दी पर बैठ गया।[27] ध्रुवराज ने उत्तर में अयोध्या तक और दक्षिण में कांची तक विजय प्राप्त की। उसके बाद गोविन्दराज (तृतीय) अमोघवर्ष गद्दी पर बैठा। उसने मान्यखेट नगर को अपनी राजधानी बनाया। उसने लगभग 62 वर्ष तक राज्य किया। अमोघवर्ष के समय का अरबी भाषा में 'सिलसिलालुतवारीख' नामक एक ग्रंथ है, जिसे अरब के सौदागर सुलेमान ने हि. सन् 237 (ई. सन् 852) में लिखा था। इसमें सुलेमान ने उसके विषय में लिखा है कि

वह संसार के चार बड़े बादशाहों में से एक था ।[28]

अमोघवर्ष के बाद उसका उत्तराधिकारी कृष्णराज हुआ। उसने गंगातट तक के देशों पर चढ़ाइयाँ की। उसका विवाह चेदिदेश के कलचुरि वंशी राजा कोकल्ल की पुत्री से हुआ था। वह इसके मामा की लड़की थी ।[29] उससे जततुंग नामक पुत्र हुआ जिसका देहान्त युवराज काल में ही हो जाने से कृष्णराज की मृत्यु होने पर उसका पौत्र इन्द्रराज (तृतीय) दादा के बाद स. 970 में गद्दी पर बैठा। खंभात[30] ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि उसने उज्जयिनी पर आक्रमण किया, यमुना को पार किया और फिर कन्नौज को जीत लिया।[32] उसके बाद इसका पुत्र अमोघवर्ष (द्वितीय) गद्दी पर बैठा। उसने केवल एक वर्ष राज्य किया। उसके पश्चात उसका उत्तराधिकारी भाई गोविन्दराज (चतुर्थ) हुआ। गोविन्दराज के बाद इन्द्रराज (तृतीय) का भाई अमोघवर्ष (तृतीय) राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। उसके चार पुत्रों कृष्णराज, जगतुंग, खोटिंग और निरूपम के नाम मिलते हैं। कृष्णराज (तृतीय) अमोघवर्ष (तृतीय) का ज्येष्ठ पुत्र होने से वही उसकी मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने कई लड़ाईयाँ लड़ी थी। हिमालय से लंका तक और पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक के राजा उसके अधीन थे। कृष्णराज के समय तक मालवा के परमार राठौड़ों के अधीन रहे।[32]

कृष्णराज के समय हिजरी सन् 332 (वि.सं. 1001, ई. सन् 944) में अरब यात्री अलमसूदी ने 'मरुजुलजहब' नामक पुस्तक लिखी थी। उसमें लिखा है– 'इस समय हिन्दुस्तान के राजाओं में सबसे बड़ा मानकेर (मान्यखेट) का राजा बलहरा (राठौड़) है। हिन्दुस्तान के बहुत से राजा उसको अपना मालिक मानते हैं। कोल्लगल्ल के वि.सं. 1024, फाल्गुन सुदी 6 (ई. सन् 968 दिनांक 7 फरवरी) के लेख से पाया जाता है कि उसी वर्ष कृष्णराज का देहान्त हो गया और उसका भाई खोटिंग उसका उत्तराधिकारी हुआ ।[33]

खोटिंग के गद्दी पर बैठने के बाद से ही दक्षिण के राठौड़ों की

अवनति होने लगी। खोटिंग अपने पूर्वजों की भांति साहसी और शक्तिशाली नहीं था। उसके समय में मालवा के परमारों ने चढ़ाई कर उसकी राजधानी मान्यखेट को लूटा। उदयपुर (मालवा) प्रशस्ति में लिखा है कि राजा हर्षदेव (सीयक द्वितीय) ने युद्ध में खोटिंग को परास्त किया। यह लड़ाई नर्मदा के किनारे खलघाट पर हुई । उसी युद्ध में खोटिंग मारा गया।[34] उसके बाद उसके छोटे भाई निरुपम का पुत्र कर्कराज (द्वितीय) गद्दी पर बैठा। उसके समय में राठौड़ों की रही–सही शक्ति भी लुप्त हो गई। खारेपाटण के ताम्रपत्र में लिखा है कि वि.सं. 1065 ज्येष्ठ शुदी 15 (ई. सन् 1008 दिनांक 22 मई) को चालुक्य राजा तैलप ने कर्कराज (द्वितीय) से राठौड़ों का राज्य छीन लिया।[35] कर्कराज के बाद गंगवंशी नीलबातांक मारसिंह तथा कतिपय राठौड़ सरदारों ने कृष्णराज (तृतीय) के पुत्र इन्द्रराज (चतुर्थ) को गद्दी पर बैठाकर राठौड़ राज्य कायम रखने का प्रयत्न किया परन्तु उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली ।[36] इस प्रकार दक्षिण में राठौड़ों का महाप्रतापी साम्राज्य नष्ट हो गया और उनकी जो छोटी शाखाओं की जागीरें कायम हुई थी, वे चालुक्यों (सोलंकी) के अन्तर्गत बनी रही। कुछ शाखाएँ इसके पहले से गुजरात[37], मध्यप्रांत[38], मालवा, हथूंडी (मारवाड़)[39] और कन्नौज आदि की तरफ चली गई थी और उन्होंने उधर छोटे–बड़े राज्य बना लिये थे।

कन्नौज के राठौड़

दक्षिण से चलकर राठौड़ों ने कन्नौज में कुछ समय तक निवास किया। करीब 60 वर्ष बाद गहड़वाल वंश के नाम से चन्द्रदेव ने सारा पांचाल देश विजयकर कन्नौज पर अधिकार कर उसको राजधानी बनाया। चन्द्रदेव के दानपत्र वि.सं. 1148 से लगाकर 1156 (ई. सन् 1091 से 1099) तक के मिले हैं ।[40] वि.सं. 1154 के अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने अपने जीवन काल में ही अपने बड़े पुत्र मदनपाल को राजकाज सौंप दिया था।[41] उसके दूसरे पुत्र का नाम विग्रहपाल था, जिससे बदायूं की शाखा चली।[42] मदनपाल का बड़ा पुत्र गोविन्दचन्द्र उसके पीछे उसका

उत्तराधिकारी हुआ तथा उसके पश्चात विजयचन्द्र। विजयचन्द्र ने गजनी के मुसलमानों को बड़ी बुरी तरह हराया था। वृद्धावस्था में उसने अपने जीतेजी अपने पुत्र जयचन्द्र को राजकाज सौंप दिया था। जयचन्द्र का राज्याभिषेक वि.सं. 1226 अषाढ़ शुदी 6 रविवार (दिनांक 21 जून 1170 ई.) को हुआ था।[43] महाराजा जयचन्द्र बड़ा प्रतापी था। वह विद्वानों का सत्कार करने वाला था, किन्तु उसमें ईर्ष्या की मात्रा कुछ अधिक थी। दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज चौहान और उसमें अनबन रहती थी, जो दिनोदिन बढ़ती गई और अन्ततः संयोगिता के स्वयंवर ने हिन्दुस्तान की दोनों ही महान शक्तियों का नाश कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि तराइन के युद्ध 1193 ई. में पृथ्वीराज चौहान के काम आ जाने से दिल्ली का साम्राज्य मुसलमानों के हाथ लग गया, किन्तु उसके दूसरे ही वर्ष वि.सं. 1250 में चन्दावर (इटावा, उ.प्र.) के युद्ध में सुल्तान गोरी ने जयचन्द्र को भी नहीं छोड़ा और इस तरह आपस की फूट का फल यह हुआ कि भारत में मुसलमानों का स्थायी शासन स्थापित हो गया।

जयचन्द्र के बाद उसका पुत्र हरिश्चन्द्र कन्नौज के सिंहासन पर बैठकर राज्य करने लगा। यद्यपि कन्नौज मुसलमानों द्वारा लूटा जाकर उसका प्रभाव घट गया था तथापि वहाँ 33 वर्ष तक जयचन्द्र के वंश में बना रहा। वि.सं. 1283 (ई. सन् 1226) के करीब जब कन्नौज पर सुलतान इल्तुतमिश की चढ़ाई हुई तब हरिश्चन्द्र अपने कुटुम्ब वालों को लेकर फर्रुखाबाद जिले के गाँव महुई में चला गया। महाराजा हरिश्चन्द्र के एक पुत्र का नाम सेतराम था जो शायद छोटा था। सीतामऊ राज्य के कुलगुरू प्रख्यात कवि लालजी ने एक सोरठा लिखा है जिसमें सेतराम के दो पुत्र बताये गये हैं –

"कीरतजुत कमधेश सेतराम सुत दो भये ।
सियोज मरुधर देश धनराज दाखिन गयो ।।"

अर्थात कीर्तियुक्त राठौड़ पति सेतराम के दो पुत्र हुए जिनमें सीहाजी तो मारवाड़ देश गये जहाँ बाद में उनके वंशजों ने जोधपुर, बीकानेर राज्य की

स्थापना की और दूसरा पुत्र धनराज दक्षिण में गया।[44]

जोधपुर राज्य की बनी वंशावली जो प्रचलित हो गई है और अनायास ही उसमें जयचंद को राठौड़ मान लिया गया है । यह गलत है, क्योंकि अधिकांश इतिहासकार ठीक ही दावा करते हैं कि कन्नौज के गहढ़वाल जिस क्षत्रिय कुल के हैं, वह राठौड़ों यानी राष्ट्रकूटों से निश्चित रूप से भिन्न हैं।

राठौड़ों का मालवा में आगमन

ऐसा कहा जाता है कि मालवा के प्रायः सब राजपूत राज्यों के निर्माता मुगल बादशाह ही थे। उनकी नींव डालने का यश उन्हीं बादशाहों के सिर मढ़ा जाता है, किन्तु यह विश्वास जितना प्रचलित और फैला हुआ है उतना ही गलत भी है। मुगलों ने तो केवल एक ही राजपूत राज्य की स्थापना की। मालवा की सीमा पर स्थित कोटा राज्य ही वह एक मात्र अपवाद है। दूसरे सब राजपूत यहाँ पर जागीरदार एवं जमींदार ही थे, उन्हें केवल दीवानी अधिकार ही दिये गये थे, फौजदारी अधिकार शाही अधिकारियों के ही हाथ में रहे।

जिन–जिन राजपूत घरानों ने मुगल बादशाहों की सच्चे दिल से स्वामि–भक्ति पूर्वक सेवा की, उनके वंशजों को मालवा में बसाने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया था और इस प्रकार मालवा राजपूतों के एक नये दल का प्रवेश हुआ और उन्हीं राजपूतों ने आगे चलकर मालवा में राठौड़ राज्यों की स्थापना की। जिस समय मुगलों ने मालवा को जीतकर अपने साम्राज्य में मिलाया था, उस समय यहाँ अफगानों एवं स्थानीय राजपूतों का ही आधिपत्य था। अफगान बहुत समय से मालवा पर शासन कर रहे थे और स्थानीय राजपूत मालवा की बादशाहत के अधीन रहकर भी एक प्रकार से स्वतंत्र थे। यही नहीं वर्षों तक उस मुसलमानी बादशाहत की नीति तथा उसके शासन का संचालन भी उन्होंने ही किया था। तब इन दोनों से यह आशा रखना कि वे मुगल शासन के प्रति किसी प्रकार

की विरोधी भावना न रखेंगे, व्यर्थ ही था। अकबर से लेकर औरंगजेब तक सभी मुगल बादशाहों की यह बड़ी इच्छा रही थी कि दक्षिण भारत को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया जावे और यह तभी सम्भव था जब मालवा को एक आज्ञाकारी तथा स्वामिभक्ति प्रान्त बनाया जाये।

अतः इन बादशाहों ने राजस्थान के राजपूत राजाओं के छोटे भाइयों तथा पुत्रों को मालवा में जागीर दी और इस प्रकार इस मालवा को इन स्वामिभक्त राजपूतों का एक उपनिवेश बनाने का प्रयत्न किया। केशवदास, जोधपुर के राव जोधा के पुत्र वरसिंह के वंश में भीमसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था। जिसे केशवदास भीमोत भी कहते हैं। इसने झाबुआ राज्य की ई. सन् 1607 में स्थापना की। जोधपुर के ही 19वें शासक राव मालदेव के ज्येष्ठ पुत्र राम के वंश में केशवदास ने चोली महेश्वर में 52 परगनों वाले विशाल राज्य की स्थापना की तत्पश्चात उसी के दत्तक पुत्र जगन्नाथ ने चोली महेश्वर के स्थान पर अमझेरा की स्थापना की ।[45]

इसी प्रकार राव उदयसिंह (1583–1595 ई.) मोटाराजा के पुत्र जालोर के शासक दलपत के पौत्र रतनसिंह ने ई. सन् 1656 में बादशाह शाहजहाँ को प्रसन्न कर रतलाम का राज्य पाया।[46] उसी रतनसिंह के वंशज केशवदास (1691–1694 ई.) द्वारा रतलाम में राज्य करने के उपरान्त यह राज्य औंरंगजेब द्वारा जब्त हो गया। बाद में पुनः केशवदास ने औरंगजेब को प्रसन्न कर ई. सन् 1701 को सीतामऊ राज्य की स्थापना की।[47] रतलाम का जब्तशुदा राज्य पुनः औरंगजेब ने रतनसिंह के पुत्र छत्रसाल को दे दिया। राजा छत्रसाल के पौत्र मानसिंह (1716–43 ई.) रतलाम की गद्दी पर रहा जबकि मानसिंह के भाई जयसिंह ने ई. सन् 1736 को सैलाना राज्य की स्थापना की।[48]

अलीराजपुर और जोबट राज्य के राठौड़ों का मालवा में आगमन के बारे में ऐसा माना जाता है कि महाराजा जयचन्द्रके पुत्र वरदाई सेन के पौत्र और सेतराम के पुत्र सीहा का मारवाड़ में आना व राज्य करना (1250–1273 ई.) बताया है। इसी प्रकार बरदाइसेन के भाई जयपाल का

सीधे मालवा में पहुँचकर उनके वंशजों द्वारा अलीराजपुर–जोबट राज्य की स्थापना करना दर्शाया गया है। राजा जयपाल की 21वीं पीढ़ी में राजा आनन्ददेव हुआ था।[49]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. श्रीराम शर्मा गोयल, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, 1, पृ. 46, जयपुर, 1982 ।
2. भण्डारकर, अशोक, पृ. 33 ।
3. अंगुत्तरनिकाय में भी 'रट्ठिकस्स' और पेत्तपिकस्त दो भिन्न पद लिखे हैं; हिस्ट्री ऑफ मिडीवल हिन्दू इण्डिया, भाग 2, पृ. 323।
4. हिस्ट्री ऑफ मिडीवल हिन्दू इण्डिया, 2, पृ. 152–153 ।
5. ई. सन् की दूसरी शताब्दी के भाजा, बेडसा, कारली और नानाघाट की गुफाओं के लेखों से ज्ञात होता है कि यह 'महारट्ठ' जाति बड़ी दानशील थी ।
6. कॉपर्स इन्सक्रिपशन्स इण्डिकेरम, भाग 1, पृ. 56 ।
7. महाभारत में 'आरट्ट' देश का उल्लेख मिलता हैं; कर्णपर्ण, अध्याय 43 ।
8. जर्नल बाम्बे एशियाटिक सोसायटी, भाग 16, पृ. 90 ।
9. केन टैम्पल्स इन्सक्रिप्शन्स, पृ. 92; आर्कियालाजिकल सर्वे वेस्टर्न इण्डिया, 5, पृ. 87 ।
10. इण्डियन ऐन्टिक्वेरी, 11, पृ. 111 ।
11. इण्डियन एन्टिक्वेरी, 18, पृ. 234 ।
12. जिस प्रकार लौकिक बोलचाल में 'मान्यखेट' का संक्षिप्त रूप 'माट' (यादव), 'विष्णुवर्धन' का 'वद्दिग' और 'चापोत्कर' का 'चाय' हो गया था, उसी प्रकार 'राष्ट्रकूट' (वंश) का भी 'रट्ट' हो गया

हो तो आश्चर्य नहीं ।

13. इण्डियन ऐन्टिक्वेरी, 12, पृ. 218 ।

14. जर्नल बाम्बे ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी, 18, पृ. 257 ।

15. वही, 18, पृ. 249–251; एपिग्राफिया इण्डिका, 5, पृ. 192 ।

16. रट्ट के वंश में राष्ट्रकूट का होना केवल कवि कल्पना ही मालूम होती है ।

17. चौहान कीर्तिपाल का वि.सं. 1218 का ताम्रपात्र ।

18. जिस प्रकार मालव जाति से शासित प्रदेश का नाम मालवा और गुर्जर जाति से शासित प्रदेश का नाम गुजरात हुआ, उसी प्रकार राष्ट्रकूट जाति से शासित प्रदेश दक्षिण कठियावाड़ का नाम सोराष्ट्र (सोरठ) और नर्मदा और माही नदियों के बीच के देश का नाम राट हुआ । तथा इसी राट को बाद में लोग लाट के नाम से पुकारने लगे । (मालवा का वह भाग जिसमें झाबुआ, अलीराजपुर राठ कहलाता था) गिरनार पर्वत से मिले स्कन्द गुप्त के लेख में भी सोरठ देश का उल्लेख है । इस प्रकार राष्ट्र (राठ) सुराष्ट्र (सोरठ) और महाराष्ट्र राष्ट्रकूटों का बोध है ।

19. ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 84 ।

20. ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, 1, पृ. 75 ।

21. इस वंश का यह नाम जसधवल के कोयलवाव (गोड़वाड़) से मिले वि.सं. 1208 के लेख में लिखा है ।

22. इस वंश का यह नाम राठौड़ सलखा के जोधपुर से 8 मील दूर वृहस्पति कुण्ड से मिले वि.सं. 1213 के लेख में दिया है ।

23. इस वंश के नाम का यह रूप राव सीहाजी के बीठ (पाली) से मिले वि.सं. 1330 के लेख में लिखा है ।

24. राठौड़ हम्मीर के फलोधी से मिले वि.सं. 1573 के लेख में राष्ट्रकूट शब्द का प्रयोग किया गया है ।

25. कलाडगी (मुम्बई) जिले के पेवूर गांव से मिले ताम्रपत्र से ज्ञात

होता है कि इन्द्र की सेना में 800 हाथी थे और चालुक्य (सोलंकी) जयसिंह ने इसी से दक्षिण का राज्य छीनकर वहाँ सोलंकियों का राज्य स्थापित किया । इस राष्ट्रकूट इन्द्र के बाद की कई एक पीढ़ियों के नाम नहीं मिलते । फिर दन्तिवर्मा से इनकी वंशावली प्राप्त होती है – इण्डियन एन्टिक्वेरी, भाग 8, पृ. 12; ओझा, जोधपुर., भाग 1, पृ. 88 ।

26. राठौड़ों के राज्यकाल में जो अरब यात्री भारत आये उन्होंने राठौड़ों को 'बलहरा' लिखा है जो वल्लभराज के लौकिक रूप 'बलहराय' का बिगड़ा हुआ रूप है ।

27. जोधपुर., भाग 1, पृ. 93 ।

28. जोधपुर., भाग 1, पृ. 100 ।

29. मामा की लड़की से विवाह करने को नर्मदा से उत्तर वाले बुरा मानते है, परन्तु दक्षिण में इसकी प्रथा है और वहाँ पर चारों वर्ण के लोग मामा की लड़की से शादी करते हैं । यह प्रथा प्राचीन है क्योंकि अर्जुन, श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और पौत्र अनिरुद्ध के विवाह उनके मामा की लड़कियों से होना लिखा है, परन्तु यह धर्म विरुद्ध ही माना गया है ।

30. बम्बई अहोत के खंभात राज्य की राजधानी ।

31. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ. 122; अल्तेकर, दि राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ. 101–102 ।

32. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 19, पृ. 236; ओझा, जोधपुर., भाग 1, पृ. 106 ।

33. ओझा, जोधपुर., भाग 1, पृ. 106–07 ।

34. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 14, पृ. 197; राजपूताना म्युजियम (अजमेर) की रिपोर्ट 1916–17 ई., पृ. 2 ।

33. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 3, पृ. 292, 267 ।

36. अल्तेकर, दि राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ. 131 ।

37. इण्डियन ऐन्टिक्वेरी, भाग 12, पृ. 158 ।
38. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 8, पृ. 163 ।
39. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 10, पृ. 20; ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 1, पृ. 131–132 ।
40. जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 1, पृ. 129 ।
41. इण्डियन ऐन्टिक्वेरी, भाग 28, पृ. 11 ।
42. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ. 61 ।
43. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 4, पृ. 121 ।
44. जगदीशसिंह गहलोत, मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ. 91 ।
45. अमझेरा राज्य का इतिहास, पृ. 115 ।
46. रतनरासो, पृ. 82; रतलाम का प्रथम राज्य, पृ. 95–96 ।
47. रतलाम का प्रथम राज्य, पृ. 336–337; सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 21–22 ।
48. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 8–9 ।
49. महाराजा उम्मेदसिंह (जोधपुर) के जन्म शताब्दी वर्ष 2003 ई. के उपलक्ष्य में मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट जोधपुर द्वारा प्रकाशित राठौड़ वंशावली ।

***

अध्याय – 3

मालवा की राठौड़ रियासतों का इतिहास

1. रतलाम राज्य का संक्षिप्त इतिहास

जोधपुर के राठौड़ शासक राव मालदेव की मृत्युपरान्त उसका छटा पुत्र राव चन्द्रसेन उसका उत्तराधिकारी बना । उसके बड़े भाई उदयसिंह को पिता द्वारा दी गई फलौदी की जागीर लेकर ही सन्तोष करना पड़ा। मुगल सम्राट अकबर की अजमेर यात्रा के दौरान उसने शाही सेवा स्वीकार की।[1] सन् 1583 ई. में अकबर ने उसे जोधपुर का शासक बनाया।[2] उदयसिंह अपने स्थूल शरीर के कारण इतिहास में 'मोटा राजा' के नाम से प्रसिद्ध है। उदयसिंह का चौथा पुत्र दलपत हुआ। इसी दलपत के वंशजों ने रतलाम राज्य की स्थापना की थी। दलपत को जोधपुर राज्य की तरफ से बालाहेड़ा का कुछ हिस्सा जागीर में मिला था।[3] कहीं–कहीं उसे पीसांगन और खेरवा की जागीर मिलने का उल्लेख भी मिलता है ।

मात्र 31 वर्ष की अवस्था में ही दलपत की मृत्यु हो गयी। तब उसका ज्येष्ठ पुत्र महेशदास उसकी जागीर का स्वामी बना।[4] शाहजहाँ के मुगल सम्राट बनने के पश्चात उसने महाबत खाँ को अजमेर का सूबेदार बनाया । तब महेशदास महाबत खाँ की सेवा में चला गया। तब कई शाही अभियानों में महेशदास ने अपनी सफल सेवाएँ दीं।[5] फलस्वरूप उसके पद एवं सम्मान में वृद्धि की गयी।[6] अगस्त 31, 1642 ई. को शाहजहाँ ने प्रसन्न होकर 2000/2000 का मनसब एवं जालौर का परगना प्रदान किया ।[7]

शाहजहाँ द्वारा बल्ख की विजय के दौरान महेशदास ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। उसके पश्चात् मार्च 6, 1647 ई. को महेशदास की लाहौर में मृत्यु हो गयी।[8] मृत्यु के समय उसका मनसब 3000/2500 का था।

रतनसिंह

शाहजहाँ ने यह सोचकर की महेशदास की सेना तितर–बितर न हो जावे, महेशदास की मृत्यु के साथ ही जालौर का परगना उसके पुत्र रतनसिंह को दे दिया।

रतनसिंह का जन्म वि.सं. 1675 चैत्र वदि अमावस्या (शनिवार, मार्च 6, 1619 ई.) को बालाहेड़ा में हुआ था।[9] उसकी माँ आम्बेर के नवलसिंह लूणकरण राजावत की पुत्री कुसुम कुअरदे थी। रतनसिंह महेशदास का पाटवी पुत्र था। परन्तु ऐसा कहा जाता है कि महेशदास अपने दूसरे पुत्र कल्याणदास को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था क्योंकि वह उसकी मां से अधिक प्रसन्न था ।[10]

महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंह के अनुसार – "उन दिनों ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकारी होने का नियम सदैव नहीं पाला जाता था। लड़ाई–भिड़ाई के इस युग में जब मुगल शासकों की सत्ता का प्रताप सब दूर फैला हुआ था, उत्तराधिकारी का चुनाव अनेक बातों के आधार पर होता था। उत्तराधिकारी बनने की उपयुक्तता, युद्ध में उसकी वीरता और साहस एवं योद्धाओं का नेतृत्व कर सकने की उसकी योग्यता, उसके प्रति उसके पिता की भावना तथा उस विशिष्ट पुत्र के संबंध में मुगल सम्राट की धारणा का इस चुनाव पर बहुत प्रभाव पड़ता था।"[11]

जनवरी 22, 1641 ई. को शाहजहाँ की वर्षगांठ के उत्सव के समय हाथियों की लड़ाई के दौरान शाहजहाँ का 'कहरकोप' नामक हाथी आपे से बाहर होकर शाही दरबार की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। तब सीढ़ियों के पास खड़े रतनसिंह ने उसे पीछे हटाने के लिये अपनी कटार निकाली और आगे बढ़ा। अपने सामने आते हुए रतनसिंह पर हाथी ने हमला किया और उसे अपनी सूंड से उठा लिया। रतनसिंह ने फिर भी उसके सिर पर कटार मारी और मौका देखकर वह सूंड से निकलकर उसके सिर पर जा बैठा और कटार से हाथी पर वार करता ही रहा। अन्त में हाथी घबरा गया और लौटा, तब अवसर पाकर रतनसिंह भी हाथी पर से कूद गया।[12]

रतनसिंह की इस वीरता से शाहजहाँ बहुत प्रसन्न हुआ और उसे महेशदास का उपयुक्त उत्तराधिकारी माना। इस प्रकार अपनी वीरता, धैर्य और साहस द्वारा रतनसिंह ने शाहजहाँ का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। रतनसिंह की ख्याति सर्वत्र फैल गई और महेशदास ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया।[13]

जिस समय महेशदास को जालौर का परगना मिला सम्भवतः उसी समय रतनसिंह भी शाही मनसबदार बना और उसे चार सदी जात और दो सौ सवारों का मनसब मिला।[14] महेशदास का क्रियाकर्म करते ही रतनसिंह शाही सेना में चला गया तथा बल्ख की लड़ाई में औरंगजेब के नेतृत्व में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।[15] इस अभियान से लौटकर उसने जालौर की व्यवस्था की।

शाहजहाँ के शासनकाल में कंधार पर हुए तीन घेरों में से दो घेरों के दौरान रतनसिंह भी शाही सेना के साथ था।[16] मेवाड़ के महाराणा राजसिंह द्वारा चित्तौड़ के किले की मरम्मत करवाने पर शाही विरोध स्वरूप भेजी गयी शाही सेना में भी रतनसिंह उपस्थित था।[17]

इस प्रकार निरन्तर शाही सेवा में रहने से रतनसिंह जालौर की देख भाल नहीं कर पा रहा था। अतः वहाँ की आमदनी घट गयी थी जिससे उसको आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ रहा था। तब उसने अपनी स्थिति से बादशाह शाहजहाँ को अवगत कराया। साथ ही दारा शिकोह से भी उसने अपनी आर्थिक स्थिति की चर्चा कर ली थी। दारा रतनसिंह से प्रसन्न रहता था। अतः उसने भी शाहजहाँ से निवेदन किया। तब शाहजहाँ ने भी जालौर के बदले में दूसरा परगना रतनसिंह को देने का विचार किया। उसी दौरान 1656 ई. में पृथ्वीराज राठौड़ की मृत्यु हो जाने से मालवा सूबे में उसकी जागीर के अन्य परगनों के साथ ही रतलाम का परगना भी खाली हो गया।[18]

रतलाम परगने का राठौड़ वीरों से पर्याप्त संबंध रहा था। अतः

शाहजहाँ ने रतनसिंह को यही रतलाम का परगना[19] वतन के रूप में वंश परम्परागत रूप से दे दिया और मनसब के अनुरूप आमदनी पूरी करने को मालवा में बदनावर, तीतरोद, आगर, कोठड़ी–पिड़ावा, बड़ौद, आलोट आदि परगने एवं गड़गुचा, रामगढ़, नाहरगढ़ आदि के आस–पास जागीर दी जो व्यक्तिगतरूपेण ही रतनसिंह के अधिकार में आई।[20]

यह परगना बादशाह अकबर के समय से ही मालवा सूबे की उज्जैन सरकार के अन्तर्गत था।[21] उस समय से ही यह क्षेत्र राजपूतों के ही अधिकार में रहा, यहाँ प्रधानतया सोंधिये राजपूतों की ही बस्ती थी। जहाँगीर के शासनकाल में यह परगना कई वर्षों तक जोधपुर के महाराजा सूरसिंह की जागीर में रहा। 7 सितम्बर, सन् 1619 ई. में सूरसिंह की मृत्यु होने पर यह परगना खालसा हो गया और बारह–तेरह वर्ष तक खालसा ही रहा। सन् 1631 ई. के पश्चात् यह परगना पृथ्वीराज राठौड़ को प्राप्त हुआ जो मृत्युपर्यन्त उसके ही अधिकार में रहा।[22] उसकी मृत्युपरान्त यह परगना रतनसिंह को मिला था। परन्तु पृथ्वीराज का पुत्र जगतसिंह जिसे रतलाम के बदले नौलाई (बड़नगर) का परगना मिला था, वह रतलाम लेने का इच्छुक था, फलस्वरूप रतनसिंह को मालवा में अपनी सत्ता स्थापित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ा था।[23]

मई, 1656 ई. के लगभग रतनसिंह जालौर छोड़कर रतलाम चला आया और अपनी जागीर पर अपना अधिकार स्थापित कर शासन प्रबन्ध करने में लग गया। शासन संगठन के कार्य में रतनसिंह आगामी 7–8 माह तक उलझा रहा। दिसम्बर, 1656 ई. में शाही आदेशानुसार सेना सहित दक्षिण जाना पड़ा।[24] तब बीदर और कल्याणी के घेरे के समय वह औरंगजेब के नेतृत्व में शाही सेना में सम्मिलित था।[25]

मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन काल के उत्तरार्द्ध में उत्पन्न गृह कलह की परिणति धरमाट के युद्ध के रूप में हुई । उस युद्ध में रतनसिंह शाही सेना की ओर से जोधपुर महाराजा जसवन्तसिंह के नेतृत्व में वीरतापूर्वक लड़ते हुए खेत रहा।[26] इस युद्ध में रतनसिंह के छब्बीस तीर

और अस्सी तलवार के घाव लगे थे ।

रतनसिंह की छः पत्नियों एवं चार उपपत्नियों का उल्लेख मिलता है ।[27] कहीं–कहीं उसकी आठ रानियों का उल्लेख मिलता है ।[28] छः रानियों से रतनसिंह के बारह पुत्रों रामसिंह, रायसिंह, नाहरसिंह, करण, छत्रसाल, अखेराज, पृथ्वीराज, जेतसिंह, किशनसिंह, सूरसिंह, धीरतसिंह और सकतसिंह का उल्लेख मिलता है ।

महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंह लिखते हैं कि – "इस प्रकार सिर्फ दो वर्ष के बाद ही सद्यः स्थापित रतलाम राज्य के पहले राजा का शासनकाल समाप्त हुआ, और रतनसिंह ने मरकर अमरत्व प्राप्त किया। अपने जीवन की आखरी लड़ाई हार कर भी अन्त में वह जीत गया। उसके विजयी– विरोधी कट्टर औरंगजेब ने भी रतनसिंह की अद्वितीय वीरता उसके अलौकिक साहस तथा अनन्य स्वामिभक्ति के सामने नतमस्तक होकर उसके वंशजों को जीवन भर अपनाया"[29]

धरमाट के युद्ध में रतनसिंह के मारे जाने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह रतलाम का शासक बना। रतनसिंह शाही सेवा में रहते हुए अनवरत युद्धों में ही रहा। अतः युवराज काल से ही राज्य का भार उसी पर था।[30] रतनसिंह की शाही निष्ठा से औरंगजेब अनभिज्ञ न था। अतः उसने रतनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह को 1000 जात और 800 सवारों का मनसब प्रदान किया और रतनसिंह की वंश परम्परागत जागीर रामसिंह को 'वतन' के रूप में दी गई।[31] इस समय रामसिंह को केवल रतलाम का परगना ही प्राप्त हुआ था ।

उस दौरान दक्षिण में शिवाजी मुगलों का प्रबल विरोधी था तथा साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर रहा था। अतः इस विद्रोह को दबाने के लिये मिर्जा राजा जयसिंह के साथ रामसिंह को भी दक्षिण में नियुक्त किया गया। इस दौरान उसने पुरन्दर के घेरे तथा पुरन्दर की संधि के पश्चात् बीजापुर की चढ़ाई में अपनी सेवाएँ दी।[32] उसकी वीरता से प्रसन्न

होकर मिर्जा राजा जयसिंह ने भी तब औरंगजेब से उसके मनसब में वृद्धि की अनुशंसा की थी।[33]

इसी तरह आगे जाकर उसकी शाही सेवा के फलस्वरूप उसके मनसब में वृद्धि तथा रतलाम परगने से लगे बदनावर और रामगढ़ के परगने भी रामसिंह को साम्राज्य की ओर से दिये गये।[34] अन्त में दक्षिण में ही शाही सेना के साथ वह काफी लम्बे समय तक अपनी सेवाएँ देता रहा और मराठों के साथ अनेक छुट–पुट युद्ध किये। तथा कल्याण–भिवण्डी के पास हुए युद्ध के दौरान स्वास्थ्य खराब होने से उसकी मृत्यु हो गयी।[35]

इस प्रकार कल्याण में रामसिंह की मृत्यु हुई तथा इसकी सूचना अप्रेल 18, 1683 ई. को रतलाम पहुँची। तब उसकी दो रानियाँ शेखावत मान कुंअर तथा भटियाणी मनसुखदे कुंअर तथा 19 उपपत्नियाँ एवं खवासिने रतलाम में उस दिन सती हुईं।[36]

रामसिंह के सात विवाह[37] करने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पहला विवाह रामपुरा की चन्द्रावत श्याम कुंअर, दूसरा शेखावत मान कुंअर, तीसरा झाला अमृत कुंअर, चौथा भटियाणी मनसुखदे कुंअर, पाँचवा हाड़ी स्वरूपदे कुंअर, छठा नरुकी चांद कुंवर तथा सातवां भटियाणी रामकुंअर आदि।[38] रामसिंह के दो पुत्रों शिवसिंह तथा केशवदास का उल्लेख मिलता है।

रामसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह रतलाम का शासक बना। उसका जन्म 22 जुलाई, 1672 ई. को हुआ था तथा 21 मई, 1683 ई. को वह गद्दी पर बैठा । इस प्रकार गद्दीनशीनी के समय उसकी उम्र 11 वर्ष की थी।[39]

अल्पायु में ही अपनी जागीर का प्रबन्ध कर वह 1684 ई. में औरंगजेब की सेवा में दक्षिण पहुँचा। वहाँ से उसे चान्दा के सैनिक अभियान में भाग लेने जाना पड़ा।[40]

गद्दीनशीनी के समय रतलाम राज्य पर बीस हजार रुपये से अधिक

का कर्जा था। दूसरे ही वर्ष शाही सेना में सम्मिलित होने से रतलाम की आर्थिक स्थिति और अधिक बिगड़ गयी। केवल पाँच हजार रुपये ही वह दे सका। कर्जा न चुकाने की हालत में मालवा का दीवान राज्य के कुछ भागों पर अधिकार करने की सोचने लगा । तब शिवसिंह द्वारा औरंगजेब से प्रार्थना की गयी की उस वर्ष उससे पाँच हजार रुपये ही वसूले जाने का आदेश दे देवें तथा साथ ही रतलाम से लगे बदनावर परगने को वेतन के बदले उसे व्यक्तिगत रूप से प्रदान किया जावे ।[41] उसके बाद शिवसिंह मृत्युपर्यन्त दक्षिण में ही बना रहा। परन्तु उसकी मृत्यु की निश्चित तारीख ज्ञात नहीं हो पायी है और न ही इसकी पुष्टि ही हो पायी है कि वह किसी युद्ध में काम आया या स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त हुआ।

शिवसिंह का एक विवाह हुआ था परन्तु उसे कोई सन्तान नहीं थी, अतः उसका सौतेला भाई केशवदास रतलाम का शासक बना ।

केशवदास

केशवदास अपने भाई शिवसिंह के शासनकाल से ही शाही सेवा में आ गया था तथा अपने सिंहासनारोहण के समय वह दक्षिण में ही था।[42] अतः वह सिंहासनारोहण की रस्म के लिये रतलाम न आ सका। और न ही वह बाद में रतलाम के शासन प्रबन्ध हेतु आ सका । अतः रतलाम की आर्थिक स्थिति अधिक बिगड़ गई थी।[43]

केशवदास पूर्ण निष्ठा से दक्षिण में ही शाही सेवा में लगा हुआ था। इधर औरंगजेब द्वारा नियुक्त अमीन–इ–जजिया ने रतलाम में जजिया वसूली के दौरान राजपरिवार की दासियों से अभद्रता की। परिणामस्वरूप पृथ्वीराज चौहान तथा सुलतानसिंह चौहान आदि राजपूतों ने क्रोधवश 1694 ई. में अमीन–इ–जजिया नसिरुद्दीन तथा उसके कुछ साथियों को मार डाला।[44] फलस्वरूप रतलाम का परगना बादशाह द्वारा जब्त कर लिया गया। शाहजादा आजम इस समय मालवा का सूबेदार था। अतः रतलाम की यह जब्त जागीर आजम के अधिकार में चली गयी।[45] परन्तु केशवदास[46]

रावटी तथा हठीसिंह के पुत्र बैरीसाल[52] को धामनोद की जागीर दे दी। इस बंटवारे से राजा छत्रसाल के पुत्रों में असंतोष व्याप्त हो गया।

अपने राज्य के बंटवारे के उपरान्त छत्रसाल स्वयं उज्जैन चला गया। वहीं पर रहते हुए वि.सं. 1762 वैशाख सुदि 13 (बुधवार, 25 अप्रेल, 1705 ई.) को छत्रसाल की मृत्यु हो गयी।[53] छत्रसाल की मृत्युपरान्त केसरीसिंह रतलाम में उसका उत्तराधिकारी बना। परन्तु प्रतापसिंह अपने पिता के फैसले से असंतुष्ट था। उसी दौरान केसरीसिंह द्वारा धामनोद की जागीर भी अपने अधिकार में कर ली गयी । तब बैरीसाल जयपुर चला गया। इससे क्रुद्ध होकर प्रतापसिंह ने 1716 ई. में केसरीसिंह की हत्या कर दी।[54] हत्या के उपरान्त प्रतापसिंह ने अपने भाई केसरीसिंह के राज्य रतलाम पर भी अधिकार करना चाहा परन्तु केसरीसिंह का ज्येष्ठ पुत्र मानसिंह उस समय शाही सेवा में था।[55] सूचना मिलने पर वह रतलाम की ओर रवाना हुआ उसी दौरान उसने अपने छोटे भाई जयसिंह को भी सेना के साथ मन्दसौर बुलवा लिया था।[56] सूचना पाकर प्रतापसिंह ने भी सागोद नामक स्थान पर मोर्चा तैयार किया। तदनन्तर दोनों सेनाओं के मध्य सागोद नामक स्थान पर छः घण्टे तक घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में दोनों पक्षों को अत्यधिक क्षति उठानी पड़ी। इस युद्ध में प्रतापसिंह को कैद कर लिया गया तथा बाद में उसकी हत्या भी कर दी गयी।[57] तब अपने पिता केसरीसिंह के स्थान पर मानसिंह रतलाम का शासक बना।[58]

मानसिंह को सत्ता प्राप्त करने में बड़े ही कठिन दौर से गुजरना पड़ा था। मुश्किलों से प्राप्त राज्य का मोल भी वह नहीं समझ पाया। उसने रतलाम के नव स्थापित द्वितीय राज्य का तीस वर्षों तक उपभोग किया। परन्तु इतने लम्बे शासन काल में भी उसने कोई विशेष उल्लेखनीय कार्य नहीं किया था। उसका सारा शासनकाल आमोद–प्रमोद एवं राग रंग में ही बीता। साथ ही उसके द्वारा अपने छोटे से राज्य का भी बंटवारा कर दिया गया। रतलाम राज्य के अन्तर्गत सैलाना का ठिकाना सबसे बड़े ठिकानों में आता था उसे उसने अपने छोटे भाई जयसिंह को दे दिया।[59]

फिर भी शाही सेवा में बना रहा।

मई, 1656 ई. में रतनसिंह द्वारा स्थापित रतलाम राज्य का लगभग 38 वर्ष बाद जून, 1694 ई. में अन्त हो गया। तदन्तर सात–आठ वर्ष तक यह परगना खालसा ही रहा। 1702– 1703 ई. में यही परगना रतनसिंह के पाँचवें पुत्र छत्रसाल को जागीर में मिला और उसने रतलाम के दूसरे राज्य की स्थापना की ।[47]

रतलाम का द्वितीय राज्य

छत्रसाल 1667 ई. के लगभग शाही मनसबदार बनकर शाही सेवा में चला गया था।[48] उस समय वह सीतामऊ राज्य के गाँव लदूना में निवास करता था। लदूना में उसके द्वारा करवाये गये निर्माण कार्य की भी जानकारी मिलती है। गाँव के मध्य में उसके द्वारा बनवाये गये दरवाजे के अवशेष वहाँ आज भी विद्यमान हैं। गाँव के लोग इन अवशेषों के कारण उस स्थान को 'सूरज पोल' कहते हैं।

शाही सेवा में जाने के पश्चात उसे 1691 ई. में दक्षिण स्थित पन्हाला दुर्ग का किलेदार तथा फौजदार नियुक्त किया गया। उसी दौरान 1692 ई. के लगभग मराठों द्वारा पन्हाला पर आक्रमण किया गया।[49] उस आक्रमण के समय हुए युद्ध में छत्रसाल द्वारा अद्भुत वीरता प्रदर्शित करने का उल्लेख मिलता है । उसके इस युद्ध में तीस घाव लगे थे।[50] इस युद्ध में छत्रसाल का पुत्र हठीसिंह वीरगति को प्राप्त हुआ था।[51] इस युद्ध में विशेष वीरता प्रदर्शित करने के उपलक्ष में रतलाम का परगना जो खालसा था पुनः छत्रसाल को सौंप दिया गया और इस प्रकार छत्रसाल राठौड़ द्वारा रतलाम के द्वितीय राज्य की स्थापना की गयी।

छत्रसाल के उस समय दो पुत्र जीवित थे। केसरीसिंह एवं प्रतापसिंह। छत्रसाल स्वयं के पुत्र हठीसिंह के वीरगति प्राप्त होने के गम से उबार नहीं पाया था। अतः उसने रतलाम राज्य का बंटवारा कर दिया। अपने जीवित पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र केसरीसिंह को रतलाम, प्रतापसिंह को

इसके अतिरिक्त उसने अपने पुत्र राजसिंह को मलवासा, दीपसिंह को झड़वासा, सवाईसिंह को पलसोड़ा तथा कुशालसिंह को अमलेटा की जागीर दी थी।[60]

राजा मानसिंह की मृत्यु वि.सं. 1800 कार्तिक सुदि 3, रविवार[61] को हुई। उसकी मृत्युपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंह रतलाम का शासक बना।[62] पृथ्वीसिंह के शासनकाल में राज्य में मराठों का आतंक बढ़ने लगा था। अतः वह भी अपने शासन को सुचारु रूप से नहीं चला सका। वह मराठों की समस्या से अनवरत जूझता रहा और 30 वर्ष के शासन काल में यह भी कोई विशेष कार्य अपने राज्य के हित में नहीं कर सका। ऐसी ही विकट परिस्थितियों से जूझते हुए 1773 ई. में उसकी मुत्यु हो गयी।[63]

राजा पृथ्वीसिंह की एक पुत्री सरसकुंवर का विवाह उदयपुर महाराणा राजसिंह से हुआ था तथा दूसरी पुत्री सरदारकुंवर का विवाह महाराणा राजसिंह के भतीजे अड़सिंह के साथ हुआ था।[64] पृथ्वीसिंह एवं उसके कुटुम्बीजनों द्वारा रतलाम में कुछ निर्माण कार्य करवाये जाने का उल्लेख भी मिलता है। उसकी पुत्री सरसकुंवर ने एक रामचन्द्र जी का शिखरबन्द मंदिर बनवाया तथा सरदारकुंवर ने शिखरबन्द जगदीश जी का मन्दिर थावरिया बाजार में बनवाया। पृथ्वीसिंह की पासवान ने कालका माता मन्दिर का निर्माण करवाया था। पृथ्वीसिंह स्वयं ने पृथ्वीपोल का निर्माण करवाया था।[65]

पृथ्वीसिंह की मृत्यु उपरान्त उसका पुत्र पद्मसिंह रतलाम की गद्दी पर बैठा। पद्मसिंह का जन्म वि.सं. 1805 चैत्र सुदि 4 (मंगलवार, 22 मार्च, 1748 ई.) को हुआ था। पद्मसिंह की पत्नी अमृतकुंवर ने तालाब का निर्माण करवाया था। जिसका नाम अमृत सागर रखा गया।[66] वि.सं. 1857 (1800 ई.) में राजा पद्मसिंह का निधन हो गया।[67]

पद्मसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र पर्वतसिंह हुआ। पर्वतसिंह

का जन्म वि.सं. 1833 पोष सुदि 14 (बुधवार, 22 जनवरी, 1777 ई.) को हुआ।[68] राजा पर्वतसिंह के शासनकाल में मराठों का आतंक अत्यधिक बढ़ गया था। 1801 एवं 1803 ई. में जसबन्तराव होल्कर ने क्रमशः रतलाम में दो बार लूटपाट की। उसी दौरान धार के शासक ने भी रतलाम के आन्तरिक मामले में दखल देकर राज्य में गड़बड़ी फैलाई। इन घटनाओं से राज्य की आर्थिक स्थिति बद से बदत्तर होती गयी। ऐसी स्थिति में सिन्धिया को पूर्व निश्चित कर नहीं दिया जा सका परिणामस्वरूप सिन्धिया ने बापू सिन्धिया के नेतृत्व में रतलाम पर आक्रमण किया।[69] इधर पर्वतसिंह ने भी 12000 सैनिकों को साथ लेकर उचानगढ़ के किले से उसका सामना किया। वहाँ हुए युद्ध में राजा पर्वतसिंह की विजय हुई। मराठों को हार का सामना करना पड़ा। तब जान मालकम की मध्यस्थता से सिन्धिया एवं रतलाम के शासक पर्वतसिंह के मध्य सुलह हुई।[70]

जनवरी 5, 1819 ई. को अंग्रेजों एवं सिन्धिया के मध्य संधि हुई जिसके अनुसार अंग्रेजों ने रतलाम राज्य द्वारा सिन्धिया को दिया जाने वाला कर समय पर चुकता करवाने की जिम्मेवारी ली और उसके बदले सिन्धिया को रतलाम के समस्त आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप छोड़ना पड़ा।[71]

सिन्धिया के संकट से रतलाम अभी उभर भी नहीं पाया था कि वहाँ गृहकलह प्रारम्भ हो गया। राजा पर्वतसिंह की मानसिक स्थिति खराब हो जाने की वजह से राज्य का कार्य उसकी झाली रानी सम्भालने लगी। इस पर उसकी दूसरी रानी चूण्डावतजी सलूम्बर में अपने मायके जाकर रहने लगी ।[72] उस समय वह गर्भवती थी। वहाँ उसने वि.सं. 1871 माह वदी 10, शुक्रवार[73] को एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम बलवन्तसिंह रखा गया।[74] परन्तु झाली रानी ने उसे असली पुत्र नहीं माना क्योंकि बलवन्तसिंह को असली पुत्र मानने पर वह ही रतलाम की गद्दी पर बैठता और झाली रानी अपने पुत्र विजयसिंह को गद्दी पर बिठाना चाहती थी। इस स्थिति में उत्पन्न संकट के हल के लिये यह तय किया गया कि

सलूम्बर वाले मेवाड़ महाराणा के भाई बन्ध हैं। अतः मेवाड़ महाराणा अपने राजकुमारों को बलवन्तसिंह के साथ एक थाली में भोजन करवाने पर सहमत हो जाते हैं तो बलवन्तसिंह रतलाम की गद्दी पर बैठ सकता है। इस पर महाराणा भीमसिंह द्वारा सहर्ष इसकी स्वीकृति दे दी गयी। उनका मानना था कि बलवन्तसिंह मेवाड़ का भानजा है और भानजे के साथ भोजन करने में किसको क्या आपत्ति हो सकती है । महाराणा भीमसिंह ने अपने पुत्रों के साथ ही अपने 16 उमरावों को भी बलवन्तसिंह के साथ भोजन करने की आज्ञा दी ।[75]

राजा पर्वतसिंह का विक्षिप्त मानसिक अवस्था में वि.सं. 1882 ज्येष्ठ वदि 12 (शनिवार, 14 मई, 1825 ई.) को निधन हो गया ।[76] उसके मरणोपरान्त बलवन्तसिंह रतलाम का शासक बना। उस समय उसकी उम्र मात्र ग्यारह वर्ष की थी। अल्पायु होने के कारण राज्य का कार्य पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल बोर्थविक की अध्यक्षता में चलने लगा।[77]

राजा बलवन्तसिंह की रानी राणावत जी ने गढ़ के अन्दर जनानी ड्योढ़ी के आगे दक्षिण दिशा की ओर एक मन्दिर का निर्माण करवाया था। मन्दिर का उद्यापन राजा बलवन्तसिंह ने वि.सं. 1913 माह सुदि 13, गुरुवार (5 फरवरी, 1857 ई.) को किया था।[78] राजा बलवन्तसिंह स्वयं धार्मिक प्रवृत्ति का था। वह साहित्य प्रेमी भी था। अतः अपने दरबार में कवियों एवं साहित्यकारों का पूर्ण सम्मान करता था ।[79] 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में राजा बलवन्तसिंह ने क्रान्तिकारियों के खिलाफ अंग्रेजों का खूब साथ दिया था। उसके बदले अंग्रेजों से उसने के साथ ही सम्मान भी प्राप्त किया था।[80] राजा बलवन्तसिंह का शासनकाल कुल मिलाकर शांतिपूर्ण रहा साथ ही उसकी आर्थिक स्थिति भी पूर्व के राजाओं की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ हो गयी थी।[81]

राजा बलवन्तसिंह का निधन वि.सं. 1914 भाद्रपद सुदि 5, बुधवार (24 अगस्त, 1857 ई.) को हुआ।[82] उसकी मृत्युपरान्त भैरोंसिंह वि.सं. 1914

भाद्रपद सुदि 15, शुक्रवार (4 सितम्बर, 1857 ई.) के दिन रतलाम का शासक बना ।[83]

राजा भैरोंसिंह का जन्म वि.सं. 1898 पौष वदि 14 (सोमवार, 10 जनवरी, 1842 ई.) को हुआ था।[84] राजा बलवन्तसिंह पुत्रविहीन मरा था। अतः भैरोंसिंह को झरवास से गोद लाया गया था। यह राजा मानसिंह की पांचवीं पीढ़ी में था ।[85] जैसाकि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में राजा बलवन्तसिंह ने अंग्रेजो की खूब सहायता की थी। उस समय उसे धन्यवाद व मौखिक सम्मान ही मिला था। कुछ ही समय में उसका निधन हो गया था। अतः अंग्रेजों द्वारा सम्मान के रूप में दिया जाने वाला खिलअत आदि उसके उत्तराधिकारी भैरोंसिंह को भेंट किया गया।[86]

राजा भैरोंसिंह में कुशल प्रशासक के गुण नहीं थे। वह राजकाज में विशेष ध्यान नहीं देता था । राज्य का कामकाज एक महाजन जो कि राज्य का नायब था वह करने लगा। कुछ समय पश्चात् राज्य के सारे प्रभावशाली पदों पर उसी महाजन के परिजनों की नियुक्ति हो गयी। भैरोंसिंह ने 6 वर्ष तक शासन किया। उसके शासनकाल में राज्य की आर्थिक स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी थी। राजा बलवन्तसिंह ने जिस आर्थिक स्थिति को सुधार कर अच्छी हालत में ला खड़ा किया था वहीं राजा भैरोंसिंह के शासनकाल में राज्य का खजाना खाली होने के उपरान्त राज्य पर और कर्ज चढ़ गया था।[87] उसी विकट परिस्थिति में राजा भैरवसिंह वि.सं. 1920 माह वदि 3 (बुधवार, 27 जनवरी, 1864 ई.) को निधन हो गया ।[88]

राजा भैरोंसिंह के निधनोपरान्त रणजीतसिंह रतलाम की गद्दी पर बैठा । रणजीतसिंह का जन्म वि.सं. 1917 फाल्गुन सुदि 6, शनिवार[89] को हुआ था। अपने पिता के निधन के समय रणजीतसिंह की उम्र लगभग तीन वर्ष की थी।[90] राजा रणजीतसिंह के अल्पवयस्क होने के कारण ईस्ट

इण्डिया कम्पनी के आदेश से रतलाम राज्य की शासन व्यवस्था का दायित्व सेण्ट्रल इण्डिया के गवर्नर जनरल ने अपने भारतीय सहायक खान बहादुर शाहमत अली को सौंपा। शाहमत अली की सहायता के लिये अमलेटा के तथा सरवन के ठाकुरों की नियुक्ति भी की गयी। शाहमत अली कुशल प्रशासक सिद्ध हुआ। जब वह रतलाम का प्रशासक नियुक्त हुआ उस समय राज्य की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी। राजा भैरवसिंह की अयोग्यता के कारण राज्य के कर्मचारियों ने गबन द्वारा राज्य की हालत और बिगाड़ दी थी। ऐसे समय में विशेष योग्यता का प्रदर्शन करते हुए बारीकी से सारे हिसाब किताब की जाँच–पड़ताल प्रारम्भ की। जाँच में पाया गया कि राज्य के तत्कालीन कामदार बख्तावरसिंह नामली और उसके साथी ने गबन किया था। शाहमत अली ने अपराध सिद्ध होने पर उन दोनों पर ढाई लाख रुपये का जुर्माना किया तथा साथ ही राजा रणजीतसिंह के बालिग होने तक उन दोनों का रतलाम राज्य की सीमा में प्रवेश वर्जित कर दिया।[91]

उस समय राज्य पर 10 लाख रुपये का कर्ज था साथ ही सारे अधिक आय वाले गाँव भी गिरवी रखे हुए थे। अपने 17 वर्ष के प्रशासकीय कार्यकाल में शाहमत अली ने रतलाम राज्य का नक्षा ही बदल दिया। उसने रतलाम में नयी सड़कें बनवाई, नये मोहल्ले बसाए। रणजीत विलास पैलेस, रामबाग कोठी, गुलाब चक्कर, जिलाधीश कार्यालय[92] रानी राजकुंवर चिकित्सालय का निर्माण तथा नगर में बगीचे लगाने आदि का कार्य भी उसी के समय में हुआ ।[93]

सन् 1865 ई. में सेण्ट्रल जेल का निर्माण कराया गया। 1868 ई. में फौजदारी एवं दीवानी मामलों की सुनवाई के लिये विधिवत न्यायालयों की स्थापना की। न्यायालयीन प्रक्रिया के संचालन हेतु मुसरिम का पद कायम किया गया।

शिक्षा की उन्नत्ति के लिये भी शाहमत अली ने प्रयास किये। सन्

1884 ई. में पहला पब्लिक स्कूल रतलाम में खोला गया। उसी दौरान सर हेनरी डेली नामक शिक्षा शास्त्री ने सेण्ट्रल कॉलेज की स्थापना भी रतलाम में की थी।

उधर राजा रणजीतसिंह ने वयस्कता प्राप्त करने तक डेली कॉलेज इन्दौर में शिक्षा प्राप्त की। 1877 ई. में वह देहली दरबार में सम्मिलित हुआ। 1880 ई. में उसे राज्य के सारे अधिकार सौंप दिये गये। 1877 ई. में ही राजा रणजीतसिंह की सलामी की तोपें बढ़ाकर 11 से 13 कर दी गयी। 1885 ई. में अफीम के और अन्य मादक वस्तुओं पर लगने वाला राज्य कर उठा लिया गया। 1887 ई. में गवर्मेण्ट से नियत रकम लेने का प्रबन्ध कर राज्य की तरफ की चुंगी उठा दी गयी।[94] 1877 ई. में राजा रणजीतसिंह को के.सी.आई.ई. की उपाधि प्राप्त हुई।[95] राजा रणजीतसिंह का शासनकाल रतलाम राज्य के लिये स्वर्णिम काल था। 20 जनवरी, 1893 ई. को राजा रणजीतसिंह का निधन हो गया।[96]

रणजीतसिंह का उत्तराधिकारी सज्जनसिंह हुआ। सज्जनसिंह का जन्म जनवरी, 1880 ई. में हुआ। सिंहासनारोहण के समय उसकी उम्र 13 वर्ष की थी। अतः राज्य का सारा कार्य पोलिटिकल एजेन्ट की देख रेख में खान बहादुर दीवान खुरशेद रुस्तम चलाता था। सज्जनसिंह की शिक्षा डेली कॉलेज इन्दौर में हुई। बालिग होने पर 15 दिसम्बर, 1898 ई. को राज्य का सारा कार्य ब्रिटिश गवर्मेण्ट द्वारा उसे सौंप दिया गया।[97]

महाराजा सज्जनसिंह का शासनकाल भी रतलाम राज्य के लिये स्वर्णयुग ही था। वह स्वयं बहुमुखी प्रतिभा का धनी था। वह अंग्रेज सरकार के प्रति पूर्णनिष्ठा और स्वामिभक्त था।

महाराजा सज्जनसिंह ने 1901 ई. में सामरिक शिक्षा प्राप्त की थी। उसके पश्चात् वह इम्पीरियल केडेट कोर में भर्ती हुआ और उसकी तरफ से वह दिल्ली दरबार में भी सम्मिलित हुआ। 1903 ई. में वह इम्पीरियल केडेट कोर की शिक्षा प्राप्त कर रतलाम आ गया इसी अवसर

पर उसे दिल्ली दरबार की ओर से स्वर्णपदक प्राप्त हुआ था ।[98]

वह ब्रिटिश सरकार में सेना के विभिन्न पदों पर भी रहा । 1908 ई. में वह अंग्रेजी सेना में केप्टन, 1911 ई. में मेजर, 1916 ई. में लेफ्टिनेट कर्नल और 1918 ई. में वह कर्नल के पद पर नियुक्त किया गया । इन पदों पर उसकी नियुक्ति आनरेरी (Honorary) रूप में की गयी थी ।[99] राजा सज्जनसिंह पोलो का भी अच्छा खिलाड़ी था। वह भारतीय पोलो ऐसोसिएशन का प्रबन्धकर्ता रहा। 1911 ई. में उसने कोरोनेशन पोलो टूर्नामेण्ट में विजय प्राप्त की थी। इस अवसर पर जार्ज पंचम द्वारा उसे स्वर्ण प्याला प्रदान कर सम्मानित किया गया था ।[100] 1918 ई. में राजा सज्जनसिंह की सलामी की तोपें 11 से बढ़ाकर स्थाई रूप से 13 कर दी गयीं। ब्रिटिश सेना में रहते हुए उसने कई युद्धों में भाग लिया था। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर 1920 ई. में ब्रिटिश सरकार ने उसे राज्य के पूर्ण अधिकार देते हुए उसे पीढ़ी दर पीढ़ी के लिये 'महाराज' का खिताब दिया, साथ ही उसकी सलामी की तोपें भी बढ़ाकर स्थायी रूप से 15 कर दी गयीं।[101]

1921 ई. में युवराज प्रिन्स ऑफ वेल्स भारत आया था तब उसने राजा सज्जनसिंह को अस्थायी ए.डी.सी. नियत किया था। भारत से वापस जाते समय उसने अपने हाथों से के.सी.बी.ओ. का पदक पहनाकर अपना स्थाई ए.डी.सी. बनाया था।[102]

राजा सज्जनसिंह अपनी प्रजा का भी पूरा ध्यान रखता था। उसने रतलाम में औद्योगिक विकास भी किये तथा साथ ही सामाजिक विकास भी किये।[103] उसने तीन विवाह किये थे। उसके तीसरे विवाह से दो पुत्रियाँ एवं एक पुत्र लोकेन्द्रसिंह हुआ।

20 जनवरी, 1947 ई. को राजा सज्जनसिंह का निधन हो गया। उसकी मृत्युपरान्त युवराज लोकेन्द्रसिंह रतलाम का शासक बना। उसका सिंहासनारोहण 20 फरवरी, 1947 ई. को हुआ।[104] लोकेन्द्रसिंह 'राष्ट्रहित

सर्वोपरि' सिद्धान्त पर चलने वाला था । अतः उसने 15 मई, 1948 ई. को सहर्ष अपने राज्य का विलीनीकरण भारतीय गणराज्य में कर दिया । राजा लोकेन्द्रसिंह भी बहुमुखी प्रतिभा का धनी था । वह कुशल पायलट, फुटबाल तथा शतरंज का खिलाड़ी होने के साथ ही अचूक निशानेबाज था।[105]

राजा लोकेन्द्रसिंह का विवाह 1947 ई. में नेपाल की राजकुमारी राजप्रभा लक्ष्मी से हुआ। राजा लोकेन्द्रसिंह सन्तान विहीन था। राजा लोकेन्द्रसिंह का निधन 24 जून, 1991 ई. को कैंसर से इन्दौर में हुआ।[106]

1947 ई. में भारत को आजादी मिल गयी। राजा लोकेन्द्रसिंह ने लगभग 1 वर्ष राज्य किया। उसके बाद वे आजाद भारत में भी अपनी सहृदयता के कारण वही सम्मान पाते रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अकबरनामा, भाग 2, पृ. 517–18 ।
2. रतलाम का प्रथम राज्य, डा. रघुबीरसिंह, पृ. 6 ।
3. रतलाम., पृ. 7 ।
4. उस समय उसे निर्वाह हेतु पीसांगन का प्रदेश प्राप्त हुआ था । रतलाम., पृ. 15 ।
5. रतलाम., पृ.
6. रतलाम., पृ. 32, 33 ।
7. रतलाम., पृ. 55 ।
8. रतलाम., पृ. 64; पादशाहनामा, 2, पृ. 635 ।

9. रतनरासो, पृ. 7; रतलाम., पृ. 43 ।
10. रतलाम., पृ. 48 ।
11. रतलाम., पृ. 4९ ।
12. रतनरासो, पृ. 13–15; रतलाम., पृ. 51 ।
13. रतलाम., पृ. 52 ।
14. रतलाम., पृ. 55 ।
15. रतलाम., पृ. 72, 77 ।
16. रतलाम., पृ. 79, 92 ।
17. उदयपुर राज्य का इतिहास, ओझा., कृत, भाग 2, पृ. 533, 534; रतलाम., पृ. 92, 93।
18. रतलाम., पृ. 95 ।
19. रतलाम परगने की आय उस समय बावन लाख दाम की थी ।
20. रतलाम., पृ. 95, 96 ।
21. आईन–ए–अकबरी, भाग 2, पृ. 219 ।
22. कहा जाता है कि सन् 1635 ई. के लगभग पृथ्वीराज ने रतलाम शहर का वर्तमान सूरजपोल दरवाजा बनवाया था ।
23. रतलाम., पृ. 97–98 ।
24. रतलाम., पृ. 102 ।
25. रतलाम., पृ. 102–106 ।
26. रतलाम., पृ. 107–127; जसवन्तसिंह इस युद्ध के अन्त में युद्ध क्षेत्र से जा चुका था। अतः इस युद्ध की बागडोर अन्त में रतनसिंह के ही हाथों में थी । रतलाम., पृ. 126 ।
27. रतलाम., पृ. 134 ।
28. उपरोक्त वही ।
29. रतलाम., पृ. 137 ।
30. रतलाम., पृ. 193 ।
31. रतलाम., पृ. 195–96 ।

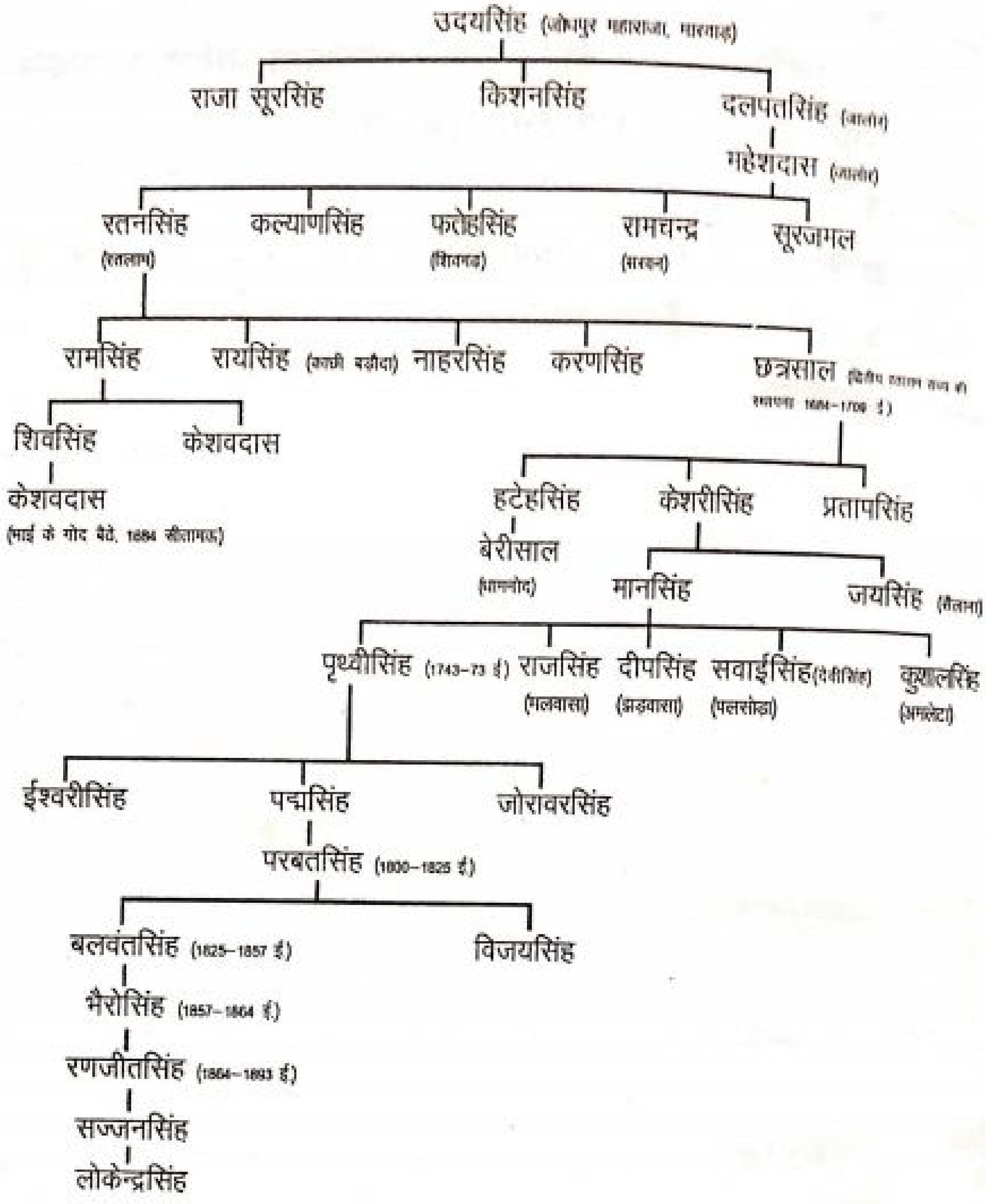
32. रतलाम., पृ. 201–208 ।
33. रतलाम., पृ. 208 ।
34. रतलाम., पृ. 239 ।
35. रतलाम., पृ. 238–257; रामसिंह युद्ध में भाग नहीं ले सका था परन्तु युद्ध के लिये तत्पर जिरह–बख्तर पहने हुए ही वह मृत्यु को प्राप्त हुआ था ।
36. रतलाम., पृ. 261।
37. रामसिंह के विवाह की स्पष्ट संख्या ज्ञात नहीं है । कहीं 6 कहीं 8 तो कहीं 10 रानियों का उल्लेख मिलता है ।
38. रामसिंह की मृत्यु के समय सिर्फ दो रानियाँ ही जीवित थी ।
39. रतलाम., पृ. 293 ।
40. रतलाम., पृ. 295–96 ।
41. रतलाम., पृ. 299 शिवसिंह की प्रार्थना पर औरंगजेब की प्रतिक्रिया का उल्लेख किसी ग्रंथ में नहीं मिलता है ।
42. रतलाम., पृ. 315 ।
43. रतलाम., पृ. 318 ।
44. रतलाम., पृ. 319, 320 ।
45. रतलाम., पृ. 322 ।
46. आगे जाकर इसी केशवदास ने सीतामऊ राज्य की स्थापना की।
47. रतलाम., पृ. 325 ।
48. रतलाम., पृ. 274–275 ।
49. इसे पहले लदूना गाँव तथा बाद में तीतरोद और नाहरगढ़ के परगने प्राप्त हुए थे । रतलाम., पृ. 154
50. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 9 ब ।
51. उपरोक्त । हठीसिंह की मृत्युपरान्त उसका पुत्र बैरीसाल शाही मनसबदार बनाया गया था।
52. छत्रसाल का पौत्र ।

53. गुरां. ग्रन्थ, 14 पत्र 10 अ; रतलाम स्टेट गजेटियर, 1908, पृ. 8।
54. गजेटियर., पृ. 8 ।
55. गुरां ग्रंथ 14, पत्र 11 अ ।
56. गजेटियर., पृ. 8 ।
57. गजेटियर., पृ. 8; गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 11 अ पर लिखा है कि वि. सं. 1777 फाल्गुन वदि 1 को प्रतापसिंह इस युद्ध में लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ ।
58. गजेटियर., पृ. 8–9; गुरा. ग्रंथ 14, पत्र 11 ब ।
59. गजेटियर., पृ. 8–9 ।
60. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 12 अ ।
61. 9 अक्टूबर, 1743 ई. ।
62. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 12 ब; गजेटियर., पृ. 9 ।
63. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 12 ब; गजेटियर., पृ. 9; भारत के प्राचीन राजवंश, रेऊ कृत, पृ. 398।
64. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 12 ब ।
65. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 13 अ ।
66. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 13 ब ।
67. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 14 अ; भारत के प्राचीन., पृ. 398–99; गजेटियर. पृ. 9 ।
68. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 13 ब ।
69. भारत के प्राचीन., पृ. 399; गजेटियर., पृ. 9 ।
70. भारत के प्राचीन., पृ. 399; गजेटियर., पृ. 9 ।
71. उपरोक्त ।
72. भारत के प्रचीन., पृ. 399–400 ।
73. फरवरी 3, 1815 ई. ।
74. गुरा. ग्रंथ 14, पत्र 14 ब ।
75. भारत के प्राचीन., पृ. 400; गजेटियर., पृ. 9–10 ।

76. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 15 अ ।
77. भारत के प्राचीन., पृ. 400–401; गजेटियर., पृ. 10 ।
78. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 15 ब ।
79. भारत के प्राचीन., पृ. 401 ।
80. गजेटियर., पृ. 10; भारत के प्राचीन., पृ. 401 ।
81. भारत के प्राचीन., पृ. 401 ।
82. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 17 ब । भाद्रपद सुदि 5 को सोमवार है न कि बुधवार ।
83. उपरोक्त ।
84. उपरोक्त ।
85. गजेटियर., पृ. 10 ।
86. भारत के प्राचीन., पृ. 401 ।
87. भारत के प्राचीन., पृ. 401–402 ।
88. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 18 अ ।
89. 16 मार्च, 1861 ई. ।
90. गुरां. ग्रंथ 14, पत्र 18 अ ।
91. भारत के प्राचीन., पृ. 402; गजेटियर., पृ. 10 ।
92. वर्तमान में जिलाधीश कार्यालय के रूप में उसी भवन का उपयोग किया जा रहा है ।
93. भारत के प्राचीन., पृ. 403 ।
94. भारत के प्राचीन., पृ. 403 ।
95. उपरोक्त, गजेटियर., पृ. 10 ।
96. गजेटियर., पृ. 10; भारत के प्राचीन., पृ. 404 ।
97. भारत के प्राचीन., पृ. 404; गजेटियर., पृ. 11 ।
98. भारत के प्राचीन., 405–05; गजेटियर., पृ. 11 ।
99. भारत के प्राचीन., पृ. 405–06; गजेटियर., पृ. 11 ।
100. भारत के प्राचीन., पृ. 405 ।

101. उपरोक्त, पृ. 406–07 ।
102. भारत के प्राचीन., पृ. 407 ।
103. सज्जनमिल, सज्जन क्षत्रिय समाज छात्रावास, ब्राह्मण छात्रावास आदि का निर्माण उसी समय हुआ था ।
104. गजेटियर., पृ. 11 ।
105. क्षत्रिय वैभव मासिक पत्रिका का 14 जून, 2009 ई. का अंक, पृ. 55 ।
106. उपरोक्त ।

रतलाम राज्य का वंश वृक्ष



2. सीतामऊ राज्य का संक्षिप्त इतिहास

सीतामऊ 23° 48' और 24° 14' उत्तरी अक्षांश और 75° 17' और 75° 36' पूर्वी देशान्तर के मध्य मालवा के दक्षिणी पश्चिमी पठार पर स्थित है ।[1] इसकी समुद्र सतह से ऊँचाई 1700 फीट है । सीतामऊ राज्य का क्षेत्रफल 350 वर्गमील था। इसकी सीमाएँ उत्तर में भूतपूर्व इन्दौर और ग्वालियर राज्यों से, पूर्व में झालावाड़ राज्य और पश्चिम में ग्वालियर राज्य तथा दक्षिण–पश्चिम में देवास राज्य से लगी हुई थी ।[2]

सीतामऊ राज्य की स्थापना के समय इसका क्षेत्रफल रतलाम राज्य के क्षेत्रफल के लगभग ही था। इस राज्य (सीतामऊ) में नाहरगढ़[3] और तीतरोद[4] के परगने भी सम्मिलित थे। कुछ समय पश्चात् मुगल बादशाह फर्रुखसियर ने केशवदास को आलोट[5] का परगना भी जागीर में दे दिया था । किन्तु केशवदास के बाद उसके उत्तराधिकारी शासक गजसिंह के शासनकाल में आलोट का परगना और राजा फतेहसिंह के शासनकाल में नाहरगढ़ के परगने पर क्रमशः देवास के पंवारों और सिंधिया द्वारा अधिकार कर लिये जाने से अपेक्षाकृत इसकी सीमाएँ संकुचित हो गई।[6] सीतामऊ राज्य की यदि पूर्व की सीमा को देखें तो यह राज्य पाँच अन्य राज्यों की सीमाओं को छूता था। इस राज्य के उत्तर में जावरा राज्य का वह भाग ज़ो अब मल्हारगढ़[7] तहसील कहलाता है, उत्तर–पूर्व में होलकर राज्य का गरोठ[8] जिला जो अब गरोठ तहसील कहलाता है। इसके दक्षिण में जावरा और देवास सीनियर राज्य थे। पूर्व में राजपूताना का झालावाड़ राज्य जबकि पश्चिम में ग्वालियर राज्य का मन्दसौर था ।

वर्तमान में इसके उत्तर में गरोठ तथा मल्हारगढ़ तहसीलें हैं । दक्षिण में रतलाम जिला है। पूर्व में सुवासरा तहसील तथा झालावाड़ जिला (राजस्थान) है। तथा पश्चिम में मन्दसौर तहसील है ।

15वीं सदी के उत्तरार्द्ध में साता नामक मीणा सरदार ने पहाड़ी



पर एक बस्ती को आबाद किया जो मीणा सरदार साता के नाम से ही सीतामऊ नाम से प्रसिद्ध हुई । यहाँ लगभग एक सदी तक मीणों का ही आधिपत्य रहा ।[9]

कुछ समय पश्चात् ईडर राज्य के लौतरा से गजमालोत राठौड़ों का एक दल जुझारसिंह के नेतृत्व में मालवा की ओर आया और सीतामऊ के निकट खेड़ा में बस गया । जुझारसिंह के पश्चात धाऊजी, उदयकरण और नगजी इस दल के सरदार हुए। नगजी ने सन् 1549 ई. में सीतामऊ के मीणा सरदार लाला, तोरा और खाना को मारकर सीतामऊ ग्राम पर अधिकार कर लिया।[10]

मुगल बादशाह अकबर के शासनकाल में प्रशासनिक सुधारों के तहत सूबों का निमार्ण किया गया। तब मालवा सूबे के तहत सीतामऊ को मन्दसौर सरकार के तीतरोद महाल के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया।[11]

'मोटा राजा' उदयसिंह (जोधपुर) के चौथे पुत्र दलपत का बेटा महेशदास मुगल बादशाह शाहजहाँ का मनसबदार था ।[12] शाहजहाँ द्वारा महेशदास को सन् 1642 ई. में जालौर का परगना जागीर के रूप में दिया गया था ।[13] महेशदास का उत्तराधिकारी रतनसिंह हुआ ।[14] जालौर परगने की आय कम होने के कारण शाहजहाँ ने रतनसिंह को सन् 1656 ई. में जालौर के स्थान पर रतलाम का परगना जागीर के रूप में दिया।[15] रतनसिंह का उत्तराधिकारी रामसिंह तथा रामसिंह का उत्तराधिकारी शिवसिंह हुआ । शिवसिंह के निःसंतान मरने के कारण रतलाम का शासक उसका सौतेला भाई केशवदास बना ।[16]

औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति के फलस्वरूप की गयी ज्यादतियों के कारण सन् 1694 ई. में केशवदास के अधिकारियों द्वारा मुगल अधिकारी अमीन–इ–जजिया नासिरुद्दीन मारा गया। फलस्वरूप औरंगजेब द्वारा रतलाम का परगना जब्त कर लिया गया। तदनन्तर अगस्त 18, 1694 ई. को केशवदास के परिजनों ने रतलाम को त्याग दिया। 1695 ई. का वर्ष

किसी प्रकार कठिनाइयों में यत्र–तत्र बिताया और अन्त में उन्होंने सीतामऊ में रहने का निश्चय कर 14 जनवरी, 1696 ई. को सीतामऊ में मुकाम किया।[17]

केशवदास उस समय दक्षिण में था । वह उसी तरह स्वामिभक्ति से शाही सेवा करता रहा।[18] सन् 1696 ई. में पुनः केशवदास का भाग्य पलटा, तथा उसका मनसब पुनः बढ़ा कर पाँच सदी जात दो सौ सवारों का कर दिया।[19] उस समय उसे मनसब के अनुरूप धार[20] परगने में कुछ गाँव तथा नाहरगढ़ का परगना जागीर में मिला था। नाहरगढ़ प्राप्त होने पर भी केशवदास ने अपने परिवार को सीतामऊ में ही रखा ।[21] सितम्बर 3, 1696 ई. को मानसिंह राठौड़[22] की सिफारिश पर केशवदास के मनसब में दो सौ सवार और बढ़ा दिये, परन्तु इसके साथ दिये गये गाँवों का निर्णय नहीं हो पाया था । क्योंकि उस समय शाही कार्यों में शिथिलता आ गयी थी।[23] जनवरी, 1699 ई. में जाकर उसे सीतामऊ के आसपास के गाँव जागीर में प्राप्त हुए ।[24]

1699 ई. में ही उसके मनसब में 1 सदी जात और 1 सौ सवारों की वृद्धि भी की गयी।[25] महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंह ने लिखा है कि – "पिछले पचास वर्षों में सीतामऊ का सापेक्षिक महत्त्व बढ़ गया था ।" किन्तु अब भी इस परगने का केन्द्र तीतरोद परगने के नाम से ही जाना जाता था। तब केशवदास तीतरोद परगने की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील हुआ। 31 अक्टूबर, 1701 ई. को वह अपने प्रयासों में सफल रहा और औरंगजेब द्वारा उसे तीतरोद परगने की सनद दी गयी। केशवदास ने अपनी जागीर का केन्द्र तीतरोद के स्थान पर सीतामऊ को बनाया, और इस प्रकार मालवा में सीतामऊ नामक नवीन राठौड़ राज्य की स्थापना हुई।[26]

केशवदास की मृत्यु शाही सेवा में रहते हुए ही दिल्ली में हो गयी।[27] केशवदास का ज्येष्ठ पुत्र बखतसिंह अपने पिता के जीवनकाल में ही निःसंतान मर गया था। तब केशवदास का छोटा पुत्र गजसिंह सीतामऊ का शासक बना।[28] गजसिंह ने लगभग 18 वर्ष तक शासन

किया। 1752 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी तब उसका पुत्र फतेहसिंह सीतामऊ का शासक बना।[29] फतेहसिंह के शासनकाल में सीतामऊ राज्य पर मराठों का आतंक बढ़ गया था । तब फतेहसिंह ने सीतामऊ से 3 कि. मी. दक्षिण में स्थित लदूना को अपनी आपातकालीन राजधानी बनाया ।[30] फतेहसिंह ने 1787 ई. में अपने नाम का सिक्का ढलवाया। यह सिक्का सीतामऊ में लगभग 100 वर्ष तक प्रचलित रहा ।[31] फतेहसिंह का निधन लदूना गढ़ में ही 1802 ई. को हुआ ।[32] फतेहसिंह की मृत्युपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र राजसिंह सीतामऊ का शासक बना।[33] राजसिंह के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में मराठों का आतंक और अधिक बढ़ गया था।[34] तब नवम्बर 1820 ई. में सर जान मालकम की मध्यस्थता से ब्रिटिश प्रतिभूति के अन्तर्गत 60000/– रुपये वार्षिक कर सिंधिया को देना तय किया गया। तदनन्तर सीतामऊ राज्य पर राजसिंह के आधिपत्य की अंतिम रूप से पुष्टि की गई।[35] तब सीतामऊ में पुनः शांति स्थापित हो गयी और राजसिंह अपनी राजधानी लदूना से पुनः सीतामऊ ले आया।[36] सन् 1867 ई. में राजा राजसिंह का निधन हो गया।[37] राजसिंह के दो पुत्र थे रतनसिंह एवं अभयसिंह। अभयसिंह 20 वर्ष की उम्र में ही मर गया था। महाराजकुमार रतनसिंह का जन्म 11 अप्रेल, 1808 ई. को हुआ था।[38] वह बहुमुखी प्रतिभा वाला राजकुमार था। विद्या अध्ययन के साथ ही वह आखेट प्रिय भी था। उसे उर्दू, हिन्दी, ब्रज, संस्कृत और डिंगल आदि भाषाओं का ज्ञान था।[39] अपने पिता राजा राजसिंह एवं गुरु स्वरूपदास से प्रेरणा प्राप्त कर वह "नटनागर" उपनाम से अनेक भाषाओं में कविता करने लगा था।[40] उसने 'नटनागर विनोद'[41] तथा "दीवाने उश्शाक"[42] नामक ग्रंथ की रचना की। उसने कई काव्य ग्रंथों को संग्रहीत भी किया था।[43] वह संगीत एवं वाद्य कला का भी शौकीन था । उसे घुड़सवारी का भी शौक था। घोड़ों के लक्षणों व गुणों पर उसने 'अश्व विचार' की रचना की थी।[44]

राजा राजसिंह के शासन काल में सीतामऊ राज्य में कई उतार–चढ़ाव आये। परन्तु शान्ति स्थापित होने के पश्चात् उसने सीतामऊ एवं

लदूनागढ़ में अनेक निर्माण कार्य करवाए।[45] उसके साथ ही उसके परिजनों एवं सीतामऊ की प्रजा ने भी अनेक निर्माण कार्य करवाए।[46] राजा राजसिंह के शासन काल में ही देश में 1857 की क्रांति का उद्भव हुआ। सम्पूर्ण देश के साथ ही मालवा भी इससे अछूता नहीं रहा। सम्पूर्ण मालवा में फैले इस विद्रोह की अग्नि से सीतामऊ राज्य भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। प्रसिद्ध इतिहासकार डा. रघुबीरसिंह का मत था कि सीतामऊ राज्य किसी भी मुख्य राजमार्ग अथवा प्रान्तीय मार्ग पर नहीं पड़ता था, तथा यहाँ की प्रजा भी अपने वयोवृद्ध जनप्रिय शासक राजा राजसिंह (1802–1867) और उनके सुयोग्य प्रौढ़ कवि उत्तराधिकारी महाराजकुमार रतनसिंह 'नटनागर'[47] से पूर्णतया सन्तुष्ट थी, अतः यहाँ पूर्ण शान्ति बनी रही ।[48] इससे स्पष्ट है कि सीतामऊ राज्य की आन्तरिक स्थिति पर इस विद्रोह का कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ा । तथापि (शुक्रवार, जून 12, 1857 ई.) को महिदपुर[49] के सवार रिसाले वाले सीतामऊ में आये और उन्होंने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया। राजा राजसिंह इस समय इन विद्रोही सैनिकों का बलपूर्वक प्रतिकार करने की स्थिति में नहीं था । अतः अपनी प्रजा को बचाने के लिए उसने इन विद्रोही सिपाहियों को सीतामऊ राज्य की सीमा से शान्तिपूर्वक चले जाने के लिए 28000/– रुपये दिये ।[50] इस प्रकार राजा राजसिंह ने अपने राज्य को लूटमार से तो अवश्य बचा लिया, किन्तु इस घटना की जानकारी किन्हीं साधनों से अंग्रेज अधिकारियों को मिल गई, जिसकी संभावित नाराजगी और शंका वजीरबेग के पत्र में मिलती है –'साहेब ममदू बड़े झुंजलाये और खफा होकर दांत पीसकर बोले के उन बदमासों का मुकाबला क्यों नहीं करा। नवाब साहेब के जरा से गाम में वो बदमास लोग गये थे, एक थाने के सिपाहियों ने दो आदमी सवार मार लिये। तुम लोग सब तरे देते हो।'[51]

राजा राजसिंह की इस नीति के कारण सीतामऊ राज्य विद्रोहियों की लूटमार से तो बच गया किन्तु मन्दसौर और नीमच की घटनाओं और

अंग्रेज अधिकारियों की यात्राओं के कारण यहाँ का वातावरण उत्तेजित बना रहा । तथा नगर व क्षेत्र की आबादी में मुसलमानों का प्रधान्य था। वहाँ के राजकीय सुरक्षा दल के पठान, अरब, अफगान, रूहेला, विलायती और मकरानी सिपाहियों का भी जिहाद के नाम पर उत्तेजित होकर उनका विद्रोही बनना अवश्यम्भावी था । सीतामऊ राज्य इस समय सैनिक और आर्थिक दृष्टि से पूर्णरूप से सक्षम नहीं था। ऐसी स्थिति में विद्रोही सैनिकों और अंग्रेज सरकार के परस्पर विरोधी धाराओं के मध्य फंसकर राजा राजसिंह दुविधाजनक स्थिति में पड़ गया। एक तरफ विद्रोही सैनिक मदद के लिए राजसिंह पर दबाव डाल रहे थे, तो दूसरी ओर विद्रोहियों को दबाने, उनको राज्य की सीमा से खदेड़ने के लिए अंग्रेज अधिकारियों के निर्देश निरन्तर पहुँच रहे थे ।'[52] इसी तरह एक दूसरे पत्र में वजीरबेग लिखता है – 'अब बड़ी मुसकील है । दो नाहर में अपन अेक बकरी हैं। मन्दसौर की ताबेदारी करे तो अंगरेजों से मारे जाते हैं और अंगरेजों की फरमेबदारी नहीं करते है तो ज्यांने क्या गजब करेंगे।'[53]

विशेषतया सीतामऊ राज्य की स्थिति तब और विकट हो गई जब मक्का से हज कर मुगल शाहजादा फिरोजशाह जुलाई, 1857 ई. के अन्त तक मालवा में आ पहुँचा था। शाहजादा फिरोज शाहआलम द्वितीय (1759–1806 ई.) के पौत्र, निजामबख्त और आलमगीर द्वितीय (1754–1759 ई.) की प्रपौत्री, आबादी बेगम का पुत्र था । जब वह मालवा में आया था तब वह साधनहीन था, परन्तु वह मुसलमानों की दृष्टि में विशेष आदरास्पद हो गया था। वह सर्वप्रथम खाचरौद पहुँचा और जब उसने वहाँ जिहाद की घोषणा की तब वहाँ के कमाविसदार वाकर हुसैन ने मार भगाया तब उसने वहाँ से कोई 8 कि.मी. दूर स्थित फरनाजी मन्दिर के पास शरण ली। यहाँ उसके साथ आस–पास के सैकड़ों मुसलमान एकत्र हो गये, और उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती ही गई ।[54] तब इस दल बल के साथ वह मन्दसौर जा पहुँचा। इसके आगमन के साथ ही मन्दसौर में सर्वव्यापी विद्रोह हो गया, तथा वहाँ की राजकीय सेवा (सिंधिया के

अन्तर्गत) में रत मकरानी, विलायती, अरब आदि सब ही सिपाही शाहजादा के साथ जा मिले ।[55] तब उत्साही कट्टर मुसलमानों ने मंगलवार, भाद्रपद बदि 6, 1914 वि. (अगस्त 11, 1857 ई.) को हुमायूँशाह के नाम से शाहजादा फिरोज को गद्दी पर बैठा दिया ।[56] अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उसने आस–पास के राज्यों यथा प्रतापगढ़, सैलाना, रतलाम, जावरा व सीतामऊ आदि के शासकों को फरमान भेजकर उसकी सत्ता को मान्य कर शस्त्रादि व धन से उसकी सहायता करने का आग्रह किया।[57] जब यह खबर चारों तरफ फैली तब उसकी घोषणाओं से प्रभावित होकर हजारों मेवाती, विलायती, मकरानी हर तरफ से नौकरी छोड़कर आने लगे और शाहजादा की सेना में सम्मिलित हो गये और यों सितम्बर, 1857 ई. में उसकी सेना में कुल मिलाकर लगभग 18000 सैनिक हो गये थे ।[58]

इस प्रकार शाहजादा फिरोज के गद्दी पर बैठते ही उसने अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध खुला विद्रोह कर दिया। उस समय सीतामऊ राज्य के भी कई एक मुसलमान मन्दसौर में इन विद्रोहियों से जा मिले थे । जिसका विवरण वजीरबेग के पत्रों में कुछ इस तरह लिखा है – 'बाजे–बाजे मुसलमान साकीन खास सीतामऊ से बदलकर मन्दसौर में फसादी लोगों में जा मिले थे, सो केतेई मरे होंगे केतेई जीते भागे होंगे।'[59]

ऐसी विकट स्थिति में राजसिंह की दुविधा और भी बढ़ गई । तब मिर्जा वजीरबेग ने भी राजसिंह को सलाह दी कि इस समय सोच समझकर कदम उठाना चाहिए। जैसाकि पत्र में लिखा है – 'जमाना खराब है। और फेर हजरते मंनदसौर हैं, सो जो कांम करो सो समजकर करोगे ओर कीसी का भरोसा अेतबार न रखोगे। रतलाम, जावरा, सैलाना, मन्दसौर की ताबेदारी करे तो आप बी करना और सारों से अवल आपको घबरावें तो जवाब साफ लिखना के रतलाम, सैलाना, जावरा हाजर होगा तो हम बी हाजर हें । ओरों के भले आदमी आवें तो अपने ईयांहां से बी कीसी को भेज दो ।'[60]

ऐसे अवसर पर राजा राजसिंह स्थिति पर नजर जमाये राजनैतिक

उलट–फेरों का गहन अध्ययन कर रहा था। शाहजादा फिरोज द्वारा आस–पास के राज्यों को हाजिर होकर आज्ञा मानने का आदेश तो पहले ही दे दिया गया था। जब यह समाचार अंग्रेजों को ज्ञात हुआ तो उनके कान खड़े हो गये। महिदपुर से भागा मेजर टिमिन्स अपनी टोली के साथ जावरा, सीतामऊ में शरण ढूंढता घूम रहा था। शनिवार, जुलाई 11, 1857 ई. को मेजर टिमिन्स सीतामऊ पहुँचा।[61] तब राजा राजसिंह ने मेजर टिमिन्स को सीतामऊ राज्य की संकटकालीन पुरानी राजधानी लदूना में ससम्मान ठहराया तथा पूर्ण सुरक्षा के साथ भगोर के ठा. रतनसिंह को 15 सवार देकर टिमिन्स को नीमच पहुँचाया।[62] किन्तु वहाँ पर स्थिति अनुकुल न देखकर वापस सीतामऊ लाकर अपने सवार व हाथी देकर पुनः महिदपुर भिजवा दिया।[63]

गुप्तचरों का जाल व जगह–जगह अपने वफादार व्यक्ति शाहजादे ने नियुक्त कर रखे थे। तभी तो उसे मेजर टिमिन्स की गतिविधियों की जानकारी तत्काल उपलब्ध हो गयी। तब शाहजादे ने अपने विद्रोही सैनिकों से कहा कि – 'जो परवाने आस–पास के रईसों को भेजे गये हैं, उनका उद्देश्य दहशत फैलाना नहीं है, हमारे शत्रु तो अंग्रेज हैं जिन्हें यहाँ से भगाना है। इसके लिए रसद और रकम की जरूरत होगी, आस–पास के रईस (राजा लोग) अगर वतन परस्त होंगे तो हमारी मदद करेंगे। जावरा से तो विद्रोह कर अब्दुलसत्तार रसद के साथ पहले ही आ चुका है। अतः शेष भी हमारी मदद करें।' इस उद्देश्य पूर्ति के लिए शाहजादा ने केदारराव और रहीमबख्श के नेतृत्व में दो हजार सैनिकों की एक फौज चार तोपों के साथ सीतामऊ से पैसे वसूल करने को भेजा। राजसिंह को परवाना पहले ही भेजा जा चुका था जिसमें कहा गया था कि सवा लाख रुपया, दस घोड़े, एक हाथी और सेना की मदद भेजो और लगान की हर किश्त दाखिल करो। वरना फौज आकर तुम्हारी बरबादी करेगी।'[64]

केदारराव और रहीमबख्श के नेतृत्व में इस सेना ने मौजा बिलांत्री, सीतामऊ से दो कोस के फासले पर आकर डेरा डाल दिया।

सीमा पर आयी विद्रोही सेना नें सीतामऊ में हलचल मचा दी। विकट परिस्थितियाँ देख राजसिंह ने जावरा नवाब को पत्र लिखा कि – 'मन्दसौर की फौज युद्ध के लिए सीतामऊ से दो कोस की दूरी पर मौजा बिलांत्री में रुकी है व विद्रोह करना चाहते हैं । उन्हीं दिनों में सीतामऊ महाराजकुमार रतनसिंह 'नटनागर' जावरा में मौजूद थे, उन्होंने ऐसे अवसर पर हिदायत दी कि ऐसे नाजुक वक्त में सभी को एक हो जाना चाहिए व विद्रोहियों के फसाद का सामना करना चाहिए । मदद के तौर पर जावरा नवाब से कहा कि एक पेटी बारूद जरूर भेज दें व हमेशा हमारी तरफ ध्यान रखें।[65]

जावरा नवाब ने इस पत्र के मिलते ही बेरीसाल को अपनी सिपाही पलटनों को बारूद, तोप देकर सीतामऊ तुरन्त भेज दिया और पत्र के जवाब में लिखा कि – 'हम दिल व जान से आपके साथ हैं, आप किसी तरह की फिक्र न करें अगर विद्रोहियों का ज्यादा डर हो तो आप जावरा या नीमच चले जायें ।'[66]

इसी पत्र के दूसरे दिन एक अर्जी सीतामऊ राज्य के कामदार हुलासराय की भी जावरा नवाब के पास पहुँची जिसमें लिखा था कि – 'मन्दसौर की दो–तीन हजार फौज चार तोपों के साथ सीतामऊ से एक–डेढ़ कोस के फासले पर पड़ी है। हुजूर राजा साहब बहादुर को बहुत फिक्र हुई, हमारे पास जो फौज है वह लड़ने लायक नहीं है और हमारे सारे गाँव मन्दसौर के गाँवों से मिले हुए हैं। इन कारणों से लड़ना मुनासिब नहीं समझा। इस समय पाँच रुपये देने से फिर भी व्यवस्था की सूरत नजर आये तो बेहतर है। भोपालसिंह को शाहजादा की फौज के साथ मन्दसौर भेजा है। मन्दसौर में जो बात ठहरेगी उससे हुजूर को खबर दूँगा। लेकिन सिंधिया सरकार जब टांका मांगेगी इसकी क्या व्यवस्था की जाये, जैसी हुजूर सलाह दें वैसा ही अमल करें। वर्षा की अधिकता के कारण परगना खराब हो गया है। विद्रोहियों ने तरह–तरह की तकलीफ दे रखी है।

खजाना में रुपया नहीं और कोई साहुकार ऐसा नहीं कि कर्जा दे। ये सब बातें हुजूर से छिपी हुई नहीं हैं । बाबा आप्टे[67] को कई बार लिखा कि हमारी मदद के वास्ते फौज भेजो, लेकिन उस तरफ से कुछ व्यवस्था की सूरत नजर नहीं आती । हुजूर ने जो फौज भेजी है उसे वापस बुला लें, जरुरत पड़ेगी तो फिर देखा जावेगा । गोला–बारूद रख लिया है और मन्नुखाँ गोलअन्दाज को काम सिखाने के लिए रोक लिया है । हमारे यहाँ गल्ला (अनाज) की बहुत तकलीफ है, ताल[68] पर आदेश हो जाये कि जरुरत के हिसाब से लाने दें । फुरसत मिली तो हुजूर की कदमबोसी के लिए हाजिर होउँगा।[69] जावरा नवाब ने अनाज भिजवाने का आदेश दे दिया व सीतामऊ की हर सम्भव मदद करने का यकीन दिलाया।

इधर जब भोपालसिंह फौज के साथ मन्दसौर पहुँचा तो शाहजादे फिरोज ने उसे कैद कर लिया तब भोपालसिंह ने आठ हजार हुण्डी नजराने के तौर पर दी ।[70] जबकि वजीरबेग के पत्र में कुछ इस तरह से लिखा है – 'राजे साहेब ने बदमासों को रुपया दिया सो हमे याद है ।'[71] बादशाह गिरहा के अनुसार भी 28 हजार रुपये के साथ भोपालसिंह के नेतृत्व में राजपूत योद्धाओं की एक टुकड़ी शाहजादा की सेवा में भेजी थी।[72]

राजा राजसिंह को मिर्जा वजीरबेग के पत्रों से निरन्तर अंग्रेज अधिकारियों और विद्रोही सैनिकों की गतिविधियों का पता चलता रहता था । विद्रोही सैनिकों की आर्थिक मदद कर राज्य को उनकी लूटमार से बचा लिया । बाद में अंग्रेजों का पलड़ा भारी देखते हुए उनकी मदद करने का फैसला कर राज्य को अंग्रेजों के कोप से भी बचाया।

उसके शासन काल में साहित्य के क्षेत्र में भी विकास हुआ । वह कवियों और साहित्यकारों का आश्रयदाता भी था और उन्हें जागीर देने का उल्लेख भी मिलता है ।[73] महाराजकुमार रतनसिंह का दुर्भाग्यवश घोड़े से गिर जाने के बाद अस्वस्थता के कारण 26 जनवरी, 1864 ई. को निधन हो गया ।[74] तब राजसिंह की मृत्युपरान्त रतनसिंह का पुत्र भवानीसिंह जून

19, 1867 ई. को सीतामऊ का शासक बना।[75] भवानीसिंह के शासनकाल में ब्रिटिश सरकार ने 26 जून, 1867 को सीतामऊ को एक स्वतंत्र राज्य स्वीकार करते हुए यहाँ के शासक को 'हिज हायनेस' की पदवी तथा 11 तोपों की सलामी का सम्मान प्रदान किया।[76] मई 28, 1885 ई. को भवानीसिंह का निधन हो गया। वह पुत्र विहीन मरा था। अतः उसके निकट संबंधी चीकला महाराज तखतसिंह के ज्येष्ठ पुत्र बहादुरसिंह को गोद लेकर सीतामऊ का शासक बनाया गया ।[77] वह भी पुत्र विहीन मरा तब उसके छोटे भाई शार्दुलसिंह को सीतामऊ का शासक बनाया गया ।[78] शार्दुलसिंह के शासनकाल में सीतामऊ में अकाल तथा महामारी फैली। उसी महामारी में 10 मई 1900 ई. को राजा शादुर्लसिंह का निधन हो गया।

राजा शार्दुलसिंह भी निःसंतान मरा था। अतः एक बार फिर उत्तराधिकार की समस्या सामने आई। तब उस परिस्थिति में उस समस्या का समाधान अंग्रेज सरकार द्वारा किया गया। और धरमाट के युद्ध में काम आने वाले रतनसिंह के दूसरे पुत्र रायसिंह के वंशज काछी बड़ौदा के महाराज दलेलसिंह के द्वितीय पुत्र रामसिंह को सीतामऊ का शासक बनाया गया ।[79]

राजा रामसिंह के शासनकाल में सीतामऊ राज्य का चहुमुखी विकास हुआ । वह समय सीतामऊ का स्वर्ण युग था । उसने सिंहासनारोहण के पश्चात ही प्रशासन में अनेक सुधार किये।

राजा रामसिंह प्रारम्भ से ही शिक्षा के महत्त्व को जानता था। अतः उसने शिक्षा के विकास हेतु अनेक प्रयास किये। उस समय सीतामऊ में एक माध्यमिक विद्यालय चलता था। 1907 ई. में इस विद्यालय की एक शाखा लदूना नगर में भी खोली गयी ।[80] 1920 ई. में सीतामऊ नगर में 'श्री राम विद्यालय' स्थापित किया गया। विद्यालय का संचालन राजा द्वारा गठित बोर्ड द्वारा किया जाता था। बोर्ड के अन्दर तीन स्टेट के एवं तीन गैर सरकारी सदस्य होते थे। राज्य का दीवान बोर्ड का अध्यक्ष होता था। सन् 1935–36 ई. में 'संस्कृत विद्यालय' की भी स्थापना की गयी थी।

बालिकाओं की शिक्षा के लिये 'सरसकुंवर' कन्या विद्यालय की भी स्थापना की गयी थी।[81] सीतामऊ नगर के साथ ही ग्रामीण शिक्षा पर भी तत्कालीन समय में पूर्ण ध्यान दिया गया। 1939–40 ई. में अनेक गाँवों में विद्यालय खोले गये। ग्राम शिक्षा के पाठ्यक्रम के निर्धारण हेतु कमेटी का गठन किया गया। कमेटी का अध्यक्ष महाराजकुमार रघुबीरसिंह को बनाया गया।[82] कमेटी द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम को 1940 ई. में लागू किया गया। लदूना, दीपाखेड़ा, दलावदा, खेजड़िया, तीतरोद, ऐरा, चीकला, मानपुरा, साखतली और खजूरी आदि गाँवों में विद्यालय खोले गये थे।[83] इसके साथ ही रियासत के राजपूत छात्रों के अध्ययन के दौरान निवास की सुविधा हेतु महाराजकुमार रघुबीरसिंह के नाम से 1933 ई. में रघुबीर राजपूत बोर्डिंग हाऊस का निर्माण किया गया।[84]

यों शिक्षा के क्षेत्र में चहुमुखी विकास के लिये राजा रामसिंह द्वारा अनेक कार्य किये गये।

कृषि संबंधी सुधार

राजा रामसिंह द्वारा कृषि की उन्नति एवं कृषकों के उत्पादन के भी अनेक प्रयास किये गये। वह जानता था कि राज्य की कमजोर अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिये भू–राजस्व को सुधारना आवश्यक था। अच्छा भू–राजस्व उन्नत कृषि पर ही निर्भर हो सकता है। अतः राजा रामसिंह ने कृषि लायक भूमि जो पड़त पड़ी थी उसे आबाद करने के लिये उस भूमि के पट्टे किसानों को दिये। उस जमीन पर सिंचाई सुविधा हेतु कुए खुदाने के लिये किसानों को राज्य की ओर से आर्थिक सहायता प्रदान की गयी। फलस्वरूप 44 नये कुए खोदे गये इनसे 250 बीघा अतिरिक्त जमीन में सिंचाई होने लगी।[85]

साथ ही राजा रामसिंह ने इस बात की समुचित व्यवस्था की थी कि कोई भी राजकीय कर्मचारी लगान या ऋण वसूल करते समय किसानों पर किसी प्रकार का अत्याचार या दुर्व्यवहार न करे। वह इस

बात का पूरा ध्यान रखता था कि किसानों पर किसी प्रकार का अन्याय न हो।[86] उसने पशुओं के स्वास्थ्य के लिये पशु चिकित्सालय बनवाया तथा आधुनिक तकनीक से कृषि करने के लिये प्रशिक्षण हेतु कृषिफार्म की स्थापना की जिसमें समय–समय पर बाहर से कृषि विशेषज्ञों को आमंत्रित कर किसानों को नवीन प्रशिक्षण दिलवाये।[87]

वन विभाग की स्थापना

सीतामऊ राज्य की सीमा में रक्षित जंगल था जिसे 'राड़ी' कहा जाता था यह जमीन घास एवं राजपरिवार के शिकार हेतु सुरक्षित रखी गयी थी। आस–पास के लोग उस जंगल से लकड़ी की अवैध कटाई करते थे, अतः राजा रामसिंह ने वन सम्पदा को सुरक्षित रखने के लिये 1909 ई. में 'वन विभाग' की स्थापना की ।[88] इस वन विभाग में एक अधिकारी एक उसका सहायक एक लिपिक तथा पाँच जवानों की नियुक्ति वन संरक्षण के लिये की गयी थी।[89] इन कर्मचारियों को सख्त निर्देश दिये गये थे कि ये लोग वन की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखें।

नगरपालिका की कार्य प्रणाली में सुधार

यों तो सीतामऊ रियासत में 1895 ई. से ही नगरपालिका कार्यरत थी। स्थापना के समय से ही इसमें राजा द्वारा नियुक्त व्यक्तियों को ही सम्मिलित किया गया था। राजा रामसिंह के काल तक यही व्यवस्था अस्तित्व में थी उस समय राज्य का दीवान उस कमेटी का प्रमुख होता था। प्रजा का इसमें सीधा दखल नहीं होने से प्रायः सामान्य जनता की कठिनाईयों का निवारण यहाँ नहीं हो पाता था। तब राजा रामसिंह ने 1931 ई. में नगरपालिका में प्रजा को प्रतिनिधित्व देने के लिये नगरपालिका के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 21 कर दी । इसमें आठ सदस्य रियासत द्वारा नियुक्त राजकीय अधिकारी व कर्मचारी होते थे शेष तेरह सदस्य जनता के प्रतिनिधि होते थे। नगरपालिका में इन सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष होता था।[90] यों राजा रामसिंह ने जनता के प्रतिनिधियों को सीधा

नगरपालिका में प्रवेश देकर जनता की समस्याओं के समाधान एवं नगर के विकास की विशेष व्यवस्था की ।

व्यापारिक सुधार

राजा रामसिंह ने अन्य सुधारों के साथ ही व्यापारिक सुधारों की ओर भी ध्यान दिया। राज्य के व्यापारियों को तत्कालीन समय में तुलाई, गाडी व दलाली आदि की ठेका प्रणाली के कारण अलग-अलग लागें देना पड़ती थीं । राजा रामसिंह ने करों में एकरूपता लाने के प्रयास किये जिसके तहत विभिन्न प्रकार की लागों को समाप्त कर कई वस्तुओं पर अतिरिक्त मेहसूल लागू किया। इस कार्य का जिम्मा सायर विभाग को सौंपा गया । 1917 ई. में दस्तरुल अमल कस्टम रियासत सीतामऊ पारित कर मेहसूल की दरों में एक रुपता लायी गयी। राज्य में ढलने वाले नकली सिक्कों पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया। सन् 1926 ई. में एक व्यापारिक बैंक की स्थापना भी की गयी जिसकी लागत 13800/- रुपये आयी थी । रियासत में रेजगारी की कमी को देखते हुए 1943 ई. में एक आने से लेकर चार आने तक के कागज के सिक्कों का प्रचलन किया ।[91]

न्याय एवं पुलिस व्यवस्था में सुधार

राजा रामसिंह एक प्रजावत्सल एवं न्यायप्रिय शासक था। उसकी न्याय प्रियता के किस्से आज भी बुजुर्ग लोगों के मुँह से सुने जा सकते हैं। राजा रामसिंह को अपने सिंहासनारोहण के प्रारम्भिक चार वर्षों में न्याय संबंधी पूर्ण अधिकार ब्रिटिश सरकार से प्राप्त नहीं हुए थे। राज्य के फौजदारी मामलों में मृत्यु दण्ड, आजीवन कारावास अथवा राज्य निर्वासन जैसी सजाओं के लिये उसे ए.जी.जी. से अनुशंसा लेनी पड़ती थी।[92] इस कमी को पूर्ण करने के लिये उसने प्रयास किये और अन्ततः वह सफल रहा। अप्रेल, 1921 ई. को अंग्रेज सरकार ने राजा रामसिंह पर लगे न्यायिक प्रतिबंध को हटा कर उसे पूर्ण न्यायिक अधिकार दे दिये ।[93] राजा रामसिंह ने अपने अधिकारों को पाकर राज्य में न्याय व्यवस्था का पुनः गठन भी

किया। उसने सत्र न्यायाधीश के अधिकार दीवान को प्रदान किये।

इस कार्य हेतु वकीलों के लिये भी कोई नियम राज्य की ओर से निश्चित नहीं थे। वकालात करने के पूर्व उन्हें सनद लेने की भी आवश्यकता नहीं थी। राजा रामसिंह ने वकीलों के लिये सनद प्राप्त करना आवश्यक कर दिया। वकीलों की भी दो श्रेणियाँ निर्धारित कर दी गयी थीं। प्रथम श्रेणी का वकील राज्य की सभी अदालतों में जाकर न्यायिक वाद की पैरवी कर सकता था, जबकि द्वितीय श्रेणी का वकील पेशी खास व महकमा खास में उपस्थित नहीं हो सकता था ।[94]

इसी तरह पुलिस व्यवस्था में सुधार करते हुए राजा रामसिंह ने सीतामऊ शहर के अन्दर पुलिस चौकियाँ स्थापित की इसके साथ ही गाँव लदूना में भी पुलिस चौकी स्थापित की। सन् 1912 ई. में राज्य में घुड़सवार पुलिस की भी व्यवस्था कर दी गयी, इनको राज्य के रिसालदार के अधीन कर दिया गया । इनमें आठ घुड़सवार हर समय तैनात रहते थे और चार सवार अन्यत्र कार्य करते थे ।[95]

राजा रामसिंह प्रारम्भ से ही प्रजा हितैषी विचारों का था । अतः उसने अपने राज्य की प्रजा को स्थानीय शासन प्रबंध में भागीदार बनाने के लिये एक नया शासन विधान बनाया। उस शासन विधान को दिसम्बर, 1938 ई. में "सीतामऊ राज्य शासन विधान" नाम से रियासत में 1 जुलाई, 1939 ई. को लागू किया गया ।[96]

रियासत के सामान्यजन को शासन के कार्यों में भागीदार बनाने हेतु इस शासन विधान के तहत राजा रामसिंह ने एक "राज्य परिषद" के नाम से राज्य की विधायिका का गठन किया। राज्य परिषद में एक अध्यक्ष तथा 21 सदस्य होते थे । सदस्यों में से 15 सदस्य प्रजाजन में से तथा 6 सदस्य शासन समिति के होते थे। उन 15 सदस्यों में से चार सदस्य सीतामऊ शहर में से, एक सदस्य लदूना गाँव से, पाँच सदस्य खालसा गाँव के तथा तीन सदस्यों को रियासत के जागीरदारों द्वारा निर्वाचित

किये जाते थे । तथा शेष दो सदस्यों को राजा मनोनीत करता था, जो कि गैर सरकारी ही होते थे । नवीन शासन विधान के प्रथम अध्यक्ष के रूप में तत्कालीन युवराज डा. रघुबीरसिंह को नियुक्त किया गया था । राज्य परिषद के निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष का होता था, लेकिन विशेष परिस्थिति में राजा इस कार्यकाल को घटा–बढ़ा सकता था ।[97] साथ ही गैर सरकारी सदस्यों के निर्वाचन के लिये फरवरी, 1939 ई. में चुनाव संबंधी नियम बनाकर प्रकाशित करवाये।[98] इसी श्रृंखला में प्रशासनिक कार्यों में राजा के सहयोग हेतु कार्यपालिका की स्थापना की गयी जिसका नाम 'शासन समिति' रखा गया । शासन समिति में भी अध्यक्ष के अतिरिक्त छः सदस्य राजा द्वारा नियुक्त किये जाते थे । इस शासन समिति के अध्यक्ष भी युवराज डा. रघुबीरसिंह को ही बनाया गया था, दीवान मोतीलाल अवासिया को उपाध्यक्ष, जसवन्तसिंह बांठिया को नायब दीवान, लालसिंह नवलखा को वित्त विभाग (फायनेंस मेम्बर) सम्भालने के लिये तथा राजस्व व्यवस्था हेतु शिवरामकृष्ण गोड़बोले (रेवेन्यु मेम्बर) तथा नन्दकिशोर व्यास को सदस्य एवं कोमलसिंह मेहता को सचिव नियुक्त किया गया । शासन समिति की बैठक सप्ताह में दो बार होती थी।[99] इस प्रकार समय की मांग को देखते हुए अपने विचारों को उदार बनाकर प्रजाहित में राजा रामसिंह ने अनेक कार्य किये।

राजा रामसिंह ने शासन व्यवस्था में सुधार के साथ ही सीतामऊ नगर एवं आसपास अनेक निर्माण कार्य भी करवाए। जिसके तहत सीतामऊ नगर के अन्दर बने गढ़ में उसने किशन महल बनाया तथा गढ़ के परिसर में ही लक्ष्मीनारायण मन्दिर बनवाया। वर्तमान में जहाँ राज परिवार के सदस्य निवास करते हैं वे भवन भी राजा रामसिंह द्वारा ही बनवाये गये थे। कोटेश्वर तथा भगोर में भी कोठियों का निर्माण राजा रामसिंह द्वारा ही करवाया गया था। राजा रामसिंह सीतामऊ के भारतीय संघ में विलीनीकरण तक सीतामऊ का शासक रहा। राजा रामसिंह का निधन 25 मई, 1967 ई. को हुआ ।[100]

राजा रामसिंह के तीन पुत्र हुए । महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंह[101] गोविन्दसिंह तथा रुघनाथसिंह । डा. रघुबीरसिंह प्रसिद्ध इतिहासकार एवं साहित्यकार हुए जिन्होंने इस क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। महाराजकुमार गोविन्दसिंह संबंधी अधिक जानकारी नहीं मिलती । उन्होंने बी.ए. तथा एल.एल.बी. की शिक्षा लखनऊ से प्राप्त की थी । वे पुत्र विहिन ही मरे थे । महाराजकुमार रुघनाथसिंह भी अपने बड़े भ्राता डा. रघुबीरसिंह की तरह विद्वान थे। उन्होंने बी.ए. 1934 ई. में आगरा से की तथा एम.ए. साइकोलोजी में 1939 ई. में क्रिश्चियन कॉलेज केम्ब्रीज से की। महाराजकुमार रुघनाथसिंह भी अपने बड़े भ्राता डा. रघुबीरसिंह के साथ रियासत के कार्यों में सहयोग देते थे। वे नरेन्द्र मण्डल की मिटिंग में भी जाते थे । 1945–46 ई. में उन्हें अलवर नरेश की सलाह से अलवर का दीवान नियुक्त किया गया था। आजादी के पश्चात उनका चयन इण्डियन फॉरेन सर्विस में हो गया। 1953 ई. में उनकी प्रथम नियुक्ति लंदन में हुई तदनन्तर इथोपिया करांची, मिश्र तथा इजिफ में रहे। तदनन्तर 1955 ई. में कायरो, 1957 ई. में सेन फ्रांसिसको, 1959 सिंगापुर में रहे। 1961 ई. में हालेण्ड के राजदूत रहे, 1967 ई. में वहाँ से युगाण्डा, 1968 ई. में कम्बोडिया, 1970 ई. में गिनी (अफ्रीका) के राजदूत रहे। दिसम्बर 1970 ई. में वह सेवानिवृत्त होकर पुनः भारत आ गये ।

महाराजकुमार रुघनाथसिंह का विवाह ठा. गोपालशरणसिंह[102] की पुत्र इन्दूमती कुमारी से 26 जनवरी, 1939 ई. को हुआ था। उनके तीन पुत्र महाराज जयसिंह, महाराज अजयसिंह एवं महाराज राजसिंह हैं तथा एक पुत्री अभिलाषाकुमारी है ।

महाराज जयसिंह का जन्म 1940 ई. में हुआ आपकी शिक्षा डेली कॉलेज इन्दौर तथा मेव कालेज अजमेर में हुई । प्रथम नियुक्ति अमरिकन पेट्रोल कम्पनी में लखनऊ में हुई । 1966 ई. में वह नौकरी छोड़कर आपने एयर इण्डिया में नौकरी की। दिल्ली, नाइजिरिया, मेनचेस्टर, इंगलैण्ड, रोम

तथा मुम्बई से सेवा निवृत्त हो गये ।

आपका विवाह राव जे.पी. सिंह की पुत्री आशासिंह से (बिहार) 1962 ई. में हुआ। आपके एक पुत्र अजातशत्रुसिंह तथा एक पुत्री अम्बिकासिंह है ।

महाराज अजयसिंह की शिक्षा डेली कॉलेज इन्दौर तथा इलाहाबाद में हुई। तदनन्तर आर्मी के इमरजेंसी ग्राण्ट कमीशन में चयन होने के पश्चात टैंक में नियुक्ति हुई । 1967 ई. के युद्ध में आपने टैंक कमाण्डर के रूप में भाग लिया तथा गोलीबारी में घायल हुए । 1970 ई. में ये आर्मी से सेवानिवृत्त हुए। आपका विवाह पलायता (कोटा) के दलेलसिंह की पुत्री शशिकुंवर से हुआ था। आपके दो पुत्र रतनसिंह तथा अंशुमानसिंह हुए।

महाराज राजसिंह का जन्म 9 जुलाई, 1945 ई. को हुआ तथा स्कूली शिक्षा इथोपिया, कराची, डेली कॉलेज, सेनफ्रांसिसको, केम्ब्रिज आदि में हुई । 1915 ई. में आपने देवी अहिल्या वि.वि. से बी.ए., 1967 ई. में एम.ए. (इतिहास) इलाहाबाद से 1970 ई. में एल.एल.बी. इलाहाबाद से उत्तीर्ण की । 1970 ई. में जे.के. पेपर मेनेजमेण्ट में प्रथम नियुक्ति हुई । 1972–73 ई. में मुम्बई, गोवा एवं गुजरात में मार्केटिंग के इन्चार्ज रहे । तदनन्तर कलकत्ता ऑफिस के इन्चार्ज रहे । 1975 ई. में कलकत्ता वि.वि. से एम.बी.ए. किया । तदनन्तर 1982 ई. तक भोपाल में मेनेजर रहे । 1982 ई. में ही टाटा स्टील के प्रान्तीय अधिकारी हुए। 2002 ई. में लाफाजी इण्डिया लिमिटेड जो कि दुनिया की सबसे बड़ी सीमेन्ट कम्पनी है में रायपुर में सिनियर रेजीडेण्ट एक्जीकेटीव की पोस्ट पर रहे।

2003 ई. में म.प्र. के मुख्यमंत्री के विशेष आमंत्रण पर राजनीति में प्रवेश किया तथा कांग्रेस के टिकिट पर सीतामऊ विधानसभा का चुनाव लड़े परन्तु दुर्भाग्य से अपको पराजय का सामना करना पड़ा । आपका विवाह नवम्बर 1970 ई. में महाराव मदनसिंह किशनगढ़ (कच्छ) की छोटी पुत्री ब्रजराजकुमारीजी से हुआ। आपके एक पुत्र धनन्जयसिंह एवं दो

पुत्रियाँ अपराजितासिंह तथा विजेतासिंह है ।

वर्तमान में आप सीतामऊ की सरस निवास कोठी में निवास करते हैं।[103]

महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंह

महाराजकुमार रघुबीरसिंह का जन्म सीतामऊ से तीन कि.मी. दक्षिण में स्थित गाँव लदूना के राजनिवास गढ़ में वि.सं. 1964 फाल्गुन बदि 5 शनिवार, फरवरी 23, 1908 ई. को हुआ था ।[104] वे सीतामऊ राज्य के महाराजा रामसिंह की ज्येष्ठ संतान थे। उनकी माँ का नाम सरस कुंवर था।[105]

रघुबीरसिंह की प्रारंभिक शिक्षा अपने माता–पिता द्वारा घर पर ही हुई। सन् 1920 ई. में रघुबीरसिंह को अध्ययन के लिए इन्दौर के डेली कालेज में भेज दिया गया । कुछ समय पश्चात ही अस्वस्थता के कारण उन्हें वापस सीतामऊ आना पड़ा और यहीं रहकर उन्होंने अध्ययन कार्य किया। सन् 1924 ई. में स्वाध्यायी छात्र के रूप में बड़ोदा हाईस्कूल से मेट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् 1926 ई. में इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1928 ई. में शिक्षक विद्यार्थी के रूप में बी.ए. किया। इसके उपरान्त 1930 ई. में होल्कर कालेज इन्दौर से एल.एल.बी. की उपाधि अर्जित की । 1933 ई. में पुनः शिक्षक विद्यार्थी के रूप में आगरा विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में एम.ए. किया। 1936 ई. में आगरा विश्वविद्यालय से "मालवा इन ट्रांजीशन" इतिहास विषय पर डी.लिट. की उपाधि प्राप्त की ।[106]

छात्र जीवन में रघुबीरसिंह की रुचियाँ भी अद्भुत थी । फोटोग्राफी तथा खेल से उनका गहरा लगाव था। वे क्रिकेट के अच्छे खिलाड़ी थे। चित्रकला में भी उनकी रुचि थी। इसी रुचि के कारण उन्होंने मुम्बई के जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स से डिप्लोमा भी किया । उन्होंने 1926 से 1928 ई. के मध्य अनेक चित्रों का चित्रांकन किया ।[107] समस्त चित्रों का विषय

प्रकृति या इतिहास से संबंधित था। इस संबंध में उन्होंने कहा कि "जब मैंने देखा कि प्रशिक्षण के अभाव में बहुत दूर तक इस क्षेत्र में कार्य नहीं किया जा सकता है और उसे जनता के समक्ष नहीं लाया जा सकता है तब मैंने इसे छोड़ दिया।"[108] परन्तु उनके इतिहास लेखन में यथोचित संदर्भ में उनके चित्रकार ने अपना प्रभाव दिखाया है।

रघुबीरसिंह किशोरावस्था में ही शिक्षा ग्रहण करते हुए हिन्दी और अंग्रेजी में हस्तलिखित पत्रिका **'किरण'** निकालते थे। यही पत्रिका उनकी वैचारिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। 1926 ई. से वे हिन्दी भाषा की सरस्वती[109], माधुरी[110], चाँद[111], सुधा[112], क्षत्रिय तथा बालसखा जैसी सुप्रसिद्ध पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखने लगे।

रघुबीरसिंह एक ओर शैक्षणिक प्रगति के पथ पर चल रहे थे और दूसरी ओर अपने पिता के साथ राज्य के कार्यों में भी सहयोग दे रहे थे। एल.एल.बी. की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त वे सीतामऊ राज्य की हायकोर्ट में 1934 ई. में न्यायाधीश के पद पर नियुक्त हो गये और अगस्त 1940 ई. तक इस पद पर बने रहे ।[113]

डा. रघुबीरसिंह के विचार प्रारम्भ से ही उदारवादी थे। उन्हें मूर्त रूप देने के लिए सीतामऊ राज्य के लिए नवीन संविधान का निर्माण किया जिसे दिसम्बर 1938 ई. में लागू किया गया। जनता की राज्य शासन में भागीदारी के लिए इसमें राज्य परिषद की व्यवस्था की गई। साथ ही इसमें शासन समिति का भी प्रवधान था। इसमें स्वयं डा. रघुबीरसिंह दिसम्बर 1938 से अगस्त 1941 ई. तथा जुलाई 1945 से जून 1948 ई. तक शासन समिति के अध्यक्ष पद पर रहे। यह संविधान मध्यभारत में सीतामऊ के विलय तक लागू रहा ।[114]

डा. रघुबीरसिंह ने स्वतंत्रता के पूर्व तथा पश्चात अनेक अकादमिक संस्थाओं में मानद सदस्य के रूप में कार्य किया । इण्डियन हिस्टॉरिकल रिकार्डस कमीशन में भारत सरकार के सहयोगी के रूप में 1937 ई. से 1942 ई. तक पुनः 1952 ई. से 1972 ई. तक कार्य किया। 1972 ई. के

उपरांत वे उसमें सरकार द्वारा नामित स्थायी सदस्य हो गये।[115] वे मध्यभारत के रीजनल रिकार्डस सर्वे कमेटी के 1953 ई. से 1956 ई. तक अध्यक्ष रहे।[116] तदनन्तर मध्यप्रदेश शासन ने उन्हें जिला गजेटियर के संशोधन हेतु राज्य सलाहकार बोर्ड में सदस्य के रूप में नामित किया।[117] वे 1957 ई. से ऑल इण्डिया काशीराज ट्रस्ट, रामनगर, बाराणसी के आजीवन ट्रस्टी रहे।[118] वे नरेन्द्र मण्डल (चेम्बर ऑफ प्रिंसेस) के सम्मेलनों एवं कार्यवाहियों में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे । प्रारंभ में अपने पिता के साथ, बाद में अपने राज्य प्रतिनिधि के रूप में सम्मेलन के अन्त तक भाग लेते रहे।[119] राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के उपकुलपति भी रहे।[120]

अपने पिता के जीवित रहते वे अपनी रियासत के कार्यों से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे । पिता के निधन के उपरान्त मई, 1967 ई. में पैतृक राज्याधिकार अपने पुत्र कृष्णसिंह राठौड़ आय.पी.एस. को देकर उसका राजतिलक करवा दिया तथा वे स्वयं "महाराजकुमार" संबोधन से अमर हो गये ।

रघुबीरसिंह का विवाह प्रतापगढ़ की राजकुमारी मोहनकुंवर के साथ दिसम्बर 2, 1929 ई. को हुआ था ।[121] इनसे दो पुत्र एवं दो पुत्रियाँ हुए। उनके ज्येष्ठ पुत्र कृष्णसिंह जो पुलिस महानिदेशक (म.प्र.) के पद से सेवा निवृत्त हुए तथा श्री नटनागर शोध संस्थान के अध्यक्ष पद पर रहे। द्वितीय पुत्र ब्रजराजसिंह ने एम.एस.सी. की परीक्षा आगरा विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की तथा सयुंक्त राज्य अमेरिका स्थित ओक्लहामा विश्वविद्यालय से पी–एच.डी. की उपाधि अर्जित की। इस पुत्र (डा. ब्रजराजसिंह) का युवावस्था में ही 20 मई, 1967 ई. को एक दुर्घटना में निधन हो गया। इस पारिवारिक वज्रपात के पाँच दिन पश्चात उनके पिता महाराजा रामसिंह का भी 25 मई, 1967 ई. को निधन हो गया ।[122] इस पारिवारिक त्रासदी का सामना उन्होंने बड़े धैर्य के साथ किया और युवा पुत्र की मृत्यु का आघात भी उन्हें अपनी उस चिरन्तन इतिहास साधना से यत्किंचित भी विचलित नहीं कर सका।[123] यही शिक्षा वे अपने शिष्यों को भी देते थे। 13 फरवरी, 1991 ई. को महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंह का निधन हो गया।

महाराजा कृष्णसिंह राठौड़

महाराजा श्री कृष्णसिंहजी राठौड़ का जन्म 18 नवम्बर, 1934 ई. को हुआ था। आप महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे आपकी माता का नाम मोहनकुमारी था।

कृष्णसिंह राठौड़ की प्रारंभ से लेकर हाईस्कूल तक की शिक्षा सीतामऊ में ही हुई थी। आपने हाईस्कूल की परीक्षा श्रीराम विद्यालय, सीतामऊ से 1949 ई. में शिक्षा मण्डल अजमेर के अन्तर्गत पास की। इण्टरमीडिएट 1951 ई. में डेली कालेज, इन्दौर से म.प्र. शिक्षा मण्डल भोपाल के तहत उत्तीर्ण की। बी.ए. आगरा विश्वविद्यालय, आगरा के अन्तर्गत 1953 ई. में सेण्ट जॉन्स कालेज, आगरा से उत्तीर्ण की । एम.ए. इतिहास विषय में सेण्ट जॉन्स कालेज, आगरा से ही 1955 ई. में उत्तीर्ण की। 1958 ई. में दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली से एल.एल.बी. की। 1959 ई. में दिल्ली विश्वविद्यालय से ही सर्टिफिकेट ऑफ प्रोफिशएन्सी इन लॉ की डिग्री प्राप्त की। 1959 ई. में ही आपका चयन भारतीय पुलिस सेवा के लिये हो चुका था तदनन्तर 30 अक्तूबर, 1959 ई. में आपने अपना पदभार ग्रहण कर लिया था। तत्पश्चात सहायक अधीक्षक पुलिस के प्रशिक्षण हेतु उसी वर्ष अक्तूबर, 1959 से अक्तूबर 1960 ई. तक आप आबू में रहे तथा नवम्बर 1960 ई. से नवम्बर 1961 ई. तक रीवा में प्रशिक्षण प्राप्त किया। उपरोक्त प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात आपकी नियुक्ति एस.ए.एफ. इन्दौर में प्रथम बटालियन के सहायक कमांडेण्ट पद पर हुई। इस पद पर आप दिसम्बर 1961–जून 1962 ई. तक रहे। उसके पश्चात् जून 1962 से जून 1963 ई. तक आप अलीराजपुर में सब डिवीजन ऑफिसर पुलिस के पद पर रहे। जून 1963 से जून 1964 ई. तक सी.एस.डब्ल्यू.टी. इन्दौर के डिप्टी कमाण्डेण्ट रहे । जून 1964 ई. से जनवरी 1965 ई. तक एस.ए.एफ. इन्दौर की प्रथम बटालियन के कमाण्डेण्ट रहे। जनवरी से जून 1965 ई. तक नेशनल पुलिस अकादमी, आबू में 'एडवान्स्ड कोर्स' करने के बाद जुलाई

1965 ई. में आपकी नियुक्ति शिवपुरी में पुलिस अधीक्षक के पद पर हुई। इस पद पर आप अप्रेल 1967 ई. तक रहे थे । जुलाई 1967 ई. से अक्तूबर 1968 ई. तक आप आय.बी., नई दिल्ली में सहायक निदेशक के पद पर रहे। तदनन्तर राष्ट्रीय पुलिस अकादमी आबू में सहायक निदेशक (एड्जुटेण्ट) स्थानान्तरित हुए, अक्तूबर 1968 से जनवरी 1973 ई. आप उसी पद पर रहे थे। तदनन्तर जनवरी 1973 से जून 1973 ई. तक झाबुआ में पुलिस अधीक्षक के पद पर रहे। जून 1973 से जनवरी 1974 ई. तक एस.ए.एफ. (15 बटेलियन) के कमांडेण्ट रहे। उसके पश्चात् बेसिक ट्रेनिंग सेण्टर सीमा सुरक्ष बल एकेडमी टेकनपुर के कमांडेण्ट नियुक्त हुए जो मार्च 1977 ई. तक रहे। मार्च 1977 ई. से दिसम्बर 1977 ई. तक आप डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल के पद पर बी.एस.एफ. अगरतला (त्रिपुरा) में नियुक्त रहे। वहाँ से आपका स्थानान्तरण डी.आय.जी. कमांडेण्ट सिग्नल ट्रेनिंग स्कूल बी.एस.एफ. हेड क्वार्टर, नई दिल्ली में हुआ। वहाँ जनवरी से अप्रेल 1978 ई. के बीच रहे। तदनन्तर मई 1978 से दिसम्बर 1978 ई. तक डिप्टी कमांडेण्ट (डी.आय.जी.) बी.एस.एफ. एकेडमी टेकनपुर में पदस्थ रहे। अक्तूबर 1979 से अप्रेल 1983 ई. तक टेकनपुर में ही टीयर स्मोक यूनिट (अश्रुगैस इकाई) के जनरल मैनेजर रहे । इसी दौरान जनवरी से अप्रेल 1982 ई. तक बी.एस.एफ. एकेडमी टेकनपुर के डायरेक्टर (आफिसियेटिंग) का प्रभार भी आपने संभाला था। मई 1983 से जनवरी 1986 ई. तक आप आर्म्स पुलिस ट्रेनिंग कालेज (ए.पी.टी.सी.) इन्दौर के डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल के पद पर नियुक्त हुए। तत्पश्चात् जनवरी 1986 से अक्तूबर 1988 ई. तक बी.एस.एफ. जोधपुर के इन्स्पेक्टर जनरल के पद पर रहे। इस पद पर गुजरात एवं राजस्थान दोनों प्रान्तों की पाकिस्तान से लगी सीमा पर कार्यभार संभाला। तदनन्तर वहाँ से उनका स्थानान्तरण ए.पी. टी.सी. इन्दौर में हुआ वहाँ वह 1988 से अप्रेल 1991 ई. तक इसी पद पर बने रहे। अप्रेल 1991 ई. से 1992 ई. तक एडिशनल डायरेक्टर लोकायुक्त (एस.पी.ई.) तथा जनवरी से मई 1992 तक एडिशनल डायरेक्टर जनरल

(ट्रेनिंग) पद पर पुलिस हेडक्वार्टर भोपाल में पदस्थ रहे थे । मई 10, 1992 ई. में आप मध्यप्रदेश के पुलिस महानिदेशक (डी.जी.पी.) पद पर नियुक्त हुए । इसी पद पर रहते हुए 30 नवम्बर 1992 ई. को आप सेवा निवृत्त हो गये थे ।

श्री कृष्णसिंह राठौड़ साहब की उपलब्धियाँ, कोर्सेस एवं प्रशिक्षण

विरासत में मिली विचारधारा के तहत अपने आपको शिक्षा को समर्पित करते हुए महाराजा कृष्णसिंह राठौड़ साहब ने पुलिस सेवा में रहते हुए भी अपनी सेवा से संबंधित तथा अपने कार्य से हटकर अनेक कोर्स एवं प्रशिक्षण प्राप्त किये थे ।

इसके तहत आपने आय.पी.एस. प्रशिक्षण 1959–60 ई. में सी.पी.टी.सी. आबू से प्राप्त किया था । एम.पी.पी.सी. सागर से उन्होंने 1961 ई. में अश्रुगैस कोर्स किया था। 1962 ई. में प्लाटून शास्त्र कोर्स इन्फेन्ट्री स्कूल मऊ से किया था । 1963 ई. में प्रशिक्षण विधि का प्रशिक्षण सैनिक शिक्षण केन्द्र पंचमढ़ी से प्राप्त किया था। 1965 ई. में उन्होंने एन.पी.ए. आबू से एडवान्सड कोर्स किया था । 1967 ई. में आय.बी. ट्रेनिंग सेण्टर में 'बेसिक इन्टेलिजेन्स' कोर्स नई दिल्ली से किया था । तदनन्तर 1978 ई. में आय.सी.एफ.एस. नई दिल्ली से रिसर्च मेथेलाजी का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। 1980 ई. में आय.आय.पी.ए. नई दिल्ली से प्रबंध (पब्लिक अंडरटेकिंग) का कोर्स किया था, 1987 ई. में एन.पी.ए. हैदराबाद से 'उच्च परस्पर संबंध' का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (आई.आई.पी.ए.) का प्रशिक्षण 1989 ई. में ए.एस.सी.आय. हैदराबाद से प्राप्त किया । टेक्नालॉजी के उपयोग का प्रशिक्षण राठौड़ सा. ने 1990 ई. में डी.सी.पी.सी. नई दिल्ली से प्राप्त किया था।

इन सभी प्रशिक्षणों के अतिरिक्त उसी दौरान उन्होंने 1977 तथा 1979 ई. के मध्य भारतीय घुड़सवारी संघ नई दिल्ली द्वारा आयोजित अश्वारोही कोर्स तथा 1978 ई. और 1981 ई. में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय

प्रतियोगिताओं के जज और कोच क्लीनिक्स में प्रशिक्षण प्राप्त किया था।

श्री के.एस. राठौड़ सा. की गतिविधियाँ अपने पद से संबंधित ही नहीं अपितु अपने वंश की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने अनेक उपलब्धियाँ हांसिल की थी । वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। अपनी उपलब्धियों की उन्होंने एक लम्बी श्रृंखला तैयार की थी। वे उपलब्धियाँ निम्न हैं–

1. श्री कृष्णसिंह राठौड़ द्वारा 1963 ई. में अस्त्र–शस्त्र का एक केन्द्रीय विद्यालय स्थापित किया गया था ।
2. शिवपुरी के आस–पास बरसों से डाकुओं का आतंक था । 1965 से 1967 ई. के मध्य राठौड़ सा. द्वारा बड़ी कुशलता से उन डाकुओं के क्रिया कलापों को नियंत्रित किया गया ।
3. पुलिस विभाग में रहते हुए भी वे सामाजिक गतिविधियों से अनवरत जुड़े रहे। इसी के तहत उन्होंने 1968 से 1973 ई. के दौरान आबू में रहते हुए सलामी परेड, सांस्कृतिक कार्यक्रम, रेडक्रास उत्सव, आबू त्योहार आदि अवसरों पर मुख्य आयोजक के रूप में उल्लेखनीय योगदान दिया। वेलफेयर, विभिन्न निर्माण कार्य, हाउसिंग, नई बटालियन रेजिंग सभी कार्य उन्नति के शिखर पर रहे ।
4. 1986 से 1989 ई. तक आप राजस्थान की बॉस्केटबाल संघ के मुख्य संरक्षक रहे।
5. 1988–1991 ई. तक यूथ होस्टल एसोशियेसन भारत की इन्दौर शाखा के आप सभापति रहे ।
6. विश्व वन्य जीव फण्ड के आप आजीवन सदस्य रहे।
7. भारतीय लोक प्रशासन संस्थान के भी आप आजीवन सदस्य रहे।
8. जोधपुर तथा जैसलमेर में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय रेगिस्तान के प्रसिद्ध त्यौहार में विशेष रुचि लेकर उसे प्रोत्साहित किया तथा सीमा सुरक्षा बल के विख्यात टेटू शो तथा बी.ओ.पी. ऑर्केस्ट्रा लेकर

सम्मिलित हुए । इसी दौरान आपने बी.एस.एफ. का विश्वविख्यात एवं "गिनिज बुक ऑफ रिकॉर्ड्स" में वर्णित "केमल माऊन्टेड ब्रास बेण्ड" का निर्माण किया ।

9. 1986 ई. में भारत–पाक सीमा पर केमल सफारी का संगठन किया तथा 1987 ई. में राजस्थान, गुजरात और पाकिस्तान सीमा पर ऊँटों की रिले दौड़ करवायी ।

10. मार्च, 1992 ई. में भोपाल में राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय अश्वारोही प्रतियोगिताओं का आयोजन किया ।

11. मई, 1991 ई. में इन्टेक (INTACH) के क्षेत्रीय कनवेनर रहे ।

12. भारतीय रेडक्रास सोसायटी के आप आजीवन सदस्य रहे ।

13. अगस्त, 1991 ई. से आजीवन श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ के अध्यक्ष एवं निदेशक रहे ।

14. 1991 ई. में भारतीय "शो जम्पिंग टीम" के कोच होकर टीम तथा व्यक्तिगत प्रतियोगिताओं में टोकियो (जापान) में दो रजत पदक प्राप्त करवाये ।

15. 1996 ई. में भारतीय "ड्रेसाज" टीम के सदस्य तथा कोच रहकर बैंकाक (थाईलेण्ड) में चौथा स्थान प्राप्त किया ।

16. रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लंदन के भी आप सदस्य थे ।

17. 1970–1985 ई. के मध्य अखिल भारतीय पुलिस अश्वारोही प्रतियोगिताओं के आयोजन किये ।

18. राष्ट्रीय पुलिस, मध्यप्रदेश तथा सीमा सुरक्षा बल की अश्वारोही टीमें तैयार करके उन्हें प्रशिक्षित किया जो आगे जाकर देश की श्रेष्ठतम टीमें रहीं ।

19. नवम्बर, 1975 ई. में बी.एस.एफ. की टीम अन्तर्राष्ट्रीय टेटू शो मस्कत (ओमान) में आप ही के नेतृत्व में ले जायी गयी थी।

20. आप अन्तर्राष्ट्रीय अश्वारोही पेनल के जज एवं कोच भी रहे।

21. 1973 ई. से 1998 ई. तक आप भारतीय अश्वारोही संगठन के

कार्यपालन कमेटी के सदस्य रहे तथा साथ ही पांच बार इसके उपाध्यक्ष भी रहे । साथ ही साथ दो बार (3–3 वर्ष के लिए) आप इसकी चयन समिति के अध्यक्ष भी रहे। इस संगठन के आप आजीवन सदस्य रहे।

22. 1977 ई. में आपने डी.आय.जी. का कार्य सफलतापूर्वक बी.एस.एफ. त्रिपुरा में भारत–बांग्लादेश सीमा पर किया।

23. 1979 से 1983 ई. तक टेकनपुर के अश्रुगैस संगठन के मुख्य प्रबंधक के रूप में अपने निरीक्षण में इतना समृद्ध किया कि इससे प्रतिवर्ष 120 प्रतिशत उत्पादन बढ़ गया।

24. 1983–85 ई. के दौरान इन्दौर में सशस्त्र पुलिस कॉलेज की स्थापना कर उसे सुदृढ़ रूप प्रदान किया।

25. जनवरी, 1986–अक्तूबर, 1988 ई. तक महानिरीक्षक पुलिस बी.एस.एफ. के पद पर रहते हुए आपने राजस्थान एवं गुजरात दोनों प्रान्तों का कार्यभार संभाला । इस दौरान इन प्रान्तों की सीमा पर प्रत्येक क्षेत्र जैसे – आपरेशन इन्टेलीजेंस, खेलकूद, शूटिंग, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, वेलफेअर, विभिन्न निर्माण कार्य, हाउसिंग, नई बटालियन रेजिंग सभी कार्य उन्नति के शिखर पर रहे ।

श्री के.एस. राठौड़ साहब ने न केवल भारत अपितु विदेशों में भी अपने देश का गौरव बढ़ाने के लिये अनेक विदेश यात्राएं की तथा अनेक उपलब्धियाँ हांसिल की थीं। उनके द्वारा विभिन्न उद्देश्यों से की गयीं विदेश यात्राएं निम्न थी – 1964 ई. में उन्होंने यूरोप, मिश्र, तथा बेरून की यात्राएं की थीं। ये यात्राएँ उन्होंने अवकाश काल के दौरान की थीं। 1972 ई. ओब्जर्वर के रूप में म्यूनिख ओलम्पिक, आयरलेण्ड, जर्मनी, आस्ट्रिया (विएना) की यात्राएँ की थीं । बी.एस.एफ. की घुड़सवारी टीम तथा बेण्ड टीम के साथ अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन टेटू शो में भाग लेने के लिए 1975 ई. में ओमान की यात्रा की थी। 1986 ई. में इग्लैण्ड फ्रांस स्विटजरलैण्ड आदि देशों की यात्रा अध्ययन टूर के रूप में की थी । 1990 ई. में घुड़सवारी तथा

अन्तर्राष्ट्रीय पेनल के जज, कोच तथा ओब्जर्वर के रूप में इग्लैण्ड इटली, स्विटजरलेण्ड तथा आस्ट्रिया की यात्रा की । भारतीय घुड़सवारी टीम के कोच तथा मैनेजर के रूप में जापान, हांगकांग की 1991 ई. में तथा बैंगकांक की 1996 ई. में यात्राएँ की थीं।

श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ के अध्यक्ष के रूप में उपलब्धियाँ निम्न हैं –

जैसा कि पूर्व विदित है कि कृष्णसिंहजी राठौड़ महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंहजी की ज्येष्ठ संतान थे। डा. रघुबीरसिंहजी के पिता राजा रामसिंहजी निधन 25 मई, 1967 ई. को हुआ। पिताजी की मृत्यु के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र ही राजगद्दी का उत्तराधिकारी होता है, ऐसा सामान्य नियम है। परंतु डा. रघुबीरसिंह तो साहित्य एवं इतिहास के अनुरागी थे उन्होंने राजगद्दी पर बैठने से मना कर दिया तब कृष्णसिंहजी राठौड़ सा. सीतामऊ की राजगद्दी पर बैठे और सभी पारिवारिक जिम्मेदारियों को बड़ी कुशलता से निभाया। 13 फरवरी, 1991 ई. को महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंहजी का निधन हो गया तब उनके द्वारा स्थापित इतिहास के तीर्थस्थल 'श्री नटनागर शोध संस्थान' के अध्यक्ष का पद भी खाली हो गया। तब श्री कृष्णसिंहजी राठौड़ ने संस्थान के अध्यक्ष पद को संभाला। इस पद पर रहते हुए उन्होंने अपने पिता की आकांक्षाओं पर खरा उतरते हुए संस्थान को आगे बढ़ाने के प्रयासों में अपना अमूल्य सहयोग दिया। उनके अध्यक्ष एवं निर्देशन में संस्थान ने उपलब्धियाँ अर्जित कीं । उन्होंने अपने निर्देशन में निम्न सेमिनारों का आयोजन किया –

नवम्बर, 1991 ई. को "पूर्व आधुनिक मध्यप्रदेश का राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अध्ययन" विषय पर द्वि–दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। साथ ही "मालवा का सांस्कृतिक इतिहास" विषय पर 24–12–1991 ई. को परिसंवाद रखा गया। संगोष्ठी का उद्घाटन महामहिम कुंवर मेहमूद अली खाँ राज्यपाल, मध्यप्रदेश के

कर-कमलों द्वारा किया गया तथा अध्यक्षता तत्कालीन गृहमंत्री माननीय श्री कैलाशजी चावला ने की थी। इस संगोष्ठी में मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब और दिल्ली आदि विभिन्न प्रान्तों के लगभग 150 विद्वानों ने भाग लिया था।

फरवरी, 23–25, 1994 ई. को त्रि–दिवसीय संगोष्ठी "मालवा का इतिहास" विषय पर तथा "मंदसौर (दशपुर) के शैलचित्र" विषय पर आयोजन किया गया। संगोष्ठी का उद्घाटन इतिहासविद् प्रोफेसर हीरालाल गुप्त, ने किया तथा अध्यक्षता विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के पूर्व कुलपति प्रो. के.के. केमकर ने की । इस संगोष्ठी में 63 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

मई 15–17, 1996 ई. को "मध्यकालीन और उत्तर मध्यकालीन मालवा, गुजरात और राजस्थान का इतिहास विषय पर आयोजित की गयी। संगोष्ठी का उद्घाटन प्रोफेसर ए.आर. अब्बासी, उप कुलपति, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर ने किया। इसमें 60 विद्वानों ने भाग लिया। दिसम्बर 13–15, 1998 ई. को "मध्यकालीन राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र के निर्णायक युद्ध" विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। उद्घाटन सांसद डा. लक्ष्मीनारायणजी पाण्डेय द्वारा किया गया। इस संगोष्ठी में देश के विभिन्न प्रान्तों के 65 विद्वानों ने भाग लिया।

नवम्बर 24–25, 2000 ई. को "मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एवम् उत्तर भारत की राजस्व व्यवस्था (16वीं से 19वीं शताब्दी तक)" विषय पर त्रि–दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी का उद्घाटन माननीय श्री सुभाषकुमार सोजतिया, तत्कालीन लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण तथा जन संपर्क मंत्री, मध्यप्रदेश शासन, ने किया। संगोष्ठी में विभिन्न प्रान्तों के लगभग 60 विद्वानों ने भाग लिया।

जनवरी 10–12, 2003 ई. को "भारत के दुर्ग (इतिहास में उनका सामरिक दांवपेच तथा व्यवहारिक भूमिका तथा उनका भविष्य" विषय पर

त्रि–दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का उद्घाटन भारत के उप उच्चायुक्त डा. टी.सी.ए. राघवन ने किया। इस संगोष्ठी में राष्ट्र के विभिन्न प्रान्तों के लगभग 85 विद्वानों ने भाग लिया।

मार्च 11–12, 2006 ई. को द्वि–दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी "भारत के आक्रमक एवं आक्रमण" विषय पर आयोजित की गयी। संगोष्ठी का उद्घाटन माननीय डा. लक्ष्मीनारायणजी पाण्डेय, सांसद ने किया। इस संगोष्ठी में देश के विभिन्न प्रान्त्तों के लगभग 60 विद्वानों ने भाग लिया।

2007 ई. में एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन श्री नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के 150 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में किया।

फ़रवरी 23–26, 2008 ई. को राजनिवास गढ़ लदूना में महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंहजी जन्म शताब्दी समारोह के अवसर पर चार दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंहजी के व्यक्तित्व, कृतित्व, 1857 की क्रांति तथा इतिहास की शोध पद्धति, पर विभिन्न विद्वानों ने अपने शोध पत्रों का वाचन किया। इस संगोष्ठी में अनेक विद्वानों ने भाग लिया।

इस प्रकार महाराजा कृष्णसिंह राठौड़ एक बहुमुखी प्रतिभा के रूप में हमेशा सीतामऊ राज्य को गोरवान्वित करते रहे। 23 मई, 2008 ई. को ब्रेन हेमरेज होने से इन्दौर में आपका निधन हो गया। आपका अन्तिम संस्कार पूरे राजकीय सम्मान के साथ सीतामऊ में किया गया।

विवाह एवं संतति

महाराजा श्री कृष्णसिंहजी का विवाह महाराणा श्री भगवतसिंहजी उदयपुर की राजकुमारी योगेश्वरी कुमारीजी से मई 6, 1962 ई. को सम्पन्न हुआ। आपकी एक पुत्री विन्ध्येश्वरी कुमारी है जिनका जन्म 27 जून, 1965 ई. को हुआ। दो पुत्र प्रथम महाराजा पुरंजयसिंह हैं, जिनका जन्म 1 जुलाई, 1971 ई. तथा द्वितीय महाराजकुमार मृत्युंजयसिंह हैं,

जिनका जन्म 11 मई, 1973 ई. को हुआ ।

महाराजकुमार श्री मृत्युंजयसिंह ने सिंधिया स्कूल, ग्वालियर, डेली कॉलेज, इन्दौर तथा हंसराज कॉलेज, दिल्ली में शिक्षा प्राप्त की। महाराजकुमार श्री मृत्युंजयसिंह ने बचपन से ही घुड़सवारी में विशेष रुचि तथा योग्यता दिखाई। वे लगातार राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिताएँ जीतते रहे तथा 1990 ई. में राष्ट्रीय जूनियर चैम्पियन घुड़सवार का खिताब जीता। 1991 ई. में आस्ट्रेलिया में प्रथम बार भारतीय टीम की ओर से रजत पदक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में जीता। तब से वे लगातार भारतीय टीम में रहे तथा इग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, रूस तथा भारत में हर प्रकार की प्रतियोगिता में भाग लेकर पदक जीते। इन्होंने इग्लैण्ड में 1998 से 2001 ई. तक विशेष प्रशिक्षण प्राप्त कर 'ब्रिटिश हॉर्स सोसाइटी इन्स्ट्रक्टर" की योग्यता प्राप्त की है। बूसान (दक्षिण कोरिया) में आयोजित "एशियन गेम्स 2002" में आपने भारतीय घुड़सवारी टीम में भाग लिया । वर्तमान में भी आप भारत के गौरव को अनवरत बढ़ा रहे है।

वर्तमान महाराजा श्री पुरंजयसिंह राठौड़

महाराजा कृष्णसिंह राठौड़ के 23 मई, 2008 ई. के निधनोपरान्त सीतामऊ नगर में स्थित राजमहलों में 6 जून, 2008 ई. को महाराजा पुरंजयसिंह का राज्याभिषेक किया गया । वर्तमान महाराजा श्री पुरंजयसिंह राठौड़ का जन्म 1 जुलाई, 1971 ई. को मुम्बई में हुआ । आपके पिता सीतामऊ रियासत के पूर्व महाराजा श्री कृष्णसिंह राठौड़ थे, तथा माता महारानी श्रीमती योगेश्वरीकुमारी, सुपुत्री स्व. महाराणा भगवतसिंह, उदयपुर हैं ।

महाराजा पुरंजयसिंह ने अपनी नियमित प्रारम्भिक शिक्षा की शुरुवात सिन्धिया स्कूल, ग्वालियर तथा इन्दौर के ऐतिहासिक स्कूल डेली कालेज से की। आप इस विद्यालय में वंशानुगत राजघराने के चौथी पीढ़ी के विद्यार्थी थे। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र विषय में बी.ए. (ऑनर्स) की डिग्री प्राप्त कर आप स्विट्जरलेण्ड गये, जहाँ आपने

'इन्स्टीट्यूट होटलियर सेसर रिट्ज' से होटल मेनेजमेन्ट का प्रशिक्षण पूर्ण किया और बाद में इण्टरनेशनल कालेज ब्रिग, स्विटजरलेण्ड से आपने इण्टरनेशनल हास्पिटलिटी एण्ड टूरिज्म से बी.एस-सी. किया। होटल इण्डस्ट्री की तरफ आपका झुकाव आपके नाना मेवाड़ के महाराणा भगवतसिंह जो 1960 के पूर्व के पथ प्रदर्शक रहे थे । वे प्रथम भारतीय शासक थे जिन्होंने अपने महल को होटल के रूप में परिवर्तित किया। युवा पुरन्जय का लालन-पालन भारत तथा विदेश के होटलों में हुआ। आप यूरोप में कई बार अंशकालीन समय के लिए गये । आपकी प्रथम नियुक्ति अमेरिका स्थित हेयाट रीजन्सी होटल डल्लस/फोर्ट वर्थ 1996 ई. में हुई थी जहाँ इस समूह में कार्य किया । आपने यात्राएँ की और साइपैन के द्वीप में कार्य किया । आपने जापान, कोरिया तथा मुम्बई में भी कार्य किया। आप 2003 ई. में ओबेराय ग्रुप के होटलों में आए और दिलचस्प पदों पर आय टी सिटी बंगलौर से रणथम्भौर के शेरों तथा अब वर्तमान में दिल्ली के काँकरीट जंगल द ओबेराय में जनरल मैनेजर के पद पर पदस्थ हैं ।

पुरंजयसिंह अपने पिता तथा पूर्वजों के समान प्रकृति व जानवरों से अत्यधिक प्रेम रखते हैं। आपका उनसे असीम प्रेम है। आप अध्ययन, गोल्फ और क्रिकेट के शौकीन हैं। जब आप अपने कुत्तों के साथ समय व्यतीत करते है तब अत्यन्त प्रसन्नता महसूस करते हैं।

पुरंजयसिंह का विवाह हिमाचल प्रदेश के कुठार के राणा अरुण सेन तथा रानी निम्मी सेन की सुपुत्री राजकुमारी अरुणिमा के साथ 22 फरवरी, 2004 ई. को हुआ। आपके एक पुत्र पराक्रमसिंह है जिनका जन्म 24 मई, 2010 ई. को हुआ।

साहित्यिक श्रृंखला में जो सीतामऊ राजघराने में व्यक्तिगत जीवन में सदैव पूर्णता परिभाषित किया और आप स्कूल तथा कालेज के जीवन में देश और विदेश में अच्छे छात्र के रूप में पुरस्कृत हुए।

पुरंजयसिंह सीतामऊ की साहित्यिक महत्ता तथा रीति-रिवाज, परम्परा में अत्यधिक दृढ़ स्थित हैं, साथ ही आप आधुनिक युग तथा

व्यावसायिक संसार में विश्वव्यापी स्तर पर अनावरण करते हैं। आपका स्वप्न है कि नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ को अन्तर्राष्ट्रीय दर्जा तथा मान्यता मिले। ऐसा करने से आपका उद्देश्य अपने दादा महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंह द्वारा निर्मित ऐतिहासिक तीर्थ स्थल श्री नटनागर शोध संस्थान को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कराना है । साथ ही आपकी हार्दिक इच्छा है कि सीतामऊ साहित्यिक और ऐतिहासिक क्षेत्र में विश्व के नक्शे में अग्रणी हो । सीतामऊ को शैक्षणिक क्षेत्र में ही नहीं आर्थिक क्षेत्र में भी लाभ हो और विगत समय के स्वर्णिम दिन के समान इस क्षेत्र में सुख और समृद्धि वापस लौटे ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सीतामऊ स्टेट गजेटियर, 1908 पृ. 1 ।
2. सीतामऊ स्टेट गजेटियर, 1908 पृ. 1 ।
3. नाहरगढ़ 24° $10'$ उत्तर तथा 75° $18'$ पूर्व में मन्दसौर से 12 मील उत्तर–पूर्व में स्थित। स्वतंत्रता से पूर्व ग्वालियर राज्य के मन्दसौर जिले का एक परगना ।
4. तितरोद 24° $2'$ उत्तर तथा 75° $29'$ पूर्व में सीतामऊ से 6 मील पूर्व में स्थित ।
5. आलोट 24° $46'$ उत्तर तथा 75° $36'$ पूर्व में जावरा से 18 कि. मी. दूर स्थित ।



6. सीतामऊ स्टेट गजेटियर, पृ. 1; डा. शिवदत्तदान बारहठ सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 1 ।
7. मल्हारगढ़ 24° 17' उत्तर तथा 75° 4' पूर्व में मन्दसौर से 25 कि. मी. दूर स्थित ।
8. गरोठ 24° 19' उत्तर तथा 75° 38' पूर्व में सीतामऊ से 75 कि. मी. दूर स्थित ।
9. गजेटियर., पृ. 1; सीतामऊ राज्य का इतिहास, डा. शिवदत्तदान बारहठ कृत पृ. 3।
10. गजेटियर., पृ. 3; सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 4 ।
11. आइन–ए–अकबरी (अं. अ.), भाग 2, पृ. 208; सीतामऊ., पृ. 4।
12. शाहजहाँ के हिन्दू मनसबदार, डा. मनोहरसिंह राणावत कृत, पृ. 8 ।
13. शाहजहाँनामा, मुंशी देवीप्रसाद कृत सं. डा. रघुबीरसिंह एवं डा. मनोहरसिंह राणावत, पृ. 95 ।
14. शाहजहाँनामा., पृ. 95; जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ. 129; मारवाड़, पृ. 415 ।
15. रतलाम का प्रथम राज्य, डा. रघुबीरसिंह कृत, पृ. 95; मार्च–अप्रेल, 1956 ई. में पृथ्वीराज राठौड़ की मृत्यु हो जाने के कारण रतलाम का परगना खालसा हो गया था ।
16. रतलाम., पृ. 295; सीतामऊ राज्य., पृ. 6–12 ।
17. रतलाम., पृ. 320–329 ।
18. जयपुर अखबारात (औरंगजेब), पृ. 28–37, 95–96 ।
19. रतलाम., पृ. 329, 30 ।
20. केशवदास ने धार परगने में बगड़ी और बाकली गॉव अपने कर्मचारियों को जागीर में दिये थे, जिससे अनुमान होता है कि केशवदास को धार परगने का कुछ प्रदेश जागीर में मिला होगा। रतलाम., पृ. 332 ।

21. रतलाम., पृ. 331 ।
22. किशनगढ़ का तत्कालीन शासक ।
23. रतलाम., पृ. 332 ।
24. रतलाम., पृ. 332, 333; यह गाँवों का परवाना केशवदास के 1629 ई. के मनसब के सिलसिले में ही दिया गया था । फु. नो. 32 ।
25. रतलाम., पृ. 335 ।
26. रतलाम., पृ. 335–36; मालवा के फारसी अभिलेखों का विवरणात्मक सूची पत्र, डा. मनोहरसिंह राणावत कृत, पृ. 103; अखबारात औरंगजेब, सन् 45, पृ. 220–221; सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 21 ।
27. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 37 ।
28. गुरां निर्भयसिंह संग्रह ग्रंथ 16, पत्र 51 अ; सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 5; सीतामऊ., पृ. 39 ।
29. गुरा निर्भयसिंह संग्रह ग्रंथ 16, पत्र 51 अ; बड़वा रतन की पौथी ने यह तिथि सितम्बर 1748 ई. दी है; सीतामऊ., पृ. 50 ।
30. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 5; सीतामऊ., पृ. 57 ।
31. शोध साधना वर्ष 1983, अंक 4, पृ. 51–52; सीतामऊ., पृ. 63 ।
32. सीतामऊ ख्यात, राणीमंगा, पृ. 144, कुल गुरु, पृ. 164; दस्तावेजी बही न. 1, पत्र 84 ब ।
33. सीतामऊ., पृ. 63 ।
34. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 6 ।
35. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 6; सीतामऊ., पृ. 73 ।
36. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 6; सीतामऊ., पृ. 74 ।
37. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 6–7 ।
38. नटनागर विनोद, भूमिका, पृ. 8 ।
39. हमारा राजघराना, पृ. 38–39 ।

21. रतलाम., पृ. 331 ।
22. किशनगढ़ का तत्कालीन शासक ।
23. रतलाम., पृ. 332 ।
24. रतलाम., पृ. 332, 333; यह गाँवों का परवाना केशवदास के 1629 ई. के मनसब के सिलसिले में ही दिया गया था । फु. नो. 32 ।
25. रतलाम., पृ. 335 ।
26. रतलाम., पृ. 335–36; मालवा के फारसी अभिलेखों का विवरणात्मक सूची पत्र, डा. मनोहरसिंह राणावत कृत, पृ. 103; अखबारात औरंगजेब, सन् 45, पृ. 220–221; सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 21 ।
27. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 37 ।
28. गुरां निर्भयसिंह संग्रह ग्रंथ 16, पत्र 51 अ; सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 5; सीतामऊ., पृ. 39 ।
29. गुरा निर्भयसिंह संग्रह ग्रंथ 16, पत्र 51 अ; बड़वा रतन की पौथी ने यह तिथि सितम्बर 1748 ई. दी है; सीतामऊ., पृ. 50 ।
30. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 5; सीतामऊ., पृ. 57 ।
31. शोध साधना वर्ष 1983, अंक 4, पृ. 51–52; सीतामऊ., पृ. 63।
32. सीतामऊ ख्यात, राणीमंगा, पृ. 144, कुल गुरु, पृ. 164; दस्तावेजी बही न. 1, पत्र 84 ब ।
33. सीतामऊ., पृ. 63 ।
34. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 6 ।
35. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 6; सीतामऊ., पृ. 73 ।
36. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 6; सीतामऊ., पृ. 74 ।
37. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 6–7 ।
38. नटनागर विनोद, भूमिका, पृ. 8 ।
39. हमारा राजघराना, पृ. 38–39 ।

40. हमारा राजघराना, पृ. 39 ।
41. नटनागर विनोद ग्रंथ पहले वेंकटेश्वर प्रेस ने प्रकाशित किया उसके पश्चात पं. कृष्ण बिहारी मिश्र द्वारा सम्पादित किया गया जिसे 1935 ई. में प्रयाग ने प्रकाशित किया ।
42. यह ग्रंथ उर्दू में है तथा श्री नटनागर शोध संस्थान में संग्रहीत है।
43. हमारा राजघराना, पृ. 39 ।
44. नटनागर विनोद, पृ. 60 ।
45. सीतामऊ शिलालेख, पृ. 41–42; सीतामऊ., पृ. 90–91 ।
46. सीतमाऊ शिलालेख, पृ. 20, 26, 27, 83, 84; सीतामऊ., पृ. 91।
47. महाराजकुमार श्री रतनसिंह 'नटनागर' के उपनाम से स्थापित श्री नटनागर शोध संस्थान भारत का ही नहीं अपितु विश्व के लिए इतिहास और संस्कृति के शोधार्थियों तथा विद्वानों के लिए तीर्थ स्थान है।
48. मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, भूमिका से उद्धृत ।
49. महिदपुर 23^{0} 29^{1} उत्तर तथा 75^{0} 39^{1} पूर्व में उज्जैन से 45 मील उत्तर में क्षिप्रा नदी के किनारे पर स्थित ।
50. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 82; मालवा के महान विद्रोह., भूमिका ।
51. मिर्जा वजीरबेग का पत्र, जून 23, 1857 ई.; मालवा के महान विद्रोह., पृ. 29–30 ।
52. मिर्जा वजीरबेग का पत्र जून 23, 1857 ई.; मालवा के महान विद्रोह, पृ. 30, 158 ।
53. मिर्जा वजीरबेग का पत्र सितम्बर 2, 1857; मालवा के महान विद्रोह., पृ. 106 ।
54. तारीखे मालवा (अनु.), पृ. 3057; तारीखे जावरा (अनु.), पृ. 60।
55. तारीखे मालवा (अनु.), पृ. 3058 ।
56. केशव. अभि., बस्ता नं, 115, पत्र 43, नाहरगढ़ से पहाड़सिंह

का लाला हुलासराय का पत्र, भाद्रपद वदि 10 तथा भाद्रपद सुदि 7, 1914 वि.; मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, भूमिका ।

57. मिर्जा वजीरबेग का पत्र, सितम्बर 14, 1857 ई.; मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, पृ. 110।

58. मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, भूमिका ।

59. मिर्जा वजीरबेग का पत्र, दिसम्बर 8, 1857; मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, पृ. 138 ।

60. मिर्जा वजीरबेग का पत्र, सितम्बर 2, 1857; मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, पृ. 179 ।

61. मिर्जा वजीरबेग का पत्र, जुलाई 29, 1857; मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, पृ. 179 ।

62. मिर्जा वजीरबेग का पत्र, जुलाई 29, 1857; मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, पृ. 87 ।

63. मिर्जा वजीरबेग का पत्र, जुलाई 29, 1857; मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, पृ. 87 ।

64. तारीखे मालवा (अनु.), पृ. 3067; तारीखे जावरा (अनु.), पृ. 67।

65. तारीखे जावरा (अनु.), पृ. 67; तारीखे मालवा (अनु.), पृ. 3067।

66. तारीखे जावरा (अनु.), पृ. 67–68; तारीखे मालवा (अनु.), पृ. 3067।

67. बाबा आप्टे साहब का पूरा नाम राव राजे हरिनारायण आप्टे था। इन्हें शमशेर बहादुर की उपाधि मिली हुई थी। यह ग्वालियर राज्य के मालवा क्षेत्र के सरसूबे के पद पर नियुक्त था।

68. ताल 24° 43' उत्तर तथा 75° 23' पूर्व में जावरा से 18 मील पूर्व–उत्तर–पूर्व में जावरा राज्य का महत्त्वपूर्ण कस्बा ।

69. तारीखे जावरा (अनु.), पृ. 68–69 ।

70. तारीखे मालवा (अनु.), पृ. 3067; मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, पृ. 144 फु.नो. 3 पर लिखा है कि रहीमबख्श नामक

विद्रोही को सीतामऊ राज्य से रुपये वसूल करने हेतु भेजा था। सीतामऊ राज्य के व्यापारियों ने कुछ रुपया देकर उसे लौटा दिया।

71. मिर्जा वजीरबेग का पत्र, दिसम्बर 12, 14, 1857 ई.; मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, पृ. 144, 147 ।

72. बादशाह गिरहा, पृ. 20 ।

73. सीतामऊ., 95 ।

74. सीतामऊ., पृ. 102 ।

75 सीतामऊ., पृ. 103 ।

76. एचिसन, ट्रिटीज, भाग 4, पृ. 260 ।

77. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 7; सीतामऊ राज्य., पृ. 117 ।

78. सीतामऊ–लदूना शिलालेख, पृ. 8; सीतामऊ., पृ. 132 ।

79. सीतामऊ ख्यात, राणीमंगा, पृ. 147; कुलगुरु., पृ. 189; बड़वा रामदयाल, पृ. 106 ।

80. सीतामऊ एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट, 1907–08 ई., पृ. 14–15 ।

81. महारानी सरसकुंवर की स्मृति में इस विद्यालय की स्थापना राजा रामसिंह द्वारा की गयी थी । हमारा राजघराना, पृ. 52 ।

82. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 158 ।

83. 1946–47 ई. का सीतामऊ राज्य का बजट; सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 159 ।

84. हमारा राजघराना ।

85. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट, 1905–06, पृ. 3 ।

86. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 151 ।

87. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट, 19395–40, पृ. 25–26 ।

88. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट, 1910–11, पृ. 9 ।

89. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट, 1910–11, पृ. 9 ।

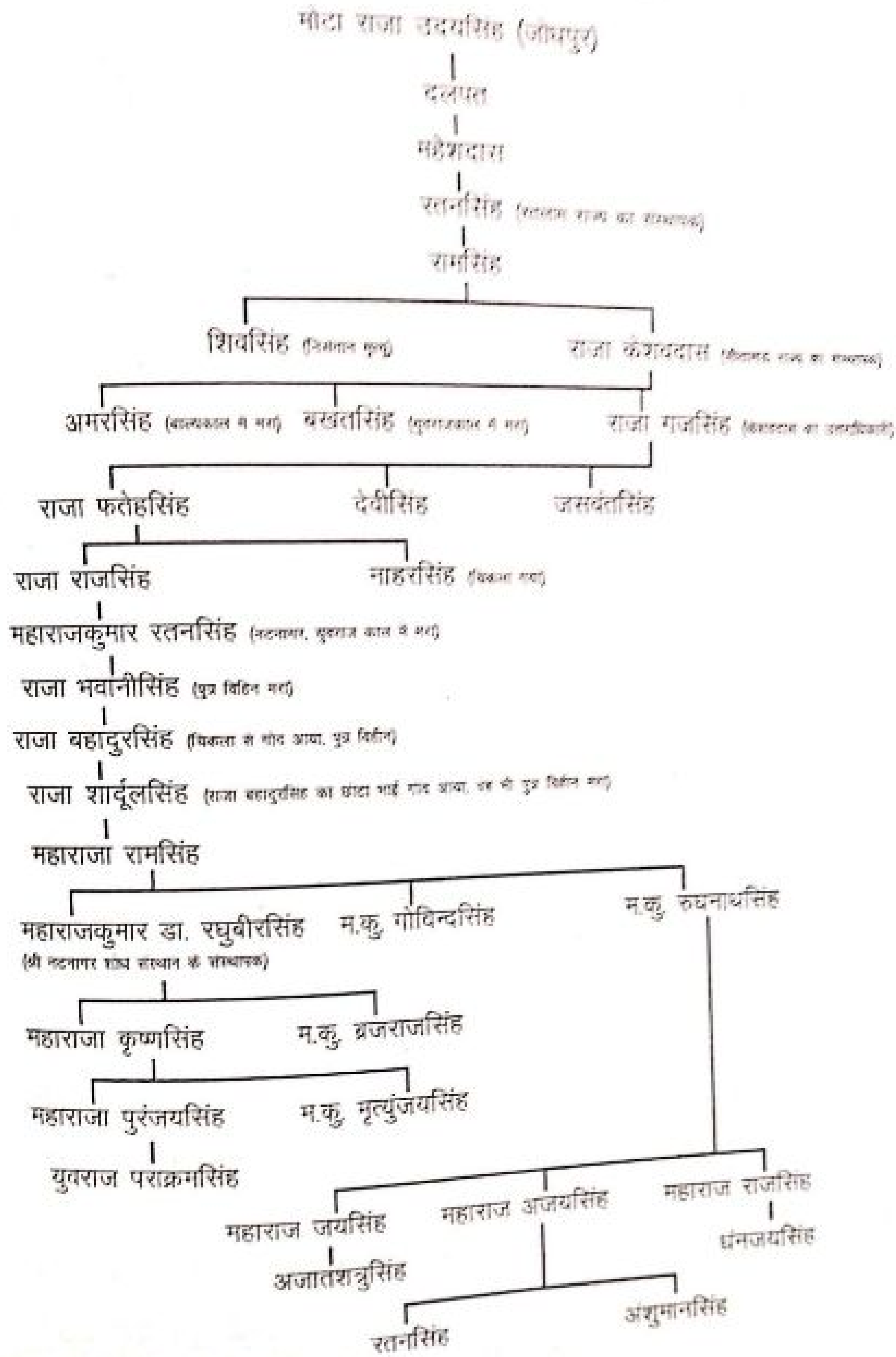
90. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 156 ।

91. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 153 ।

92. सीतामऊ स्टेट गजेटियर, 1908, पृ. 23; सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 160–161 ।
93. यूरोपियन व अंग्रेजी सरकार के कर्मचारियों के वाद निपटाने के अधिकार इस अवसर पर राजा रामसिंह को प्राप्त नहीं हुए थे । सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 161 ।
94. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 160 ।
95. उपरोक्त, पृ. 162 ।
96. सीतामऊ राज्य का शासन विधान, दिसम्बर 1938 ई.; सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 163 ।
97. सीतामऊ राज्य का शासन विधान, दिसम्बर 1938 ई. ।
98. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 164 ।
99. सीतामऊ राज्य का शासन विधान, दिसम्बर 1939 ई.; सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 165।
100. सीतामऊ., पृ. 175 ।
101. श्री नटनागर शोध संस्थान के संस्थापक । इनका संक्षिप्त परिचय आगे दिया जायगा।
102. गोपाल शरणसिंह प्रसिद्ध साहित्यकार थे जिनके मूल पत्र श्री नटनागर शोध संस्थान में संग्रहीत है।
103. महाराज रुघनाथसिंह से आगे का पूरा विवरण श्रीमान् राजसिंह साहब से भेंटवार्ता के आधार पर किया।
104. सीतामऊ ख्यातें., बड़वा रेवत पत्र 82, बड़वा शिवनाथ एवं रामदयाल, पत्र 106, जयसिंह, पृ. 122।
105. सीतामऊ ख्यातें., जयसिंह की पोथी, पृ. 122।
106. डा. रघुबीरसिंह स्मृति ग्रंथ, पृ. 1–9, सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 176।
107. भारतीय साहित्य के निर्माता, डा. रघुबीरसिंह, डा. अशोककुमार सिंह।

108. इतिहासकार और साहित्यकार रघुबीरसिंह, डा. अशोककुमार सिंह, पृ. 2–3 ।
109. सरस्वती, मई 1934 ई., पृ. 464–69 ।
110. माधुरी, वर्ष 17, खण्ड 2, 1939 ई. ।
111. चाँद, 1928 ई., पृ. 59–75 ।
112. फरवरी–जुलाई 1928 ई., पृ. 179–183, 315–20, अगस्त–जनवरी 1930–31, पृ. 450–63, 1931 ई., पृ. 10–17, अगस्त--जनवरी 1932–33, पृ. 867–77 ।
113. सीतामऊ राज्य का शासन संबंधी वार्षिक कार्य विवरण 1 जुलाई, 1939 ई. से 30 जून, 1940 ई., पृ. 5, स्मृति ग्रंथ, पृ. 1–9 ।
114. स्मृति ग्रंथ, पृ. 6, शोध साधना, 1991 ई. पृ. VII (सम्पादकीय)
115. स्मृति ग्रंथ, पृ. 7, शोध साधना, 1991 ई. पृ. VII (सम्पादकीय)
116. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 177, स्मृति ग्रंथ, पृ. 2 ।
117. सीतामऊ राज्य का शासन संबंधी वार्षिक कार्य विवरण, पृ. 5 ।
118. स्मृति ग्रंथ., पृ. 7–8 ।
119. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 177; स्मृति ग्रंथ, पृ. 2 ।
120. पूर्व आधुनिक राजस्थान, भूमिका ।
121. सीतामऊ राज्य का शासन संबंधी वार्षिक कार्य विवरण, पृ. 5 ।
122. सीतामऊ राज्य का इतिहास, पृ. 175 ।
123. शोध साधना, 1991 ई. पृ. VI, VII (सम्पादकीय), स्मृति ग्रंथ, पृ. 9 ।

सीतामऊ राज्य का वंश वृक्ष



3. सैलाना राज्य का संक्षिप्त इतिहास

रतलाम राज्य के संस्थापक जोधपुर के राठौड़ घराने के वंशज थे। रतलाम के संस्थापक रतनसिंह के बारह पुत्र थे ।[1] सैलाना के वंशधर उसके पुत्र छत्रसाल के वंशज हैं ।[2] छत्रसाल का तीसरा पुत्र प्रतापसिंह था। उसका बड़ा भाई केसरीसिंह जो कि छत्रसाल का दूसरा पुत्र था रतलाम के द्वितीय राज्य के संस्थापक उसी के वंशधर थे ।[3] प्रतापसिंह पुत्र विहीन मरा था, अतः उसने केसरीसिंह के दूसरे पुत्र जयसिंह को गोद लिया ।[4] प्रतापसिंह उस समय तक रतलाम के अन्तर्गत रावटी का जागीरदार था। प्रतापसिंह द्वारा जयसिंह को गोद लेने के पश्चात प्रतापसिंह ने अपने भाई केसरीसिंह को मार डाला । अतः अपने पिता की मौत का बदला लेने के लिये जयसिंह ने प्रतापसिंह से युद्ध किया। सागोद में दोनों सेनाओं के मध्य युद्ध हुआ ।[5] जिसमें प्रतापसिंह की हार हुई और प्रतापसिंह मारा गया ।[6] उसी दौरान जयसिंह का रतलाम पर अधिकार हो गया था क्योंकि रतलाम का स्वामी मानसिंह राठौड़ उस समय दिल्ली में था। तदनन्तर दिल्ली से मानसिंह को बुलाकर रतलाम पुनः उसे लौटा दिया गया। तब जयसिंह अपनी राजधानी रावटी से सैलाना ले आया। और इस प्रकार सैलाना के नवीन राठौड़ राज्य की नींव पड़ी ।[7]

जयसिंह के शासनकाल में झाबुआ राज्य से विवाद चला जिसके तहत जयसिंह ने झाबुआ पर अपना अधिकार कर लिया । परन्तु आपसी समझौते से समस्या का समाधान होने पर जयसिंह ने झाबुआ पर से पुनः अपना अधिकार हटा लिया ।[8]

जयसिंह का निधन वि.सं. 1814 में हुआ।[9] जयसिंह के चार विवाह करने का उल्लेख मिलता है। जिनसे उसके सात पुत्र देवीसिंह[10] दौलतसिंह[11] जसवन्तसिंह, सामंतसिंह, अजबसिंह, जोधसिंह, गोपालसिंह तथा तीन पुत्रियाँ कुशलकुंवर[12], उम्मेदकुंवर[13], अेजनकुंवर[14] हुई थी ।

जयसिंह की मृत्युपरान्त उसका तीसरा पुत्र जसवन्तसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ । जसवन्तसिंह के शासनकाल में कोई विशेष राजनैतिक गतिविधि संचालित हुई हो, इसकी जानकारी नहीं मिलती है । जसवंतसिंह ने दो विवाह किये ।[15] उसके एक पुत्र विजयसिंह तथा एक पुत्री गंगाकुंवर[16] होने का उल्लेख मिलता है। गुरां निर्भयसिंह संग्रह ग्रंथ 3 में उल्लेख मिलता है कि विजयसिंह ने सात फेरों की सात मोहरे अपने गुरु को दी तथा अपने वंश का नामा लिखवाया।[17] परन्तु इस ग्रंथ में विजयसिंह की अन्य गतिविधियों पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। क्योंकि सभी प्राप्त ग्रंथों से जानकारी मिलती है कि जसवंतसिंह की मृत्युपरान्त उसका भाई अजबसिंह सैलाना का शासक बना ।[18] अजबसिंह द्वारा तीन विवाह करने का उल्लेख मिलता है। जिनसे 6 पुत्र मोहकमसिंह, भोपतसिंह, रुघनाथसिंह, छत्रसिंह, गुमानसिंह तथा बुधसिंह होने का उल्लेख मिलता है, साथ ही उसके दो पुत्रियाँ अेजनकुंवर तथा भागकुंवर[19] भी थीं।

अजबसिंह की मृत्युपरान्त उसका पुत्र मोहकमसिंह सैलाना की राजगद्दी पर बैठा। मोहकमसिंह ने चार विवाह किये। उसके एक पुत्र लक्ष्मणसिंह हुआ। मोहकमसिंह का निधन वि.सं. 1857 (1800 ई.) में हुआ।[21] उसका उत्तराधिकारी लक्ष्मणसिंह हुआ। उस दौरान मालवा में मराठों का आतंक प्रारम्भ हो चुका था । उस आतंक से सैलाना राज्य भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहा । लक्ष्मणसिंह के शासनकाल (1797–1826 ई.) में जान मालकम ने मालवा की शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिये नयी व्यवस्था कायम की ।[22] उस समय सैलाना के शासन प्रबंध पर दौलतराव सिंधिया का काफी दखल था। तब 1819 ई. में राजा लक्ष्मणसिंह एवं दौलतराव सिंधिया के मध्य हुए समझौते के तहत 42000 रु. (सालिमशाही) प्रति वर्ष सैलाना के शासक ने दौलतराव सिंधिया को देना तय किया जिसके बदले में दौलतराव सिंधिया ने सैलाना राज्य के शासन प्रबंध पर से अपना प्रभाव हटा लिया ।[23] 1860 ई. के पश्चात् यह राशि सिंधिया के स्थान पर ब्रिटिश शासन ने लेना प्रारम्भ कर दी ।[24]

राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा तीन विवाह करने का उल्लेख मिलता है जिनसे एक पुत्र रतनसिंह तथा तीन पुत्रियाँ दौलतकुंवर[25] फतेहकुंवर[26] तथा विजयकुंवर[27] हुईं ।[28]

लक्ष्मणसिंह का निधन वि.सं. 1882 श्रावण शुदि 9 को[29] हुआ। उसकी मृत्युपरान्त उसका पुत्र रतनसिंह सैलाना का शासक बना। रतनसिंह के शासनकाल की किसी राजनैतिक गतिविधि की जानकारी नहीं मलती है। रतनसिंह ने दो विवाह किये थे । दोनों ही विवाह से उसके कोई संतान नहीं थी ।[30] रतनसिंह की दूसरी पत्नी नाथकुंवर द्वारा सैलाना में द्वारकाधीश के मन्दिर का निर्माण करवाया गया था।[31]

रतनसिंह संतान विहीन मरा था। अतः उसकी मृत्युपरान्त उसका काका नाहरसिंह[32] सैलाना का शासक बना। गद्दीनशीनी के समय उसकी उम्र 50 वर्ष की थी । उसके शासनकाल में रतलाम राज्य को दिया जाने वाला सायर तीसरे हिस्से से घटाकर सातवां हिस्सा कर दिया था ।[33]

राजा नाहरसिंह ने दो विवाह किये थे । उसके दो पुत्र सालमसिंह तथा तखतसिंह तथा दो पुत्रियाँ मानकुंवर[34] तथा जसकुंवर[35] थीं। नाहरसिंह का निधन वि.सं. 1898 भादवा शुदि 7 सोमवार[36] के दिन हुआ था ।[37] उसका उत्तराधिकारी तखतसिंह हुआ । उसकी गद्दीनशीनी वि.सं. 1898 आश्विन बदि 2, रविवार[38] को हुई ।

राजा तखतसिंह ने चार विवाह किये थे। उसके एक पुत्र दुलेसिंह था, जिसका जन्म वि.सं. 1898 वैशाख शुदि 8, बुधवार[39] को हुआ था। तखतसिंह का निधन वि.सं. 1907 भादवा शुदि 7 गुरुवार[40] को हुआ। तखतसिंह का उत्तराधिकारी दुलेसिंह हुआ।[41] गद्दीनशीनी के समय दुलेसिंह की उम्र मात्र दस वर्ष की थी। अतः रतनसिंह की विधवा नाथकुंवर जो उस समय राजमाता के पद पर थी, के संरक्षकत्व में रियासत का सम्पूर्ण प्रशासन ब्रिटिश सरकार की देखरेख में होने लगा।[42] 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में मन्दसौर में हुए क्रांतिकारी आन्दोलन को दबाने के

लिये सैलाना ने ब्रिटिश सरकार की सहायतार्थ सेना भेजी थी जिससे प्रसन्न होकर सरकार ने दुलेसिंह को खास खरीता एवं खिलअत प्रदान की थी।[43] साथ ही 1859 ई. में दुलेसिंह को सम्पूर्ण राज्याधिकार ब्रिटिश शासन द्वारा दे दिये गये।[44] 1864 ई. में राजा दुलेसिंह ने सैलाना राज्य में निकलने वाली रेलवे लाईन हेतु बिना मूल्य भूमि प्रदान की तथा 1891 ई. में रेलवे द्वारा अधिकृत भूमि का प्रबंध भी अंग्रेज सरकार को दे दिया।[45] 1877 ई. में दिल्ली दरबार के समय महारानी विक्टोरिया ने राजा दुलेसिंह को झण्डा भेंटस्वरूप प्रदान किया था।[46] 1881 ई. में राजा दुलेसिंह ने नमक कर हटा दिया। इसके बदले अंग्रेज सरकार ने 100 मन नमक बिना मूल्य देना निश्चित किया, परन्तु 1883 ई. में इस नमक के बदले 412 रु. 50 पैसे देना प्रारम्भ कर दिये। 1887 ई. में रतलाम राज्य के साथ हुई संधि के अनुसार 18000 सालिमशाही रुपयों की ऐवज में रतलाम नरेश ने रतलाम और सैलाना के मध्य आने जाने वाले माल पर से चुंगीकर लेना समाप्त कर दिया। अब ये चुंगी सैलाना राज्य ने वसूलना प्रारम्भ कर दी। यह रकम (18000) 1901 ई. में घटाकर 6000 रु. कलदार कर दी गयी और इसी वर्ष अफीम को छोड़कर सभी वस्तुओं पर से चुंगी हटा ली गयी।[47]

राजा दुलेसिंह का अन्तिम समय सैलाना राज्य के लिये दुर्भाग्यपूर्ण साबित हुआ। राजा दुलेसिंह अत्यधिक शराब पीने लगा, फलस्वरूप राज्य की शासन व्यवस्था शिथिल पड़ने लगी। राज्य के कर्मचारी भी राज्य से गद्दारी करने लगे। सायर के मामले में भी राज्य को पुनः हानि उठानी पड़ी। रतलाम रियासत ने सैलाना राज्य की अधिकृत भूमि में से अधिकांश पर अपना अधिकार कर लिया। नशे की लत के कारण वह राज्य प्रशासन पर बिल्कुल ध्यान नहीं दे पाता था।[48]

राजा दुलेसिंह के शासन काल में सैलाना में अनेक निर्माण कार्य करवाये गये। केदारेश्वर मंदिर, गंगा मंदिर, बद्रीनाथ का मंदिर, नागमाताजी का मंदिर, एक दिगम्बर जैन मन्दिर तथा एक श्वेताम्बर जैन मंदिर, एक

अष्टकोणीय कुण्ड तथा केदारेश्वर मंदिर के ऊपरी क्षेत्र पर एक तालाब का निर्माण उसी के शासनकाल में करवाया गया ।[49] भले ही दुलेसिंह का अन्तिम समय विलासिता में बीता हो परन्तु वह धार्मिक प्रवृत्ति का शासक था। उसके द्वारा महारुद्र यज्ञ कराने का उल्लेख भी मिलता है जिसका प्रारम्भ वि.सं. 1910 ज्येष्ठ शुदि 5 गुरुवार[50] को किया गया तथा समापन ज्येष्ठ शुदि 14[51] को हुआ ।[52]

राजा दुलेसिंह ने छः विवाह किये थे । उसके कोई पुत्र नहीं था। एक पुत्री जुहारकुंवर थी जिसका विवाह प्रतापगढ़ के दीवान उदयसिंह के साथ हुआ था ।[53]

वि.सं. 1952 कार्तिक बदि 8[54] को दुलेसिंह का निधन हुआ । वह पुत्रविहीन मरा था। अतः सेमलिया जागीर के ठाकुर भवानीसिंह के पुत्र जसवन्तसिंह को गोद लेकर सैलाना की गद्दी पर बिठाया गया ।[55]

जसवन्तसिंह का जन्म वि.सं. 1921 भादवा शुदि 2 को[56] हुआ था। जसवंतसिंह की गद्दीनशीनी वि.सं. 1952 पोष शुदि 7 सोमवार[57] को हुई। उसकी गद्दीनशीनी के समय इन्दौर से कर्नल बार सैलाना आया था तथा ब्रिटिश सरकार की तरफ से जसवन्तसिंह को राज्य के अधिकार तथा 'खिलअत' प्रदान की थी।[58] उस अवसर पर सैलाना राज्य द्वारा कर्नल बार की खूब आवभगत की गयी थी । जसवन्तसिंह का शासनकाल सैलाना के लिये स्वर्णिम युग था। उसने गद्दी पर बैठते ही दुलेसिंह के समय हुई राज्य की क्षति एवं अव्यवस्था को सुधारना प्रारम्भ किया । राज्य आर्थिक दृष्टि से बहुत ही कमजोर हो गया था, उसने सर्वप्रथम राज्य की माली हालत को सुधारने का कार्य किया। शिक्षा के प्रसार हेतु नये विद्यालय खोले गये। ऐसे समय जबकि राज्य की चहुमुखी उन्नति हो रही थी अकाल जैसी प्राकृतिक आपदा ने सैलाना को घेर लिया । यह अकाल काफी भीषण था। परन्तु इस विपदा का राजा जसवन्तसिंह ने बड़ी कुशलता से सामना किया । उसने पीड़ित प्रजा के लिये अनेक राहत कार्य

चलाए। उसके कुशल प्रबंध से प्रसन्न होकर अंग्रेज सरकार ने उसे 'केसर-ए-हिन्द' के पदक से विभूषित किया था।[59]

आर्थिक व्यवस्था के साथ ही उसने शासन के समस्त विभागों का पुनर्गठन किया। न्याय विभाग एवं पुलिस व्यवस्था पर विशेष जोर दिया गया। साथ ही राज्य में नये औषधालय भी खोले गये।[60] सैलाना में पुस्तकालय खोला गया। अनेक निर्माण कार्य किये गये जिसके तहत मन्दिर, महल, तालाब, कुए, बावड़ी आदि बनवाये गये जिनमें जसवंत निवास और गोविन्द कुण्ड प्रमुख हैं। नयी सड़कों का निर्माण किया गया, नगर के अन्दर के पुराने रास्तों को पक्का किया गया। उद्योग एवं व्यापार के सुधार हेतु नये प्रयास किये गये।[61]

राजा जसवन्तसिंह क्षत्रिय उपकारिणी महासभा का पहले जनरल सेक्रेटरी तथा बाद में सभापति के पद पर रहा। उसकी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण भारत धर्म महामण्डल ने उसे 'भारतधर्मेन्दु' की उपाधि प्रदान की थी। 24 जून, 1904 ई. को ब्रिटिश सरकार द्वारा उसे के.सी.आई.ई. की पदवी प्रदान की गयी।[62]

राजा जसवन्तसिंह ने दो विवाह किये। उसके छः पुत्रों का उल्लेख मिलता है। दिलीपसिंह, भारतसिंह[63], शिवसिंह[64], रामचन्द्रसिंह[65], कृष्णचन्द्रसिंह[66], अजातशत्रु[67] तथा तीन पुत्रियाँ देवेन्द्रकुंवर[68], शिवकुंवर[69] तथा लक्ष्मीकुंवर[70]।

राजा जसवन्तसिंह का निधन हृदयगति रुकने के कारण 13 जुलाई, 1919 ई. को सैलाना में ही हुआ।[71] उसकी मृत्युपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र दिलीपसिंह सैलाना का स्वामी हुआ। उसका राज्याभिषेक 24 जुलाई, 1919 ई. को हुआ।

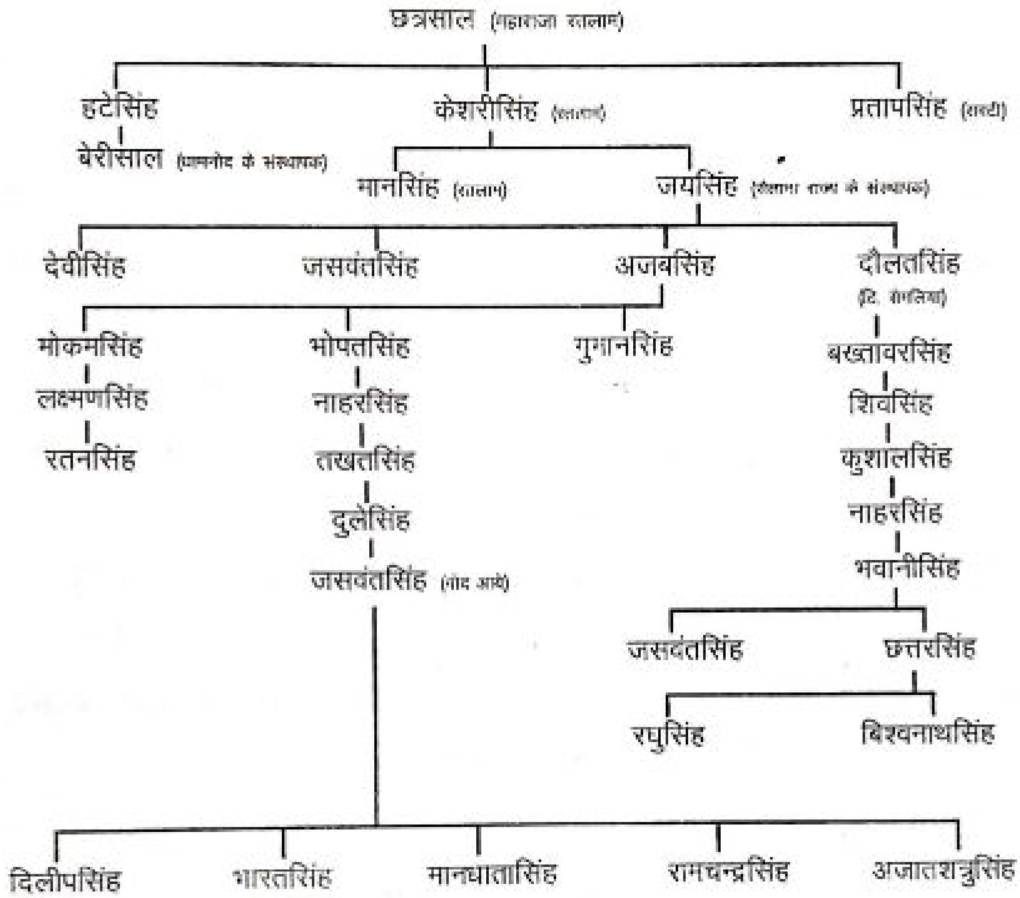
संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. रतलाम., पृ. 133–135 ।
2. उपरोक्त, पृ. 283 ।
3. भारत के प्राचीन राजवंश, पृ. 416 ।
4. रतलाम., पृ. 283–84 ।
5. मध्यभारत जनपदीय., पृ. 329–330 ।
6. मध्यभारत जनपदीय., पृ. 330; भारत के प्राचीन राजवंश, रेउ कृत, पृ. 416 ।
7. उपरोक्त ।
8. मध्यभारत जनपदीय., पृ. 330; भारत के प्राचीन., पृ. 416 ।
9. मध्यभारत जनपदीय., पृ. 330 ।
10. कुंवरपदे में मरा ।
11. ठिकाना सेमल्या का स्वामी बना ।
12. इसका विवाह सलूम्बर में हुआ था ।
13. इसका विवाह बागोर के स्वामी नाथजी के साथ हुआ था ।
14. इसका विवाह देवलिया के दीवान सालमसिंह से हुआ था ।
15. गुरां निर्भयसिंह संग्रह, ग्रंथ 3, पत्र 95 अ ।
16. इसका विवाह वास वाले से हुआ था ।
17. गुरां. 3, पत्र 95 अ ।
18. गुरां. 3, पत्र 95 अ ।
19. इसका विवाह आमेट के रावत प्रतापसिंह से हुआ था ।
20. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 95 ब ।
21. उपरोक्त ।
22. सेण्ट्रल इण्डिया, जॉन मालकम कृत, II, पृ. 206–344 ।
23. सैलाना स्टेट गजेटियर, पृ. 3–4 ।
24. गजेटियर., पृ. 4 ।

25. इसका विवाह कोठारिया राव जोधसिंह के साथ हुआ था ।
26. इसका विवाह सलूम्बर राव पद्मसिंह से हुआ था ।
27. इसका विवाह भदेसर राव हम्मीरसिंह से हुआ था ।
28. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 95 ब ।
29. रविवार, 24 जुलाई, 1825 ई. ।
30. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 95 ब ।
31. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 95 ब ।
32. देवराणा के भोपत का पुत्र था ।
33. मध्यभारत जनपदीय., पृ. 331; भारत के प्राचीन राजवंश, पृ. 418।
34. इसका विवाह कुरावड़ राव लक्ष्मणसिंह से हुआ ।
35. इसका विवाह बेदला राव बखतसिंह से हुआ ।
36. सोमवार, 23 अगस्त 1841 ई. ।
37. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 96 अ ।
38. अक्टूबर 3, 1841 ई. ।
39. बुधवार 28 अप्रेल, 1841 ई. ।
40. गुरुवार 12 सितम्बर, 1850 ई. ।
41. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 96 अ, 97 अ; गजेटियर., पृ. 4; भारत के प्राचीन राजवंश, पृ. 418, 419; मध्य भारत., पृ. 331 ।
42. गजेटियर., पृ. 4 ।
43. गजेटियर., पृ. 4; भारत के प्राचीन राजवंश, पृ. 419 ।
44. गजेटियर., पृ. 4 ।
45. भारत के प्राचीन., पृ. 419 ।
46. गजेटियर., पृ. 4 ।
47. गजेटियर., पृ. 4–5; भारत के प्राचीन., पृ. 419–20; मध्यभारत., पृ. 331 ।
48. मध्यभारत जनपदीय., पृ. 331–32
49. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 96 अ ।

50. 1916 की ज्येष्ठ शुदि 16 को गुरुवार न होकर रविवार आता है। (रविवार 5 जून, 1859 ई.)
51. मंगलवार, 14 जून, 1859 ई. ।
52. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 97 ब ।
53. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 96 अ ।
54. शुक्रवार, 11 अक्टूबर, 1895 ई. ।
55. गुरा. ग्रंथ 3, पत्र 96 अ; गजेटियर., पृ., 4–5, भारत के प्राचीन राजवंश, पृ. 420 ।
56. शनिवार, 3 सितम्बर, 1864 ई. ।
57. सोमवार, 23 दिसम्बर, 1895 ई. ।
58. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 97 ब ।
59. गजेटियर., पृ. 4–5; भारत के प्राचीन., पृ. 420–21 ।
60. मध्यभारत जनपदीय., पृ. 332–33 ।
61. मध्यभारत जनपदीय., पृ. 333 ।
62. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 99 अ ।
63. मुलथान गोद गया ।
64. रावटी एवं करमदी गाँव भाई बांट में प्राप्त हुए ।
65. गाँव कोठारिया एवं तीतरी का स्वामी हुआ ।
66. इसे भाई बांट में बोराणा तथा कारोदा गाँव मिले थे । इसकी मृत्यु युवावस्था में ही हो गयी थी।
67. इसे भाई बांट में अडवाणियाँ, गोरधनपुरा, जसनगर तथा भराड़ा गाँव प्राप्त हुए थे ।
68. इसका विवाह डूंगरपुर महारावल विजयसिंह से हुआ था ।
69. इसका विवाह नरसिंहगढ़ महाराजा अर्जुनसिंह से हुआ था ।
70. इसका विवाह खिलचीपुर के दुर्जनसाल से हुआ था ।
71. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 99 ब ।

सैलाना राज्य का वंश वृक्ष



4. अमझेरा राज्य का संक्षिप्त इतिहास

मालवा के विन्ध्य की तलहटी में 22° 34′ उत्तर, 75° 10′ पूर्व में धार से 12 मील पश्चिम में अमझेरा स्थित है । अकबर के समय अमझेरा सूबा मालवा सरकार माण्डू का एक परगना था और उसका राजस्व रुपये 9885.00 था । इसके उत्तर–दक्षिण और पूर्व में इन्दौर तथा पश्चिम में धार राज्य स्थित था। 1901 ई. में अमझेरा परगना की जनसंख्या 67512 थी और परगने में कुल 321 गाँव थे । 1901 ई. में 94704 वर्ग मील का क्षेत्र था और इस परगने का मुख्यालय अमझेरा था । वहाँ की वार्षिक आय 80 हजार रुपये थी । वर्तमान में अमझेरा धार जिले की सरदारपुर तहसील में स्थित है। समुद्र सतह से इसकी ऊँचाई 1200 फीट है । यह नगर विन्ध्यांचल पर्वत के उत्तर में बसा हुआ है । इसके पूर्व में चम्बल, पश्चिम में माही एवं चुनार तथा दक्षिण में नर्मदा नदी बहती है । इसके उत्तर की ओर मालवा का पठार है ।[1] यह वनवासी बहुल क्षेत्र है ।

अमझेरा का प्राचीन नाम अम्बिकापुर और कुन्तलपुर भी बताया जाता है। इसके अतिरिक्त अमझारा, आमझारा, आम्बझारा आदि नाम भी पाये जाते हैं ।[2] मुगलकाल में यह क्षेत्र मालवा सूबा की माण्डू सरकार के आधीन था।[3] आगे चलकर जब मालवा पर मराठों का प्रभाव बढ़ा। तब इसके परिणामस्वरूप ग्वालियर, इन्दौर व धार–देवास में मराठों का राज्य स्थापित हुआ उस समय अमझेरा ग्वालियर का सहायक राज्य बन गया।[4]

अमझेरा के शासक जोधपुर की जोधा रामोत राठौड़ शाखा के थे।[5] यहाँ जोधा राठौड़ों के शासन का प्रारम्भ राव मालदेव के ज्येष्ठ पुत्र राव राम के वंशजों द्वारा स्थापित किया गया था। अतः अमझेरा राज्य का मूल पुरुष राव राम था।[6]

राम का जन्म जोधपुर के शासक राव मालदेव की कछवाही रानी लाछलदे की कोख से वि.सं. 1586 (1529 ई.) को हुआ था।[7] राव मालदेव का

अपनी झाली रानी स्वरूपदे पर विशेष अनुग्रह था। अतः उसके प्रभाव से उसने राव राम को ज्येष्ठ होते हुए भी उत्तराधिकार से वंचित रखा तथा झाली रानी के दूसरे पुत्र चन्द्रसेन को अपना उत्तराधिकारी बनाया ।[8] राम इसे सह नहीं सका और उसने षड़यंत्र द्वारा अपने पिता को बन्दी बनाकर राज्य पर अधिकार करना चाहा। परन्तु पृथ्वीराज जेतावत ने राव मालदेव को इसकी सूचना दे दी । अतः राव मालदेव ने राम को देश निकाला दे दिया ।[9] वि.सं. 1619 कार्तिक शुदि 12, नवम्बर 7, 1562 ई., शनिवार को राव मालदेव का निधन हो गया ।[10] मालदेव की मृत्युपरान्त जोधपुर में जो ग्रहकलह प्रारम्भ हुआ वह जोधपुर पर शाही अधिकार होने पर ही समाप्त हुआ।[11] राम सोजत में ही रहा और वहीं 23 मई, 1574 ई. को उसका निधन हुआ ।[12] उसके नौ पुत्र थे – करण, कल्ला, केशवदास, पूरणमल, भोपत, नारायणदास, राघोदास, महेशदास और किशनदास।[13]

राम की मृत्युपरान्त उसका दूसरा पुत्र कल्ला सोजत का स्वामी हुआ । इसके समय में सोजत पर शाही आक्रमण हुआ परन्तु कल्ला भाग निकला और कुछ समय पश्चात् उसने शाही अधीनता स्वीकार कर ली।[14]

फरवरी, 1578 ई. को नाडोल के थानेदार शेख बुरहान ने धोखे से राव कल्ला की हत्या करवा दी ।[15] कल्ला के चार पुत्र थे – जसवंतसिंह, नारायणदास, तेजसिंह और मानसिंह ।[16] कल्ला का उत्तराधिकारी जसवंतसिंह हुआ । जसवंतसिंह मालवा में आकर रहा ।[17] इसके मालवा में आने के कारणों की पुष्टि ऐतिहासिक ग्रंथों में नहीं होती । परन्तु इसके द्वारा 1669 वि.सं. में ईश्वरदास दधवाड़िया को खेड़ली गाँव सांसण में देने का उल्लेख मिलता है ।[18] सुणोला राजपूतों के साथ लड़ाई में जसवंतसिंह मारा गया।[19] जसवन्तसिंह के छः पुत्र थे – जगन्नाथ, गोपीनाथ, सबलसिंह, विशनदास, नाहर खाँ और महासिंह ।[20]

जगन्नाथ अपने काका केशवदास जो कि शाही सेवक था और जिसे बादशाह अकबर ने चोली महेश्वर[21] की जागीर दी थी, के गोद गया। जगन्नाथ भी शाही सेवा में रहा । इसकी शाही सेवा से प्रसन्न

होकर बादशाह अकबर ने उसे मालवा में अमझेरा की जागीर दी थी।[22]

बादशाह शाहजहाँ ने जगन्नाथ को राय (राव) की पदवी दी थी। उसका मनसब 800 जात 400 सवार का था ।[23] शाहजहाँ द्वारा खानेजहाँ लोदी के विद्रोह को दबाने के अभियान के दौरान राव जगन्नाथ गंभीर रूप से जख्मी हुआ और कुछ समय पश्चात उसकी मृत्यु हो गयी ।[24] राव जगन्नाथ के दो पुत्र थे – केसरीसिंह और सुजानसिंह ।

यों राव जगन्नाथ द्वारा प्राप्त अन्य परगनों का क्या हुआ इसकी जानकारी ऐतिहासिक ग्रंथों में नहीं मिलती, परन्तु अमझेरा उसकी मृत्युपर्यन्त उसके अधिकार में था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र केसरीसिंह अमझेरा का स्वामी बना ।[25] वह भी शाही सेवा में रहा। शाहजहाँ के समय उसे 500 जात और 100 सवारों का मनसब प्राप्त था।[26]

राव केसरीसिंह के समय उत्तर भारत पर मराठों के हमले प्रारम्भ हो चुके थे। तब शाहजहाँ ने केसरीसिंह को मोरीगढ़ की रक्षा का भार सौंपा । तब केसरीसिंह ने अपनी माता एवं अपने भाई सुजानसिंह के साथ अपने इस दायित्व को निभाया था ।[27] मराठों के साथ मोरीगढ़ की सुरक्षार्थ लड़े गये इस युद्ध में ये तीनों ही काम आये । राव केसरीसिंह के पाँच पुत्र जुझारसिंह, कुशलसिंह, अचलसिंह, हठीसिंह और गोवर्द्धनसिंह थे ।[28]

जुझारसिंह, केसरीसिंह की मृत्यु के पश्चात उसका उत्तराधिकारी हुआ। जुझारसिंह के पाँच पुत्र हुए । सुरताणसिंह, अमरसिंह, कनकसिंह, जगरूप तथा जसरूप ।[29]

जुझारसिंह की मृत्युपरान्त उसका चौथा पुत्र जगरूप अमझेरा का शासक बना ।[30] गुरां निर्भयसिंह संग्रह के ग्रंथ 6 में जानकारी मिलती है कि वि.सं. 1772 में दंगा हुआ। तब जगरूप ने अपने छोटे भाई जयरूप[31] से कहा कि मेरा शरीर स्थूल (मोटा) है अतः मैं घोड़े पर नहीं चढ़ सकता और आगे उसने स्वयं जयरूप को अमझेरा की गादी सौंपकर स्वयं ईगणोद चला गया।[32]

वहीं डा. रघुबीरसिंह ने लिखा हैं कि अमझेरा का शासक उस समय जयरूप था। नर्मदा की घाटियों तथा वहाँ की पहाड़ियों में से विद्रोहियों एवं आक्रमणकारियों को मार भगाने में जयरूप के छोटे भाई जगरूप ने नवाजिश खाँ की सहायता की थी, फलस्वरूप उसे शाही मनसब तथा उसके सम्मान में वृद्धि की थी।[33] यों स्पष्ट है कि अमझेरा का शासक जयरूप था और जगरूप उसका छोटा भाई था।[34] उस समय अमझेरा में घोर अराजकता व्याप्त थी। सन् 1719 ई. में जगरूप ने अमझेरा पर अधिकार का प्रयत्न किया परन्तु निजाम ने उसे असफल कर दिया, परन्तु इन भाइयों की अति महत्त्वाकांक्षा के कारण अमझेरा में गृहयुद्ध चलता ही रहा और परिणामस्वरूप मराठों ने इसे अपने अधीन बना लिया और टांका भी वसूल करने लगे।[35]

जयरूप के तीन पुत्र लालसिंह, चमनसिंह और देवीसिंह हुए। जयरूप की मृत्युपरान्त लालसिंह 1718 ई. में अमझेरा की गद्दी पर बैठा।

लालसिंह के शासनकाल में अमझेरा में इतिहास प्रसिद्ध युद्ध हुआ जो अमझेरा के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। वह दौर ऐसा दौर था जिसमें मराठों का मालवा में प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था। मराठों के निरन्तर होने वाले आक्रमणों से मुगल बादशाह मुहम्मदशाह परेशान हो गया था। साथ ही मालवा पर उसकी पकड़ भी ढ़ीली होती जा रही थी। ऐसी विकट परिस्थिति में उसने आमेर के जयसिंह को मराठों पर आक्रमण करने हेतु बुलाया। परन्तु जयसिंह ने अगस्त 1728 ई. में पेशवा के वकील दादो भीमसेन को मालवा पर अधिक शक्ति से आक्रमण करने को प्रेरित किया। तब मराठों ने चिमाजी बल्लाल के नेतृत्व में उदाजी पंवार तथा मल्हारराव होल्कर ने मालवा की ओर कूच किया। नवम्बर 24, 1728 ई. को नर्मदा के दक्षिणी किनारे पर पहुँचे तथा दूसरे दिन धरमपुरी पहुँचे वहाँ से नवम्बर 26 को उत्तर की ओर बढ़ते हुए माण्डू के पास घाट चढ़कर 27 नवम्बर को नालछा में मुकाम किया।[36]

तब शाही सेना उनका सामना करने के लिये मालवा के मुगल

सूबेदार गिरधर बहादुर तथा उसके चचेरे भाई दयाबहादुर की अधीनता में आगे बढ़ी। कोटा के दुर्जनसाल हाड़ा को भी ससैन्य उनके साथ नियुक्त किया था। किन्तु दुर्जनसाल कुछ समय मालवा में रुका तदनन्तर अपनी सेना को मालवा में छोड़कर स्वयं कोटा चला गया था।[37]

गिरधर बहादुर अपनी सेना के साथ अमझेरा पहुँचा और पूरी मोर्चाबन्दी कर वहाँ सुदृढ़ स्थान पर डट गया।[38] अमझेरा से कुछ दूरी पर मराठों एवं शाही सेना में घमासान युद्ध हुआ, जिसमें शाही सेना की हार हुई तथा गिरधर बहादुर एवं दयाबहादुर दोनों मारे गये।[39] अमझेरा के पास ही अमझेरा और तिरला के बीच के मैदान में यह युद्ध हुआ। विजयोपरान्त शाही सेना को लूटने के पश्चात मराठों ने अमझेरा में मुकाम किया।[40]

लालसिंह ने अमझेरा की सुरक्षार्थ अमझेरा से लगभग 9 कि.मी. दक्षिण में लालगढ़ नामक किले का निर्माण करवाया था। लालसिंह के शासनकाल में अमझेरा में हुई किसी अन्य राजनैतिक गतिविधि की जानकारी नहीं मिलती।

लालसिंह के दो पुत्र जसवन्तसिंह तथा केसरीसिंह हुए। लालसिंह की मृत्युपरान्त जसवन्तसिंह द्वितीय अमझेरा की गद्दी पर बैठा।[41] उस समय मराठों का आतंक मालवा पर और अधिक बढ़ गया था, अतः जसवन्तसिंह को जो विरासत मिली वह बड़ी अव्यवस्थित थी। मराठों ने चारों ओर लूट मचा रखी थी। तब राजा जसवन्तसिंह ने अपने राज्य की सुरक्षार्थ सिंधिया सरकार की अधीनता स्वीकारते हुए उन्हें खिराज देना स्वीकार किया।

राजा जसवन्तसिंह के एक पुत्र सवाईसिंह हुआ। जसवन्तसिंह ने अमझेरा में तालाब की पाल पर लक्ष्मीनारायण के मन्दिर का निर्माण करवाया था। साथ ही एक अम्बा मन्दिर का जीर्णोद्धार भी करवाया था। जसवन्तसिंह का निधन 1792 ई. में हुआ।[42]

जसवन्तसिंह के निधनोपरान्त उसका पुत्र सवाईसिंह अमझेरा का

स्वामी हुआ। सवाईसिंह के भी एक पुत्र अजीतसिंह हुआ जो सवाईसिंह की मृत्युपरान्त गद्दी पर बैठा।[43] मराठों के बढ़ते आतंक के कारण राजा जसवन्तसिंह ने मराठों को खिराज देकर ग्वालियर का सहायक राज्य बनना स्वीकार कर लिया था । तब से ही अमझेरा राज्य के शासक 35000/– रुपये सालाना सिंधिया को चौथ के रूप में चुकाते आ रहे थे। उधर 19 वीं शताब्दी के दूसरे दशक में मालवा पर भी अंग्रेजों की पकड़ मजबूत होती जा रही थी । इधर निरन्तर हो रहे उपद्रवों से अमझेरा रियासत की आय में कमी होती जा रही थी इससे आर्थिक स्थिति भी बिगड़ती जा रही थी परिणाम स्वरूप मराठों की कर की राशि भी चुकाना मुश्किल हो गया था। तब अंग्रेजों की मध्यस्थता से इस विवाद को सुलझाया गया । जिसके तहत अक्टूबर 25, 1820 ई. को जान मालकम की मध्यस्थता में एक संधि महाराजा दौलतराव सिंधिया तथा अमझेरा के शासक अजीतसिंह के बीच सम्पन्न करवाई गयी । इस संधि के अनुसार 1820 ई. में 22000/– रुपये व इसके बाद प्रतिवर्ष 2000/– रुपये बढ़ाकर 1827 ई. तक 35000/– रुपये (हाली सिक्का) पूरी निर्धारित राशि अमझेरा के शासक द्वारा महाराजा दौलतराव सिंधिया के जागीरदार जयसिंह राव घाटकेसरजी को चुकाना तय हुआ ।[44] चौथ की राशि समान वार्षिक किश्तों में आधी माघ शुदि 15 और आधी ज्येष्ठ शुदि 15 को देना तय हुआ । निश्चित समयावधि में बढ़ाई गयी राशि नहीं देने पर उतनी ही मूल्य की जमीन अथवा गाँव ग्वालियर राज्य में समाहित कर लिये जावेंगे जिन्हें वापस अमझेरा को नहीं दिये जावेंगे।[45]

अजीतसिंह के एक पुत्र बख्तावरसिंह हुआ। अजीतसिंह का निधन 11 दिसम्बर, 1831 ई. को हुआ। उसकी मृत्युपरान्त बख्तावरसिंह अमझेरा की गद्दी पर बैठा।

गद्दीनशीनी के समय अमझेरा राज्य दोहरी दासता से गुजर रहा था और उस विकट परिस्थिति में बख्तावरसिंह की उम्र मात्र 7 वर्ष की थी।[46]

बख्तावरसिंह की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही स्वतंत्रता प्रेमी रही थी। परन्तु गद्दीनशीनी के समय उसे दोहरा नियन्त्रण प्राप्त हुआ था। संयोग से 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के समय अमझेरा का शासक बख्तावरसिंह ही था। अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल समय को देखकर बख्तावरसिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध निर्णायक कदम उठाकर विद्रोह का बिगुल बजा दिया।

भारतीय राजनीति में वह ऐसा दौर था जब अंग्रेजी दासत्व से ग्रसित अधिकांश भारतीय रियासतें अंग्रेजों को अपना सम्पूर्ण सहयोग देती थीं। यहाँ तक कि 1857 के विद्रोह के समय भी भारतीय क्रान्तिकारियों के विरुद्ध इन राज्यों ने अंग्रेजों का साथ दिया। परन्तु अमझेरा का शासक बख्तावरसिंह ऐसा देशभक्त शासक था जिसने क्रान्तिकारियों का साथ दिया। महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंह ने लिखा है कि – "अमझेरा के राजा बख्तावरसिंह जैसे कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः सब ही राजा महाराजाओं ने अंग्रेजों का पूरा–पूरा साथ दिया ।[47]

अजीतसिंह के पुत्र बख्तावरसिंह का जन्म 14 दिसम्बर, 1824 ई. को हुआ था और 1831 ई. में 7 वर्ष की आयु में सिंहासनारूढ़ हुआ।[48] बख्तावरसिंह को राज्योचित सभी प्रकार की शिक्षा दी गयी थी। वह घुड़सवारी में निपुण था। राज्य की आन्तरिक व्यवस्था अच्छी थी। प्रजा के साथ संबंध पारिवारिक थे। यों 1857 ई. के समय 33 वर्षीय बख्तावरसिंह का अपने राज्य और प्रजा पर पूर्ण नियंत्रण था।[49]

सन् 1818 ई. में सर जान मालकम की मध्यस्थता से अमझेरा के शासक ने सिंधिया को 35000 रुपये वार्षिक टांका देना तय किया। यों अमझेरा का शासक ग्वालियर राज्य का टांकेदार बन गया था। यह टांका राशि अधिक होने के कारण राज्य पर एक अतिरिक्त भार था जिसे भुगतान करने में अमझेरा के शासक को निरन्तर कठिनाई होती थी । सन् 1857 ई. में भी राव बख्तावरसिंह टांका की राशि का भुगतान करने की स्थिति में नहीं था और अंग्रेजों का निरन्तर दबाव था कि वह टांका की

राशि का भुगतान करे ।[50]

इसके अतिरिक्त अमझेरा से 10 मील उत्तर–पश्चिम में भोपावर में 1827 ई. में अंग्रेजों ने भोपावर पोलिटिकल एजेन्सी की स्थापना की। यहाँ पोलिटिकल एजेण्ट रहता था ।[51] भोपावर के पास ही सरदारपुर है। वर्तमान में धार जिले का तहसील मुख्यालय । यहाँ 1837 ई. में केप्टन स्टाकली ने मालवा भील पलटन की स्थापना की। 1907 ई. तक सरदारपुर मालवा भील पलटन का मुख्यालय रहा। यों अंग्रेजों ने सरदारपुर में अपनी सैनिक छावनी स्थापित कर ली थी और वहाँ पर भील सैनिक रखे गये ।[52] इस भील पलटन के खर्च के लिए अमझेरा के राजा को प्रतिवर्ष 4000 रुपये देना पड़ता था। अमझेरा का शासक बख्तावरसिंह इस अतिरिक्त राशि का भार वहन करने के लिये तैयार नहीं था और यों वह अंग्रेजों के विरुद्ध कर सिंधिया और अंग्रेज दोनों से ही आजाद होना चाहता था।[53]

भारत में अंग्रेज सत्ता के विरुद्ध 10 मई 1857 ई. के दिन सर्वप्रथम मेरठ से विद्रोह की जो चिंगारी उठी थी उसने अल्पकाल में ही संपूर्ण उत्तर भारत और मालवा को अपनी गिरफ्त में ले लिया। अमझेरा के राजा बख्तावरसिंह ने अपनी सेना में विलायती, मकरानी सिपाहियों की भरती कर अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि करना प्रारंभ कर दिया था। ए. जी.जी. कर्नल ड्यूरेण्ड ने मध्य भारत के देशी राज्यों को लिखा कि वे विलायती और मकरानी सैनिकों की भरती नहीं करें किन्तु अमझेरा के शासक बख्तावरसिंह ने इस आदेश की अवहेलना की।

1 जुलाई, 1857 ई. को होल्कर की विद्रोही सेना ने इन्दौर रेसीडेण्सी पर आक्रमण किया। शहादत खाँ के नेतृत्व में तोपों ने रेसीडेण्सी पर आग उगलना प्रारंभ कर दिया । 7 अंग्रेज, 6 अंग्रेज महिला और 6 बालक और दो अंग्रेज सिपाही कुल 20 लोग मारे गये। ए.जी.जी. ड्यूरेण्ड भोपाल की ओर भाग गया । रेसीडेण्सी का माल असबाब लूट लिया गया। बंगलों में आग लगा दी।[54] इस खबर के मऊ पहुँचते ही उसी दिन दोपहर

बाद मऊ छावनी में भी विद्रोह हो गया।[55]

इन्दौर रेसीडेण्सी और मऊ छावनी में विद्रोह और रेसीडेण्सी पर विद्रोहियों का कब्जा और तुकोजी राव होल्कर भी विद्रोहियों के साथ हो गया है, की खबर अपने वकील के माध्यम से अमझेरा पहुँची तो वहाँ का राजा बख्तावरसिंह भी विद्रोही हो गया ।[56] सर्वप्रथम राजा बख्तावरसिंह ने भोपावर की भील पलटन को गुप्त संदेश भेजकर अपने पक्ष में कर लिया। भोपावर एजेन्सी में स्थित केप्टन, हचिन्सन, मेजर स्टाकले, डा. चिकाहोम को राव बख्तावरसिंह के संभावित आक्रमण की सूचना मिली तो उन्होंने आत्मरक्षार्थ 2 जुलाई, 1857 ई. को 180 भीलों को एकत्रित किया और दो छोटी बन्दूकें अपने पास रखी। 2 जुलाई, 1857 ई. की रात्रि को 160 भील वहाँ से चले गये तथा राव बख्तावरसिंह की सेना में सम्मिलित हो गये। केवल 20 भील सिपाही रह गये । तब तो सभी अंग्रेज अधिकारी भयभीत हो गयें और 3 जुलाई, 1857 ई. को प्रातः सब अपनी पत्नियों और बच्चों के साथ झाबुआ की तरफ भाग गये। दो दिन और रात उन्होंने जंगल की झाड़ियों में व्यतीत किये और अंत में 5 जुलाई, 1857 ई. को वे झाबुआ पहुँचे। वहाँ राजा ने उन्हें शरण और सुरक्षा प्रदान की ।[57] वहाँ से होल्कर की सेना के संरक्षण में 16 जुलाई, 1857 ई. को इन्दौर पहुँचे।[58]

इधर 3 जुलाई, 1857 ई. को ही राव बख्तावरसिंह ने अपने दीवान गुलाबराय संदला के कुंवर भवानीसिंह के साथ दो तोपों और सेना सहित भोपावर पर आक्रमण कर दिया । भोपावर एजेन्सी हाउस, डिस्पेनसरी, पोस्ट आफिस को लूट लिया और ब्रिटिश झण्डे को फाड़ कर जला दिया। भील पलटन के हथियार व गोला बारूद को गाड़ियों में भरकर अमझेरा लाया गया।[59]

झाबुआ में 11 जुलाई, 1857 ई. तक रहने के बाद केप्टन हचिन्सन ने महू की ओर प्रस्थान किया । वहाँ से उसने राव बख्तावरसिंह से भोपावर और सरदारपुर पर आक्रमण के लिये जवाब तलब किया तब राव बख्तावरसिंह ने लिखा कि यह आक्रमण उसके विद्रोही सैनिकों और

दीवान गुलाबराय, कुंवर भवानीसिंह, भोपावर का पटवारी सलूकराय, छड़ावद का कामदार मोहनलाल और टाण्डा का कामदार चिमनलाल ने किया है। अतः वे जिम्मेदार हैं। तब केप्टन हचिन्सन ने उन सबको सौंप देने का आदेश दिया ।[60]

राव बख्तावरसिंह पर इस आदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह अब अपनी शक्ति में वृद्धि करने में लग गया और इसके लिये उसने अपनी सेना में अफगान, मकरानी और ऐसे ही अंग्रेज विरोधी व्यक्तियों को भारती कर लिया।[61] साथ ही धार के अंग्रेज विरोधी विद्रोहियों को भी अपने पक्ष में कर लिया और उन्हें सहायता का पूरा आश्वासन दिया।[62] अतः हेमिल्टन ने अमझेरा पर आक्रमण कर दीवान गुलाबराय, कु. भवानीसिंह, सलूकराय, नोहनलाल और चिमनलाल को गिरफ्तार कर इन्दौर लाया गया और कड़ावघाट जेल में बंद कर दिया गया राव बख्तावरसिंह अमझेरा से 5 मील दूर दक्षिण–पूर्व में लालगढ़ दुर्ग के जंगलों में जा छिपा और अंग्रेजों की गिरफ्त में नहीं आया उसने अंग्रेज विरोधी गतिविधियों को जारी रखा।

यों बख्तावरसिंह से सहायता प्राप्त कर विद्रोही सैनिकों ने भोपावर पर 10 अक्टूबर, 1857 ई. को पुनः आक्रमण कर दिया । भोपावर एजेन्सी में नियुक्त भारतीय सैनिकों ने भी विद्रोहियों का साथ दिया। विद्रोही सेना ने भोपावर एजेन्सी के डाक बंगलों में आग लगा दी और सारा माल असबाब लूट लिया। भोपावर छावनी को नष्ट करने के बाद विद्रोही सैनिकों ने सरदारपुर की ओर कूच किया। सरदारपुर से लगभग 3 कि.मी. दूर रायगढ़ के सैनिक भी विद्रोही सेना के साथ हो गये। यों सम्मिलित सेना ने सरदारपुर की सैनिक छावनी पर जोरदार आक्रमण किया। सरदारपुर में स्थित अंग्रेजी सेना ने विद्रोहियों का मुकाबला करने के लिये पूरी मोर्चाबन्दी कर ली थी । तीन घण्टे तक घमासान युद्ध होता रहा। इस युद्ध में विद्रोहियों की सेना का प्रमुख शाह रसूल खॉं वीरगति को प्राप्त हुआ । अंत में विद्रोही सेना विजयी हुई और उन्होंने वहाँ के

बंगलों में आग लगा दी और गोला बारूद और अन्य सामान लूट लिया।[83] यों बख्तावरसिंह ने अपने राज्य के समीप स्थापित ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार की शक्ति को नष्ट कर दिया। अंग्रेज अधिकारियों ने सोचा कि मालवा में नीमच, महू, इन्दौर, महिदपुर, भोपावर, धार आदि स्थानों में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह हो जाने के कारण राव बख्तावरसिंह अमझेरा और धार के दीवान के साथ–साथ भारतीय राज्यों के अन्य शासक भी विद्रोहियों की सहायता करेंगे यदि उन्हें दण्डित किया गया।

राव बख्तावरसिंह ने भोपावर और सरदारपुर में हुए विद्रोह और आक्रमण में अपूर्व योगदान दिया था। अतः अब अंग्रेजों के लिये उसकी शक्ति का दमन करना और उसे दण्डित करना अनिवार्य हो गया था ताकि अन्य को सबक सिखा सके।

अतः वकील की सहायता से राव बख्तावरसिंह को 21 दिसम्बर, 1857 ई. को गिरफ्तार कर उसी दिन इन्दौर ले जाया गया। वहाँ पर ए.जी.जी. हेमिल्टन के समक्ष पेशी हुई उसमें ए.जी.जी. सर राबर्ट हेमिल्टन, केप्टन हचिन्सन, सेक्सपीयर, वकील ग्वालियर, वकील इन्दौर (होल्कर), वकील धार, वकील बजाबाई, वकील छावनी और वकील दतिया आदि उपस्थित थे। ये सब चौकियों पर बैठ गये और राव बख्तावरसिंह अमझेरा को बुलाया गया। दोपहर तक सवाल होते रहे। राव ने कोई जवाब नहीं दिया। अंत में हेमिल्टन ने राव बख्तावरसिंह के चार अधिकारियों दीवान गुलाबराय, कुंवर भवानीसिंह, मोहनलाल, भोपावर का पटवारी सलूकराय को फांसी की सजा सुनायी और चिमनलाल को उम्र कैद उपरोक्त चारों अधिकारी और कर्मचारियों को 21–12–1857 को ही सड़क पर फांसी दे दी गयी।[84]

तदनन्तर इन पाँचों अधिकारियों और कर्मचारियों का माल असबाब खालसे कर लिया गया। थोड़े कपड़े और नकद राशि महाराजा होल्कर के माध्यम से छावनी पहुँचायी गयी। अंग्रेजों को इस सबसे भी शांति नहीं हुई वे उनके उत्तराधिकारियों को भी बर्बाद करना चाहते थे और भय तथा

आतंक फैलाना चाहते थे । अतः अमझेरा पर भी अंग्रजों ने आक्रमण किया और विद्रोहियों के घरों को लूट लिया गया।[65]

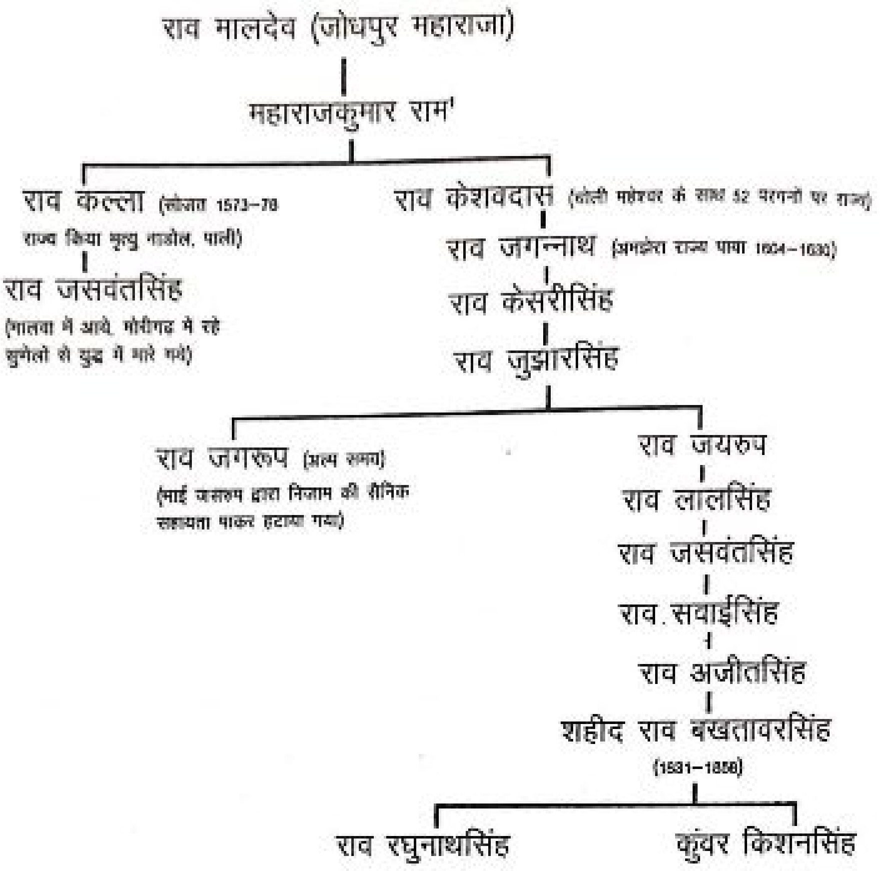
अब राव बख्तावरसिंह पर भी यातना का दौर चालू हो गया। जेल में उन्हें यातनाएँ दी जाने लगी इसकी जानकारी मिलने पर राव बख्तावरसिंह की मां 11 जनवरी, 1858 ई. को इन्दौर पहुँची उधर हेमिल्टन ने बख्तावरसिंह को फांसी देने और अमझेरा पर अधिकार करने का निर्णय ले लिया था। अतः 14 जनवरी, 1858 ई. को महिदपुर छावनी की एक पल्टन को अमझेरा पर अधिकार करने भेजा। और अंत में 10 फरवरी, 1858 ई. को प्रातः लगभग 9 बजे राव बख्तावरसिंह को सड़क पर फांसी दे दी गयी । शाम तक लाश फांसी पर लटकी रही । बख्तावरसिंह की मां ने पुत्र वियोग में अफीम खा ली और बेहोश हो गयी।[66] तदनन्तर राव बख्तावरसिंह का अमझेरा राज्य खालसे कर लिया गया और अमझेरा का सारा माल असबाब नीलाम कर दिया गया । 1860 ई. में अमझेरा राज्य का क्षेत्र सिंधिया को दे दिया गया ।[67]

इधर राव बख्तावरसिंह के फांसी की खबर अमझेरा पहुँची तो राव के भाई दत्तीगांव के लक्ष्मणसिंह ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और भीलों से जा मिले । भीलों ने खूब उपद्रव कर दिया । उनको दबाने के लिये मुंशी शाहमत अली को महिदपुर छावनी से देशी सिपाहियों के साथ भेजा था।[68]

मध्य भारत मालवा के देशी राज्यों के शासकों में अमझेरा के एकमात्र क्रान्तिकारी वीर सपूत राव बख्तावरसिंह था, जो 1857 ई. के विद्रोह के समय अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ और वह मालवा के उन राजाओं में अग्रणी है जिन्होंने देश की स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये बलि दे दी।

अमझेरा राज्य का वंश वृक्ष

अमझेरा राजाओं की वंशावली



1. उत्तराधिकार से वंचित होकर सन् 1547 में निष्कासित होकर पहले गूंदोज फिर केलवा चला गया। सन् 1563 से 73 तक सोजत परगने पर राज्य किया ।

अमझेरा राज्य का वंश वृक्ष

अमझेरा राजाओं की वंशावली

राव मालदेव (जोधपुर महाराजा)

|

महाराजकुमार राम[1]

- राव कल्ला (सोजत 1573–78 राज्य किया मृत्यु नाडोल, पाली)
  - राव जसवंतसिंह (मालवा में आये, मोरीगढ़ में रहे सुगीलों से युद्ध में मारे गये)
- राव केशवदास (धोली महेश्वर के साथ 52 परगनों पर राज्य)
  - राव जगन्नाथ (अमझेरा राज्य पाया 1604–1630)
    - राव केसरीसिंह
      - राव जुझारसिंह
        - राव जगरूप (अल्प समय) (भाई जसरूप द्वारा निजाम की सैनिक सहायता पाकर हटाया गया)
        - राव जयरुप
          - राव लालसिंह
            - राव जसवंतसिंह
              - राव सवाईसिंह
                - राव अजीतसिंह
                  - शहीद राव बखतावरसिंह (1831–1858)
                    - राव रघुनाथसिंह
                    - कुंवर किशनसिंह

1. उत्तराधिकार से वंचित होकर सन् 1547 में निष्कासित होकर पहले गूंदोज फिर केलवा चला गया। सन् 1563 से 73 तक सोजत परगने पर राज्य किया ।

5. झाबुआ राज्य का संक्षिप्त इतिहास

झाबुआ की भौगोलिक स्थिति

मध्यप्रदेश के दक्षिण–पश्चिम में स्थित आदिवासी बाहुल्य झाबुआ जिले की सीमायें पश्चिम में राजस्थान एवं गुजरात राज्य की तथा दक्षिण में महाराष्ट्र राज्य की सीमाओं से मिलती हैं । झाबुआ जिला 21° 30′ से 22° 55′ उत्तरी अक्षांश तथा 73° 30′ से 75° 1′ पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है, जिसका कुल क्षेत्रफल 6793 वर्ग किलोमीटर है । यह जिला मालवा के पठार के पश्चिम में है और अधिकांश हिस्सा पहाड़ी क्षेत्र है । जिले की समुद्र तल से ऊँचाई 428 मीटर तथा 714 मीटर के बीच है ।[1]

जलवायु एवं वर्षा

झाबुआ का मौसम अधिकांश समय गर्म रहता है। नवम्बर से फरवरी तक शीत ऋतु तथा मार्च से जून तक ग्रीष्म ऋतु होती है। औसत न्यूनतम तापमान 10.7 डिग्री सेल्सियस तथा औसत अधिकतम तापमान 41.0 डिग्री तथा इससे अधिक भी हो जाता है । यहाँ की औसत वर्षा 700 मिलीमीटर के लगभग होती है । वर्ष में औसतन 29 दिन वर्षा होती है और शेष समय सूखा रहता है।

भूमि

झाबुआ का सम्पूर्ण धरातल ऊबड़–खाबड़ है व भूमि पथरीली है। जिले का उत्तरी भाग, दक्षिणी भाग की अपेक्षा अधिक मैदानी है। भूमि उत्तम किस्म की न होने के कारण कम उत्पादन देती है।

मिट्टी

यहाँ विभिन्न प्रकार की मिट्टी पाई जाती है। दक्षिण–पश्चिम में जहाँ काली और कछारी मिट्टी का सम्मिश्रण (निमाड़ क्षेत्र के समान) हैं वहीं उत्तरी क्षेत्र में पठारी क्षेत्र से लगे क्षेत्रों में ब्लैक कॉटन सॉइल है । पहाड़ियों के ऊपरी और उतार वाले क्षेत्रों में मिश्रित लाल, पीली मिट्टी पाई जाती है।

वैसे वनों के कटने से और भूमि में कटाव–बहाव के कारण अधिकांश पहाड़ी क्षेत्रों में मिट्टी के आवरण का स्थान कंकड़ों ने ले लिया है।

नदियाँ एवं बाँध

झाबुआ क्षेत्र दो बड़ी नदियों उत्तर में माही तथा दक्षिण में नर्मदा के बीच स्थित है । माही की सहायक नदियों में अनास प्रमुख है, जबकि हथनी, सुक्कड़ तथा खेड़ा नदियाँ नर्मदा की सहायक नदियाँ है । नदियों को बाँधकर सिंचाई की मध्य परियोजनाएँ जिले में कार्यरत हैं, जिनमें पम्पावती, चोर, बोराली, जोबट, गुलाबपुरा, मोदसागर आदि प्रमुख हैं । नर्मदा नदी पर बन रहे सरदार सरोवर बाँध से जिले के दक्षिणी भाग के कुछ गाँव प्रभावित हो रहे हैं।

वन सम्पदा

वन सम्पदा का पर्यावरण की दृष्टि से बहुत बड़ा महत्त्व है । जिस राष्ट्र में वन सम्पदा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है वह राष्ट्र विकास की ओर अग्रसर रहता है तथा पर्यावरण का संतुलन बना रहता है। इस क्षेत्र में 1900 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में वन सम्पदा पाई जाती है जोकि वर्तमान झाबुआ जिले के कुल भू–भाग का 28 प्रतिशत है। यहाँ के जंगलों में सागौन, महुआ, ताड़, आम, तेदूंपत्ता के मिले–जुले वृक्ष पाये जाते हैं । शेष भागों में गूलर, नीम, ताड़, पीपल, आम खजूर, बबूल के वृक्ष पाये जाते हैं। इसी प्रकार वनोपज में तेंदूपत्ता, पुवाड़बीज, ताड़ रतनजोत, महुआ, शहद आदि भी प्राप्त होते हैं।

तेंदूपत्ता सामान्यतया बीड़ी उद्योग के लिए कच्चामाल हैं, लेकिन सही रूप में इसका दोहन नहीं हो पा रहा है। छोटे स्तर पर झाडू, टोकरियाँ, ताड़ से गुड़ महुआ से शराब बनाने का कार्य जनजाति समाज के लोग करते हैं।

खनिज सम्पदा

इस क्षेत्र में खनिज सम्पदा के पर्याप्त भण्डार हैं । मुख्य रूप से

डोलोमाइट, केल्साइट, डोलोमेटिक, लाईम स्टोन, रॉक फारफेट आदि।

इस क्षेत्र में लगभग सभी मध्यम आकार के उद्योग इन्हीं पर आधारित होकर संचालित हैं। तथा उस क्षेत्र के अधिकांश श्रमिक इन्हीं उद्योगों में कार्यरत हैं । क्योंकि इन उद्योगों में कार्य करने हेतु विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है । इन उद्योगों से उत्पादित पावडर फर्टीलाइजर कलर पेंट्स एवं टेल्कम पाउडर बनाने हेतु अन्य राज्यों को भेजा जाता है।

पशुधन

यहाँ की अर्थव्यवस्था में पशुपालन का महत्त्वपूर्ण स्थान है । यहाँ बकरी पालन एवं मुर्गीपालन प्रत्येक परिवार में किया जाता है । और यह प्रत्येक परिवार के लिए महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है । प्रत्येक परिवार के लोग इन्हें साप्ताहिक हाट बाजार में लाकर मुर्गी, बकरों का विक्रय कर अपनी आमदनी बढ़ाते हैं । साथ ही अपनी रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करते हैं । इस क्षेत्र की जलवायु – "कड़कनाथ" मुर्गो के लिए बहुत ही अनुकूल है । कड़कनाथ मुर्गे की विशेषता यह है कि यह काला रंग का होता है तथा इसका खून भी काला होता है जो कि खाने में बहुत ही स्वादिष्ट होता है । झींगापालन के क्षेत्र में झाबुआ अग्रणी उत्पादकों में है। आजादी के बाद झाबुआ जिले में भी डेयरी उद्योगों का महत्त्व बढ़ा है। मुर्गी, बकरों के अतिरिक्त बैल, गाय, भैंस, भेड़, घोड़े, गधे भी पाले जाते हैं।

प्रमुख फसलें

यहाँ कृषि का स्तर पिछड़ा हुआ है। उसके बाद भी 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है । सर्वाधिक मात्रा में मक्का बोई जाती है क्योंकि मक्का जनजाति समाज का मुख्य खाद्य पदार्थ है। इसके अलावा गेहूँ, ज्वार, कपास, दलहन, तिलहन आदि की खेती की जाती है।

सिंचाई के साधन

यहाँ नहरों, नलकूप, कुएँ, तालाब से सिंचाई का कार्य किया जाता है । कुएँ, तालाब पर डीजल इंजन रखकर पानी खेतों तक पहुँचाया जाता

है । रियासत काल में मोट (चड़स) जो कि लोहे की बनी रहती थी बीच में ढक्कन लगा होता था, बैलों के माध्यम से उसे कुएँ के अंदर उतारा जाता था । तथा जैसे ही पानी में डूबती थी उसमें ढक्कन के सहारे पूरी मोट पानी से भर जाती थी और वह डूबने लगती है तो ऊपर बैलों के साथ जो व्यक्ति खड़ा है उसे रस्सी के माध्यम से संकेत मिल जाता है तब बंधी रस्सी को बैल खींचते हैं। बाहर आने तक थोड़ा पानी कुएं में मोट से वापस गिर जाता था । इस तकनीक में बहुत ही कष्ट होता था और खेतों में पानी भी कम पहुँचता था। इस प्रकार आदिवासी समुदाय सिंचाई का कार्य सम्पन्न करते थे।

झाबुआ राज्य की स्थापना एवं नामकरण

झाबुआ राज्य की स्थापना यों तो केशवदास मारू के पौत्र महासिंह ने 1642 ई. में की थी पर केशवदास का इस क्षेत्र को आबाद करने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था। अतः झाबुआ राज्य का पूर्व पुरुष होने के नाते केशवदास का उल्लेख यहाँ समीचीन होगा । मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल में 1584 ई. में उसकी गणना उल्लेखनीय सेना नायकों में होने लगी थी।[2]

केशवदास मारू जोधपुर नगर के संस्थापक राव जोधा के पाँचवें पुत्र वरसिंह के प्रपोत्र भीम का बड़ा पुत्र था । आईन–ए–अकबरी में केशवदास राठौर ही लिखा है उस समय वह दो सदी जात के मनसबदारों में था। जहाँगीर के शासनकाल में वह "केशवदास मारू" के नाम से सुविख्यात हुआ एवं ख्यातों आदि में समकालीन आधार सामग्री में इसी नाम से उसका उल्लेख मिलता है ।[3]

1584 ई. में शाही सेवा द्वारा किये गये गुजरात अभियान के दौरान उसने अद्भुत वीरता दिखाई थी ।

मालवा से गुजरात जाने वाला मार्ग अपराध से भरा एंव संकटपूर्ण था। वहाँ विभिन्न अपराधिक जातियाँ लूटमार करती थी, अतः 1591–93 के मध्य बदनावर और अमझेरा का परगना केशवदास मारू को जागीर के

रूप में मिला जो जीवन पर्यन्त उसके अधिकार में रहा ।[4]

बदनावर और अमझेरा के परगनों पर अधिकार हो जाने के बाद उसने इन परगनों के उत्तर–पश्चिम में लगे हुए क्षेत्र के लुटेरों चन्द्रभान तथा लखा नायक को मार भगाया तब सन् 1594 ई. के लगभग धुलेट के आस–पास के स्थानों पर भी केशवदास का अधिकार हो गया । तत्पश्चात केशवदास ने माही नदी के पश्चिमी भाग को आबाद करके उसे परगना रामगढ़ का नाम दिया। महाराजकुमार डा. रघुबीरसिंह ने लिखा है कि माही नदी से पश्चिम के इस सारे प्रदेश में तब सर्वत्र मुख्यतः जंगली जातियाँ ही निवास करती थीं। केशवदास मारू ने ही तब प्रथम बार वहाँ नये रामगढ़ परगने की स्थापना की थी।[5]

उसके बाद केशवदास अनवरत पूर्व निष्ठा से शाही सेवा करता रहा। उसने अनेक शाही अभियानों में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया । मुगल सम्राट जहाँगीर द्वारा इस क्षेत्र पर शांति स्थापित करने के प्रयत्न किये गये थे। इस सिलसिले में केशवदास मारू को जहाँगीर द्वारा नियुक्त किये जाने का उल्लेख मिलता है।[6] परन्तु अपने अन्तिम समय में उसे विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ा, तब उसके ज्येष्ठ पुत्र करण ने ही उसकी हत्या कर दी ।[7] उसके निधरोपरान्त उसके सभी परगने जब्त कर लिये गये । पिता की हत्या के पश्चात करण केशवदास का उत्तराधिकारी बना परन्तु कुछ समय पश्चात करण को उसकी विमाता ने विष देकर मार डाला। तब केशवदास मारू के छोटे पुत्र उदयकरण का पुत्र महासिंह करण का उत्तराधिकारी बना।[8] शाही दरबार में विशेष प्रयत्न करने पर सन् 1642 ई. के लगभग शाहजहाँ ने रामगढ़ तथा उसके आस–पास के परगने महासिंह को दिये। तब महासिंह द्वारा झाबुआ थांदला तथा आसपास के अपराधिक प्रवृत्ति वाले नायकों को मार कर इस क्षेत्र को अपराध मुक्त कर सभी स्थानों पर अपना अधिकार स्थापित कर दिया गया। तदुपरान्त उसने क्षेत्र का ऐकीकरण करके झाबुआ को अपनी राजधानी बनाया तथा झाबुआ राज्य की स्थापना की ।[9]

ऐसा माना जाता है कि झब्बू नायक नामक लबाना शासक को

मारकर महासिंह ने उस क्षेत्र पर अधिकार किया था। अतः उस क्षेत्र को 'झब्बू हा' नाम से संबोधित किया गया जो कालांन्तर में 'झाबुआ' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।[10] इस प्रकार सन् 1642 ई. में महासिंह द्वारा झाबुआ की स्थापना की गयी, जो 1948 ई. में भारतीय संघ में विलीनीकरण तक उसी के वंशजों के अधिकार में रहा। झाबुआ रियासत के अन्तर्गत खवासा, बोरी, झकनावदा, कल्याणपुरा, रायपुरिया, सारंगी, उमरकोट, बड़वेट, नौगांव, बाबड़ी, करवड़, अंतरवेलिया, तलावली, बोड़ायता, कोदली, गेहेन्ड़ी, जामली तथा घूघरी आदि जागीर थीं ।[11]

महासिंह की उम्र उस समय में अधिक नहीं थी और नव स्थापित राज्य के लिये ये शुभ संकेत नहीं था। उस विकट परिस्थिति का फायदा उठाकर पड़ोसी राज्यों ने झाबुआ राज्य की सीमाओं पर अपना अधिकार कर लिया था । विषम परिस्थितियों को देखते हुए महासिंह मुगल सम्राट शाहजहाँ के पास दिल्ली गया । वहाँ दो वर्ष तक उसने शाही सेवा की। उस दौरान उसने रियासत की हालत से भी शाहजहाँ को अवगत कराया। तब शाहजहाँ ने महासिंह को राज्य के सारे अधिकार दिलवाये। उस समय अमझेरा के शासक केशरीसिंह ने झाबुआ के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र धुलेट पर अधिकार कर रखा था। तब मालवा के मुगल सूबेदार ने मध्यस्थता कर धुलेट को झाबुआ राज्य के अन्तर्गत देकर महासिंह के अधिकार में दे दिया।[12] 1677 ई. में उसका निधन हो गया । तदन्तर उसका पुत्र कुशालसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। कुशालसिंह के शासन काल के उत्तरार्द्ध में झाबुआ में मराठों का प्रभाव बढ़ने लगा था ।[13]

फरवरी, 1723 ई. में पेशवा बाजीराव मुगल साम्राज्य के तत्कालीन वजीर निजाम से भेंट करने हेतु झाबुआ राज्य के अन्तर्गत बोलासा ग्राम गया था। उसी अवसर पर वह झाबुआ राज्य की राजनैतिक प्रशासनिक एवं सामाजिक परिस्थिति से परिचित हो गया था । उसी के परिणामस्वरूप कुण्ठाजी कदम बाण्डे झाबुआ राज्य में पहुँचा था। इस प्रकार 1723 ई. में ही मराटे झाबुआ राज्य में पहुँच चुके थे। कुशालसिंह के शासन काल में

अमझेरा के गरासिये ने धुलेट पुनः छीन लिया, तथा सैलाना के राजा ने थांदला पर चढ़ाई कर दी थी। उसके ज्येष्ठ पुत्र अनूपसिंह ने बड़ी कुशलता से उन सबका सामना किया। 1723 ई. में ही कुशालसिंह का निधन हो गया। उसका उत्तराधिकारी अनूपसिंह हुआ।[14] 1727 ई. में दुर्भाग्यवश अनूपसिंह की भी हत्या हो गयी। उसकी हत्या के विषय में कहा जाता है कि 1727 ई. में एक दिन अनूपसिंह जब थांदला की गढ़ी में खड़ा था तब किसी ने गढ़ी के सामने मचान बनाकर उस पर से अनूपसिंह के गोली मार दी। ऐसा माना जाता है कि वह सैलाना के राजा का भेजा हुआ आदमी था। थांदला में अनूपसिंह की छत्री बनी हुई है तथा गढ़ी और मचान वाला पेड़ वर्तमान में भी वहाँ मौजूद है।

अनूपसिंह की हत्या के उपरान्त सैलाना के शासक ने थांदला पर अधिकार कर लिया था किन्तु बोरी ठिकाने के ठाकुर रतनसिंह ने उसे पुनः वहाँ से भगा दिया।[15] उस दौरान झाबुआ राज्य में अराजकता फैल गयी थी। मई, 1728 ई. मे मल्हारराव होल्कर को भी उदाजी पंवार के साथ सम्बद्ध कर मालवा में भी हिस्सा दे दिया। सन् 1731 ई. में उदाजी पंवार और पेशवा बाजीराव में विरोध उत्पन्न हो जाने के कारण मालवा राज्य कार्य से उसे हटा दिया और झाबुआ आदि क्षेत्र से खण्डणी आदि की वसूली का एकाधिकार मल्हारराव होल्कर के हाथ में आ गया।[16]

मल्हारराव होल्कर ने झाबुआ से अपने संबंध स्थापित होने के पश्चात् उसने झाबुआ परगने की वसूली का कार्य विठूजी बुले को सौंप दिया। उधर झाबुआ राज्य में अनूपसिंह की हत्या के पश्चात् अव्यवस्था फैली हुई थी और उसका लाभ उठाकर पेशवा बाजीराव के आदेश पर मराठा अधिकारी स्वयं ही राज्य की देखभाल कर उसकी सायर आदि की आमदनी का एक चौथाई भाग राजघराने को देने लगे।[17] 22 जुलाई, 1732 ई. को मालवा के बटवारे में जो परगने मल्हारराव को मिले उनमें झाबुआ परगना उसके हिस्से में आया । तब मल्हारराव होल्कर ने वहाँ के मोकासा आदि की रकम तय किये बिना ही झाबुआ परगना अपने सरंजामी जागीरदार

विठूजी बुले को दिया।[18] उस समय झाबुआ पर अनूपसिंह का पुत्र शिवसिंह शासन कर रहा था । अल्पायु होने के कारण उसकी माता बना बाई शिवगढ़ के महंत मुकुन्द गिरि और बोरी के ठाकुर रतनसिंह की सहायता से झाबुआ का प्रशासन चलाती थी ।[19] उधर विठूजी बुले के लिए यह संभव नहीं था कि वह निरन्तर वहीं रहकर वहाँ का कार्य देखे। अतः उसने माधवराव को झाबुआ में अपना कमाविसदार नियुक्त किया। वह बना बाई एवं उसके अन्य सहयोगियों की सहायता से झाबुआ का कार्य चलाता था ।[20]

सन् 1734 ई. तक झाबुआ राज्य का केन्द्र थांदला था। इधर 1723 ई. के बाद जब मराठा कमाविसदार भी थांदला में रहने लगा तब झाबुआ के शासक ने अपने शासन का केन्द्र झाबुआ को बना लिया ।[21] उधर विठूजी बुले का उत्तराधिकारी गोविन्द राव बुले हुआ । उसने माधवराव के स्थान पर विसाजी महादेव को झाबुआ का कमाविसदार बनाया जो लगभग 20 वर्ष तक इस पद पर बना रहा ।[22]

राजा शिवसिंह का निधन 1758 ई. में हुआ। वह निःसंतान मरा था।[23] अतः उत्तराधिकार की समस्या उठ खड़ी हुई। काफी अन्तर्विरोध एवं गतिरोध के पश्चात शिवसिंह के काका इन्द्रसिंह का पुत्र बहादुरसिंह गद्दी पर बैठा ।[24]

बहादुरसिंह ने मराठा कमाविसदार विसाजी महादेव के साथ मिलकर पेटलावद तथा थांदला परगने के प्रशासन में सुधार करते हुए व्यवस्था की जिसकी शर्तें इस प्रकार थी –

1. पेटलावद और थांदला पर होल्कर व झाबुआ का सम्मिलित शासन रहा किन्तु टांका चौथ वसूल करने का अधिकार झाबुआ का होगा।
2. सायर की वसूली भी संयुक्त रूप से हो जिसका बारह आना झाबुआ और चार आना होल्कर को मिले ।

3. राज्य के उमरावों का टांका रुपये 1500 होल्कर स्वयं सीधा वसूल करता रहे किन्तु उमराव लोग झाबुआ दरबार के अधीन रहें तथा टांका चौथ झाबुआ रियासत को दी जाय।

4. होल्कर द्वारा शासन व्यवस्था का अधिकार 35000 रुपये सालाना अदा करने पर बहादुरसिंह को सौंप दिया जाय। यह अदायगी होलकर की झाबुआ राज्य की सेवा के बदले तथा पाँच हजार रुपये शासन खर्च के लिए देना तय किया।[25]

यह व्यवस्था काफी समय तक कायम रही। मार्च 24, 1858 ई. को पेटलावद तथा थांदला के परगनों का बटवारा हो गया। थांदला पर झाबुआ राज्य का अधिकार हो गया तथा पेटलावद का परगना पूर्ण रूप से इन्दौर राज्य में मिला लिया गया।[26] राजा बहादुरसिंह द्वारा झाबुआ में बहादुर सागर नामक तालाब बनवाया गया तथा परकोटे की भी मरम्मत का उल्लेख मिलता है।[27] बहादुरसिंह का निधन 1770 ई. में हुआ। उसके निधनोपरान्त उसका पुत्र भीमसिंह झाबुआ का शासक बना।[28]

भीमसिंह के शासन काल में होल्कर अधिकारियों का प्रभाव झाबुआ पर बढ़ गया था। साथ ही बकाया टांके की राशि के लिये भी उनका दबाव बढ़ गया था। भीमसिंह ने तंग आकर पेटलावद पर हमला करके उसे लूटा तथा थांदला में स्थित होलकर अधिकारियों के केम्प जलवा दिये। 1805 ई. में यशवन्तराव होलकर ने पुनः भीमसिंह से टांके की मांग की। भीमसिंह द्वारा आनाकानी करने पर यशवन्तराव होलकर ने बालचन्द माहेश्वरी के नेतृत्व में झाबुआ पर सेना भेजी। छः माह तक यह झगड़ा चलता रहा अन्त में होलकर का पलड़ा भारी रहा और भीमसिंह को झुकना पड़ा। टांके की राशि के साथ ही थांदला एवं पेटलावद के परगने भी भीमसिंह के हाथ से निकल गये और उन पर होलकर का अधिकार हो गया। शेष बची टांके की रकम के बदले जमानत के रूप में बालचन्द माहेश्वरी ने भीमसिंह के दो पुत्र मोतीसिंह व सालिमसिंह को अपने पास थांदला में रखा गया, शेष राशि प्राप्त होने पर ही इन दोनों को छोड़ा गया।[29]

चार्ल्सवार मेलेट ने पूना में निवास के दौरान 1785 ई. में उत्तर भारत की यात्रा की थी।[30] उस दौरान वह झाबुआ भी आया था । तब राजा भीमसिंह द्वारा उसकी खूब आवभगत करवायी गयी थी । उसकी मेहमाननवाजी से मेलेट खूब प्रसन्न हुआ था तथा उसकी खूब प्रशंसा की थी।[31]

इसी दौरान भीमसिंह के पाटवी पुत्र प्रतापसिंह ने अपने निर्वाह के लिए पिता से जागीर की मांग की। परन्तु भीमसिंह द्वारा उसे अस्वीकार कर दिया गया, इससे नाराज होकर प्रतापसिंह ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर थांदला, रम्भापुर, झाबुआ और रानापुर में लूटपाट की, जब दोनों पिता पुत्र में विवाद गहराता गया तब 1819 ई. में मालकम ने मध्यस्थता करते हुए एक पत्र में आपसी गतिरोध खत्म करने हेतु सुझाव दिया । ऐसा न करने पर राज्य जब्त करने की चेतावनी भी मालकम ने दी । परन्तु इस पत्र का भी दोनों पिता–पुत्र पर कोई असर नहीं हुआ तब मालकम द्वारा केप्टन प्रिंगले को समझौते हेतु झाबुआ भेजा गया। फलस्वरूप भीमसिंह को झुकना पड़ा। केप्टन प्रिंगले द्वारा करड़ावद तीन तालुको सहित प्रतापसिह को जागीर में दिया गया । तब जाकर इस आपसी विवाद का निपटारा हुआ ।[32]

भीमसिंह के चार पुत्र थे प्रतापसिंह, मोतीसिंह, सालिमसिंह और गुलाबसिंह। 1829 ई. में भीमसिंह की मृत्युपरात उसका पुत्र प्रतापसिंह गद्दी पर बैठा। 1839 ई. में उसका निधन हो गया। वह पुत्र विहीन मरा। अतः झाबुआ की गद्दी हेतु प्रतापसिंह के भाई सालिमसिंह के पुत्र रतनसिंह को दत्तक लिया गया ।[33]

रतनसिंह को बाल्यावस्था में ही राज्य के अधिकार प्राप्त हो गये थे। तब महारानी राणावत जी ने केप्टन बोर्थविक की देखरेख में राज्य का सारा राज कार्य किया। केप्टन बोर्थविक ने होलकर से थांदला और पेटलावद का पट्टा महाराजा बहादुरसिंह द्वारा पहले की गयी शर्तो के अनुसार 35000 रुपये सालाना देने की शर्त पर पुनः हांसिल कर लिया। 1840 ई. में राजा रतनसिंह दशहरे की सवारी हेतु हाथी पर बैठकर निकल

रहा था तब अचानक बिजली गिरने से उसकी मृत्यु हो गयी ।[34] रतनसिंह ने 1840 ई. तक शासन किया। उसका उत्तराधिकारी गोपालसिंह उस समय गर्भ में ही था। रतनसिंह की मृत्यु के चार माह पश्चात् गोपालसिंह का जन्म हुआ । इस दौरान राजकाज उसकी दादी सम्हालती थी ।[35]

1841 ई. में थांदला में ब्रिटिश शासन के खिलाफ बगावत हुई तब 17 वर्षीय गोपालसिंह ने अंग्रेजों की सहायता की थी ।[36] 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में भी गोपालसिंह द्वारा अंग्रेजों की सहायता की गयी थी। उससे खुश होकर ब्रिटिश शासन ने गोपालसिंह की खूब प्रशंसा की तथा प्रति वर्ष मालवा भील कोर के लिए जो 3000 रुपये गोपालसिंह से लेते थे वह राशि घटाकर 1500 रुपये कर दी गयी, साथ ही 9 फरवरी, 1858 ई. को उसे 12500 की खिलअत भी प्रदान की गयी तथा 1859 ई. में राज्य के सभी अधिकार गोपालसिंह को दे दिये गये तथा 1863 ई. में कपास पर से महसूल भी उठा लिया गया ।[37] 1871 ई. तक थांदला और पेटलावद पर झाबुआ व होलकर दोनों का समान अधिकार था, अब थांदला पर झाबुआ का और पेटलावद पर होलकर का अधिकार हो गया। 1891 ई. में गोपालसिंह द्वारा रेलवे लाइन हेतु भूमि प्रदान की गयी ।[38]

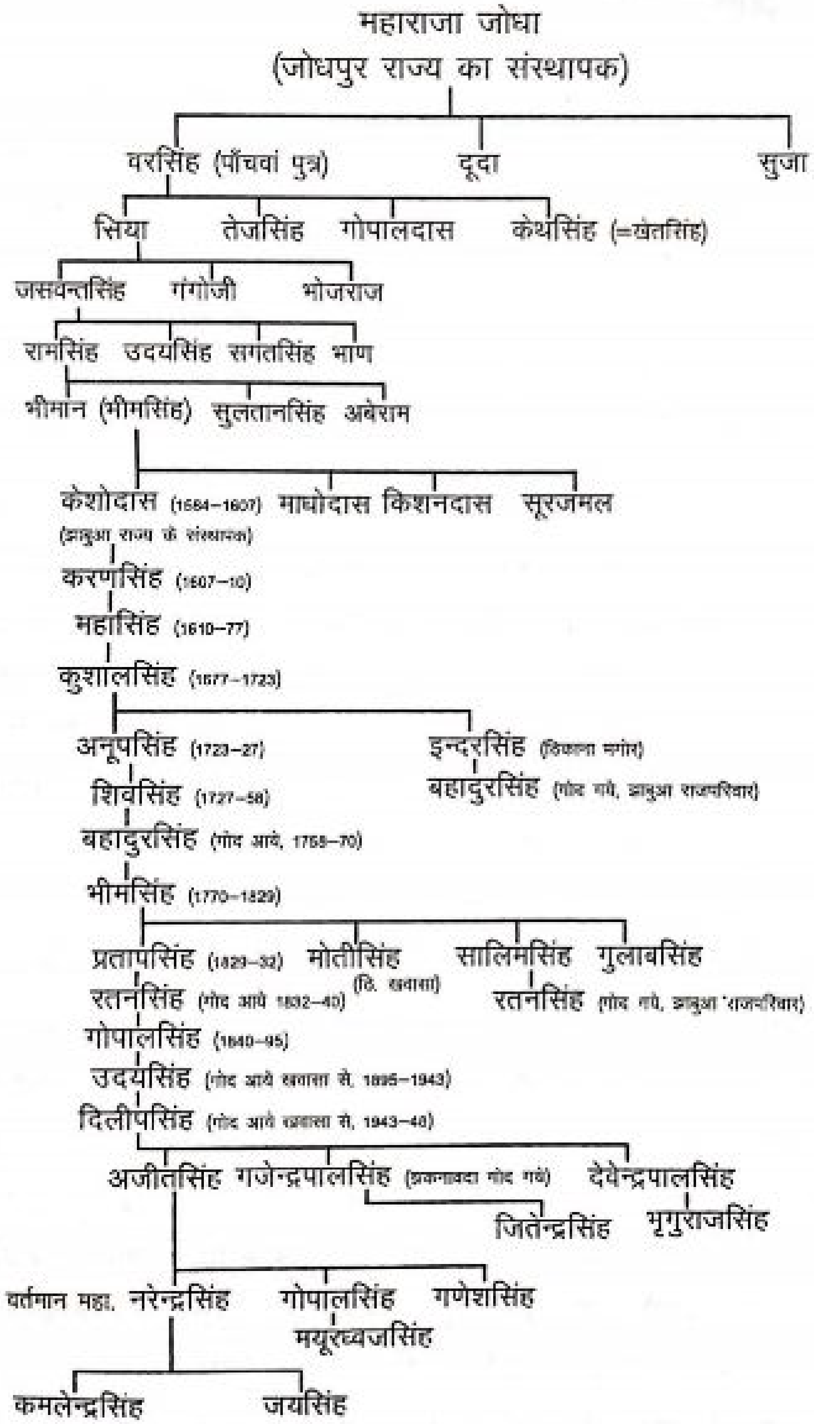
राजा गोपालसिंह धार्मिक प्रवृत्ति का था। उसने झाबुआ में अनेक निर्माण कार्य करवाये। जिनमें वल्लभकुल का गोवर्द्धननाथ मंदिर राजमहल में गोपाल मंदिर (श्री गोपाल द्वारा), रंगपुरा ग्राम में अनास नदी के तट पर रामजी का मंदिर आदि प्रमुख हैं । इन मंदिर के पुजारियों के निर्वाह के लिये भी उसने जागीर दे रखी थी ।

राजा गोपालसिंह के कोई पुत्र नहीं था । अतः उसने अपनी मृत्यु से पूर्व ही 1893 ई. में ही खवासा के ठाकुर खुशालसिंह के दूसरे पुत्र उदयसिंह को गोद ले लिया था ।[39] 1895 ई. में गोपालसिंह का निधन हो गया। तब 22 जनवरी, 1895 ई. को उदयसिंह झाबुआ की राजगद्दी पर बैठा। 1898 ई. में उसे राज्य के सारे अधिकार प्राप्त हुए।[40]

राजा उदयसिंह का शासन काल झाबुआ के इतिहास में निकृष्ट शासन के रूप में याद किया जाता है। उसके शासन काल में रियासत में चारों ओर अराजकता व्याप्त थी। उसकी ज्यादतियों एवं अत्याचारों के कारण ब्रिटिश सरकार ने उसे राज्य त्यागने को मजबूर किया। अतः 1934 ई. में वह सत्ता को त्यागकर इन्दौर रहने लगा। इन्दौर में रहते हुए ही 10 जून, 1943 ई. को उसका निधन हो गया। जब से राजा उदयसिंह को सत्ता से हटाया गया (28 सितम्बर, 1934 ई.) तब से ब्रिटिश शासन द्वारा गठित तीन सदस्यीय कौंसिल द्वारा राज्य कार्य चलाया जाता था। जिसके तहत महाराज दिलीपसिंह अध्यक्ष रामनारायण मुल्ला उपाध्यक्ष और गुलामअली न्यायालयीन सदस्य थे ।[41]

राजा उदयसिंह भी पुत्र विहीन मरा था। अतः पुनः उत्तराधिकार की समस्या उत्पन्न हुई। तब तीन सदस्यों वाली कौंसिल के अध्यक्ष दिलीपसिंह को अंग्रेज सरकार द्वारा झाबुआ का शासक बनाया गया। दिलीपसिंह ने 11 सितम्बर, 1943 ई. से भारतीय संघ में विलीनीकरण तक झाबुआ राज्य में शासन किया ।

झाबुआ राज्य का वंश वृक्ष



6. अलीराजपुर राज्य का संक्षिप्त इतिहास

अलीराजपुर मध्यप्रदेश के दक्षिण–पश्चिम में 22^0 0′ से 22^0 36′ उत्तरी तथा 74^0 5′ से 74^0 43′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।[1] अलीराजपुर रियासत का क्षेत्रफल 836.63 स्क्वायर मील था। इसके उत्तर में पंच महाल जिला और बारी स्टेट (जो कि बाम्बे प्रेसीडेन्सी के अन्तर्गत) थी, दक्षिण में नर्मदा नदी थी जो बड़वानी और खानदेश से इसको अलग करती थी। इसके पूर्व में ग्वालियर, इन्दौर, झाबुआ तथा जोबट रियासत का क्षेत्र था वहीं पश्चिम में छोटी उदयपुर रियासत थी।[2]

दिल्ली में जब सय्यद वंश (1414–1443 ई.) का शासन था उस दौरान ग्राम मोटीपोल जो कि भाबरा परगने के अन्तर्गत था, वहाँ दीपसिंह राठौड़ द्वारा एक किले का निर्माण करवाया गया। उस दौरान भील सरदार कैसरा तथा आलिया का उस क्षेत्र पर अधिकार था। ऐसा कहा जाता है कि दीपसेन ने आलिया भील को मारकर 'अलीराजपुर' की नींव रखी थी । उसी दीपसेन का वंशज आनन्द देव या उदयदेव हुआ जिसने 1437 ई. में 'आली' स्थान पर एक किले का निर्माण कर अलीराजपुर राज्य की स्थापना की ।[3] उस जगह का मूल नाम आनन्दावली था ।[4] वर्तमान में वह किला खण्डहर हो चुका है। 1800 ई. के लगभग राजधानी को 'आली' से 'राजपुर' लाया गया जिससे इस राज्य का नाम 'अलीराजपुर' पड़ा ।[5]

दीपसेन का 21वां वंशज उदयदेव या आनन्द देव था। उसका काल 1437 ई. के लगभग था। उसी आनन्द देव के छोटे भाई इन्द्रदेव ने पूलमाल ठिकाने की स्थापना की थी। आनन्द देव के दो पुत्र हुए प्रथम गुगलदेव तथा दूसरा केसरदेव। ज्येष्ठ पुत्र गुगलदेव अलीराजपुर में उसका उत्तराधिकारी बना। दूसरे पुत्र केसरदेव ने एक अलग क्षेत्र पर अधिकार कर पृथक राज्य कायम किया जिसे 'जोबट' नाम से जाना गया।[6]

गुगलदेव की छटी पीढ़ी में दीपदेव हुआ जो अलीराजपुर की गद्दी

पर बैठा ।[7] 1818 ई. तक भारत में ब्रिटिश सत्ता ने अपने पैर जमा लिये थे। इसका प्रभाव अलीराजपुर पर भी पड़ा। अलीराजपुर के राणा प्रतापसिंह की मृत्यु के समय उसकी पत्नी गर्भवती थी। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसने एक पुत्र को जन्म दिया । उसका नाम जसवन्तसिंह रखा गया। जसवन्तसिंह के जन्म से पहले गद्दी खाली होने के कारण अलीराजपुर के सारे अधिकार राणा प्रतापसिंह के मंत्री मुसाफिर मकरानी को दे दिये गये । मुसाफिर मकरानी ने रियासत की शासन व्यवस्था में परिवर्तन कर राज्य को न्यास में परिवर्तित कर जसवन्तसिंह को न्यास का प्रधान बनाने का प्रयास किया । उधर प्रतापसिंह के भतीजे केसरीसिंह ने जसवन्तसिंह के प्रधान बनाये जाने का विरोध किया क्यों कि वह खुद अलीराजपुर का व्यवस्थापक बनना चाहता था, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस मामले में हस्तक्षेप किया और उसने राणा प्रतापसिंह के पुत्र जसवन्तसिंह को ही राज्य का स्वामी माना । जसवन्तसिंह उस समय अवयस्क था अतः मुसाफिर मकरानी को ही राज्य का अधिक्षक बनाया गया ।[8]

1818 ई. में राज्यों में अंग्रेजी राज्य का प्रभुत्व स्थापित हो गया। अंग्रेजों के साथ हुई संधि के अनुसार मुसाफिर मकरानी ने यह लिखकर दिया कि "जब तक मैं अलीराजपुर की सेवा में रहूँगा तब तक 50 मकरानी सिपाहियों के साथ सेवा दूँगा ।" अलीराजपुर के अन्तर्गत आने वाला ठिकाना भाभरा केसरीसिंह को दे दिया जायगा। उसके बदले में केसरीसिंह धार राज्य को 20,000 रुपये वार्षिक टांका के रूप में देगा और जो अलीराजपुर राज्य से कर वसूल किये जायेगें उस संग्रहीत राशि को धार राज्य को दिया जायेगा । (यह राशि राहदारी कर के रूप में होगी, जिसके बदले धार राज्य की ओर से लूटमार न करने का आश्वासन दिया गया) बिना कम्पनी राज्य की अनुमति के मैं अन्य किसी राज्य से कोई संबंध नहीं रखूँगा। मुसाफिर[9]

यह अनुबंध मुसाफिर मकरानी ने धार राज्य एवं अलीराजपुर राज्य के मध्य संबंध सुधारने के लिये किया था। इससे धार राज्य को

अलीराजपुर राज्य से सायर वसूलने का अधिकार प्राप्त हो गया। मकरानी का यह प्रयास असफल रहा । धार राज्य एवं अलीराजपुर राज्य के मध्य विवाद चलता रहा । यह विवाद 1821 ई. में जाकर समाप्त हुआ जब धार राज्य ने परगना बेरसिया ब्रिटिश व्यवस्था के अन्तर्गत दे दिया। उसके बदले में ब्रिटिश शासन द्वारा 10,000 रुपये धार राज्य को देना तय किया तथा परगना बैरसिया पर से धार राज्य के समस्त सामन्ती अधिकार समाप्त हो गये ।[10]

1857 ई. में पूरे भारत में स्वतंत्रता के लिये क्रान्ति हो गयी। परन्तु यहाँ के शासक पूर्ण रूप से ब्रिटिश सरकार के वफादार बने रहे। 15 अक्टूबर 1857 ई. को ग्वालियर राज्य की सेना ने सिंधिया राज्य से बगावत कर दी। वे लोग तात्या टोपे के साथ मिल गये । तात्या टोपे ने उस समय अंग्रेजों की नाक में दम कर रखा था। वह अपने 15000 सैनिकों के साथ बड़वानी तथा चिकल्दा होते हुए 27 नवम्बर 1857 को अलीराजपुर राज्य के मानपुर ग्राम पहुँचे वहाँ के व्यापारियों ने क्रान्तिकारियों की आर्थिक सहायता की। मानपुर के दरोगा ने रात्रि 10 बजे अलीराजपुर के शासक जसवन्तसिंह को क्रान्तिकारियों की गतिविधियों की सूचना दी। राजा जसवन्तसिंह ने मेजर वालेस और केप्टन हचिन्सन को सूचित करने के लिये रात्रि में दो संदेश वाहको को भेजा, जिन्हें क्रान्तिकारियों ने दबोच लिया । राजा की ब्रिटिश हुकूमत के प्रति वफादारी देखकर क्रान्तिकारियों में आक्रोश छा गया । उसकी गतिविधि के विरोध स्वरूप तात्या टोपे अपने साथियों के साथ अलीराजपुर जा पहुँचा। 28 नवम्बर 1857 ई. को उन्होंने रियासत के 5 घोड़े तथा नगरवासियों के घोड़ों पर अधिकार कर अलीराजपुर से 40,000 रुपये बलात वसूल किये । अलीराजपुर के शासक जसवन्तसिंह ने भील सिपाहियों को एकत्र कर तात्याटोपे से मुकाबला करना चाहा, किन्तु भीलों ने राजा का साथ देने से इन्कार कर दिया । नगर छोड़ने से पूर्व क्रान्तिकारियों ने वहाँ के अतिथि गृह तथा पुलिस चौकियों में आग लगा दी तथा क्रान्तिकारी स्वयं झाबुआ राज्य की ओर

कूच कर गये ।[11]

1862 ई. में राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु हो गयी । उसके दो पुत्र थे गंगदेव तथा रूपदेव । जसवन्तसिंह ने अपनी वसियत में अपने राज्य को दोनों पुत्रों में बांट दिया । परन्तु उसकी वसीयत को ब्रिटिश शासन ने नहीं माना। उसने पड़ोसी राज्य के मुखियाँ से विचार विमर्श कर अलीराजपुर का शासक राजा जसवन्तसिंह के बड़े पुत्र गंगदेव को बनाया। परन्तु गंगदेव सबकी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरा वह अयोग्य शासक निकला । तब राज्य की व्यवस्था रूपदेव को देकर उसे राज्य का व्यवस्थापक बना दिया गया। 1871 ई. में राजा गंगदेव की मृत्यु हुई तब उसका छोटा भाई रूपदेव अलीराजपुर के सिंहासन पर बैठा । उसके शासनकाल की राजनैतिक गतिविधियों की जानकारी अधिक नहीं मिलती है। दस वर्ष अलीराजपुर पर शासन करने के पश्चात 1881 ई. में उसका भी निधन हो गया।[12] रूपदेव निसंतान मरा अतः पुनः उत्तराधिकार की समस्या उत्पन्न हो गयी । इस समस्या का समाधान ब्रिटिश गर्वमेण्ट द्वारा किया तथा सौंधवा के ठाकुर के परिवार के एक लड़के विजयसिंह को अलीराजपुर की गद्दी पर बैठाया। परन्तु विजयसिंह को मकरानी एवं पूलमाल के ठाकुर जीतसिंह पसन्द नहीं करते थे अतः उन्होंने उसका विरोध किया। ठा. जीतसिंह स्वयं अलीराजपुर का शासक बनना चाहता था। परिणामस्वरूप वह विद्रोही लोगों के साथ मिल गया तथा मकरानियों से समझौता कर लिया। मकरानी स्वयं भी इतने शक्तिशाली नहीं रहे थे। वहाँ के भील भी ब्रिटिश सरकार के फैसले से असंतुष्ट थे अतः वे भी ठा. जीतसिंह से मिल गये। पटवारी और जिले के अन्य अधिकारियों द्वारा भी उन्हें आर्थिक मदद दी गयी । उधर फैसले के विरोध में छीतू भील जो कि सौरवा का पटेल था तथा तोकिया जीरण के तड़वी भवान ने मिलकर नानपुर, छकतला, भाभरा आदि गांवों में लूटमार की तथा राजपुर गांव के लोगों को भी भयभीत किया। मकरानी सैनिकों ने भी सभी के साथ मिलकर अपनी शक्ति को बढ़ा लिया । उनका नेतृत्व मोहम्मद दाद नामक

व्यक्ति कर रहा था। वह युवा, उत्साही और शक्ति संगठित अपने साथियों को एकजुट करने में निपुण था । उसने खानदेश छोटा उदयपुर, गुजरात आदि जगह से भी साथियों को एकत्रित किया ।

इस उपद्रव ने विकट रूप धारण कर लिया। उपद्रवी कोई समझौता करने को तैयार नहीं थे। तब पोलिटिकल ऐजेण्ट मेजर जान बिडल्फ ने विद्रोहियों को दबाने के लिये सेण्ट्रल इण्डिया और मालवा कोर के 63 लोगों को लेकर सोखा दर्रा के पास आक्रमण किया। आपसी मुठभेड़ में मोहम्मद दाद मारा गया । उसकी मृत्यु के साथ ही विद्रोह का अन्त हो गया। तब ब्रिटिश गर्वमेण्ट द्वारा भी ठा. जीतसिंह, छीतू, भवान को छोड़कर शेष विद्रोहियों को माफी दे दी गयी। छीतू और भवान जम्बू गोड़ा की तरफ भाग गये और अन्त में पकड़े गये और इन्दौर जेल में भेज दिया गया । ठा. जीतसिंह वहां से भागकर गुजरात चला गया और वहीं उसकी मृत्यु हो गयी उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी ।[13]

विजयसिंह का कार्यकाल ऐसी ही विषम परिस्थितियों में गुजरा और उसी दौरान 1890 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी । वह भी निसंतान मरा था । पुनः इस समस्या का निवारण ब्रिटिश सरकार द्वारा किया गया। उसने सौंधवा परिवार के प्रतापसिंह को गोद लाकर अलीराजपुर की गद्दी पर बैठाया ।[14] प्रतापसिंह, विजयसिंह का चचेरा भाई था। उसकी आयु मात्र 10 वर्ष की थी ।

सन् 1899 ई. में पड़े भीषण अकाल का प्रभाव इस राज्य पर भी पड़ा। सन् 1904 ई. में इन्दौर महाराजा यहाँ आये और शासन संबंधी पूर्व अधिकार प्रदान किये। तब अलीराजपुर राज्य की आय केवल 1 लाख रुपया थी। राजा प्रतापसिंह ने शासन में सुधार कार्य कर अपने 44 वर्षों के शासनकाल में 10 लाख रुपये तक पहुँचा दिया। राज्य की चहुँमुखी उन्नति के लिए माल न्याय, जंगलात, जनकार्य, चिकित्सा, शिक्षा सायर, आबकारी आदि के विभाग भी नये ढंग से संगठित किये गये। पुलिस और फौज भी संगठित की गई। राज्य में घुड़सवारों का एक रीसाला और

मिलट्री बेण्ड भी था । अलीराजपुर में विशाल सुन्दर इमारतें, चिकित्सालय, विद्यालय, सड़के, पुल, कुए बिजली तथा टेलीफोन आदि का भी प्रबंध किया गया।[15] प्रतापसिंह ने स्वतंत्र बुद्धि, निष्पक्ष नीति और न्यायोचित ढंग से शासनकार्य का संचालन किया । राज्य के अधिकारी नियुक्त करने में अनुभव, योग्यता और चरित्र पर पूरा ध्यान दिया जाता था। प्रतापसिंह के समय में दीवान के पद पर राय बहादुर बामुनराव बापुजी नायक, खानबहादुर कोरम्सजी पटेल, खान बहादुर सोराब, कावस डोटीवाला, रायबहादुर अमृतलाल शर्मा, रायसाहब छोटालाल मांकड जैसे विख्यात व्यक्ति रहे।[16]

सन् 1947 ई. में प्रतापसिंह को हृदय की बीमारी का कष्ट बढ़ जाने से राजकाज का भार अपने पौत्र युवराज सुरेन्द्रसिंह को सौंप दिया था। यहाँ के मूल निवासी भील, भिलालों की ओर भी प्रतापसिंह ने विशेष ध्यान दिया था । उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क कायम करने और उनकी तकलीफों तथा शिकायतों पर तुरन्त सुनवाई का पूरा प्रयत्न करता था। राजा प्रतापसिंह का प्रभाव व विश्वास इतना व्यापक था कि अपराधी भी स्वयं आकर आत्मसमर्पण कर देते थे । जेल से भागे हुए कैदियों को गिरफ्तार करने और चोरों और डाकुओं को पकड़वाने में लोग बड़ी मुश्तेदी से शासन का साथ दिया करते थे । बेगार और लाग 40–42 वर्षों तक लगातार बन्द रही थी । कोई भी दमनकारी कानून लागू करने का मौका ही नहीं आया था । प्रतापसिंह के समय में न्याय व्यवस्था बड़ी ही सरल थी। उसमें विलम्ब नहीं किया जाता था ।[17]

राजा प्रतापसिंह के समय में किसानों को सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थी। जमीन का बन्दोबस्त न होने पर भी लगान का कोई विशेष भार नहीं था। एक हल और एक बेल जोड़ी से जितनी जमीन जोती जा सकती थी, उस पर लगान तय हो जाता था । जो कि आठ आना बीघा से लेकर दो रुपया बीघा तक होता था । प्रतापसिंह प्रजा के प्रति इतना सचेत रहता था कि स्वयं दीपावली के बाद किसानों की परिस्थितियों का निरीक्षण करने के लिए निकलता था और यथासम्भव परिस्थिति देखकर

मृत्यु, बीमारी, बेल के मर जाने अथवा ऐसे ही अन्य कारणों से लगान में छूट दे दी जाती थी । इसके अतिरिक्त किसान को तकाबी भी दी जाती थी ।[18]

प्रतापसिंह स्वभाव से उग्र होते हुए भी प्रजा के प्रति अत्यन्त दयालू था । राज्य के सभी विभागों का कार्य स्वयं निरीक्षण करता था। प्रतापसिंह यह भलीभांति जानता था कि सरकारी कामकाज में कितनी रियायत करना व कब करना और ढील देना चाहिए। राज्य का कामकाज पहले ही अपने पौत्र सुरेन्द्रसिंह को सौंप चुका था, अन्त में सन् 1948 ई. को रियासती सचिवालय की अनुमति से शासन का सम्पूर्ण कार्यभार सुरेन्द्रसिंह को सौंप दिया था। जून 10, 1948 ई. को प्रतापसिंह का निधन हो गया और वह अपने पीछे लम्बे सफल शासन की उज्जवल कीर्ति छोड़ गया।[19]

राजा प्रतापसिंह के सन् 1904 ई. में केवल एक पुत्र फतहसिंह हुआ उसकी प्रतापसिंह के ही समय में ही मृत्यु हो गई थी ।[19] फतहसिंह योग्य पिता का योग्य पुत्र था । उसका प्रारम्भिक शिक्षण कार्य इन्दौर के डेली कालेज और राजकोट के राजकुमार कालेज में हुआ था । अध्ययन के प्रति इतनी रूचि थी कि उसने अपने लिए एक ग्रन्थालय का संग्रह किया था। अलीराजपुर का चिकित्सालय उसके स्वयं के प्रयत्नों का स्मारक समझा जाना चाहिए । फतहसिंह क्रिकेट का ख्यातिप्राप्त अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी था । सन् 1941 ई. में निमोनिया के कारण बम्बई में फतहसिंह का निधन हो गया ।[20]

फतसिंह का पुत्र सुरेन्द्रसिंह राजा प्रतापसिंह के बाद अलीराजपुर का राजा बना और मई 1, 1948 ई. को राजगद्दी पर बैठा । सुरेन्द्रसिंह का जन्म मार्च 17, 1923 ई. को हुआ था। उसकी शिक्षा दीक्षा इन्दौर और इग्लैण्ड में हुई किन्तु 1942 ई. में एक मोटर दुर्घटना के कारण पढ़ाई बीच में ही छूट गई । अलीराजपुर राज्य के मध्यभारत में विलिन होने के बाद राजा सुरेन्द्रसिंह ने दिल्ली जाकर केन्द्रीय सरकार के विदेश विभाग में नौकरी करना प्रारम्भ किया और चेकोस्लोवाकिया में भारत सरकार के

डिप्टीकामर्स सचिव नियुक्त किया गया ।[21]

अलीराजपुर में हाईकोर्ट, जिला व सेशन कोर्ट पहले व दूसरे श्रेणी के न्यायालय थे और हर परगने में एक न्यायालय नियुक्त था। न्याय प्रक्रिया अत्यन्त सरल व सबके लिए सुलभ थी। नगर सेविका (नगर पालिका) का सारा प्रबंध राज्य की ओर से ही होता था । हाउस टेक्स के अतिरिक्त दूसरा कोई टैक्स नहीं लिया जाता था। राज्य में कोई विशेष उद्योग–धंधा नहीं था। खेती और जंगली पैदावार घास, लकड़ी, गोंद, मोम तथा शहद आदि व्यापार के मुख्य साधन थे । राहदरी भी बहुत ही कम लिया जाता था । मोटर व मशीनरी आदि पर कोई महसूल नहीं था। अन्य राज्यों की तरह यहाँ महसूल के लिए लोगों के सामान की तलाशी कभी नहीं ली जाती थी। सन् 1924 ई. में यहाँ एक जीनिंग खोली गई, पर वह चली नहीं । पढ़ाई के लिए कोई फीस नहीं ली जाती थी, बल्कि उच्च शिक्षा के लिए स्कालरशिप दी जाती थी । फतह क्लब उस समय अनेक प्रकार के खेलों का केन्द्र था । जिसमें बाहर के बड़े–बड़े खिलाड़ी आया करते थे।[22]

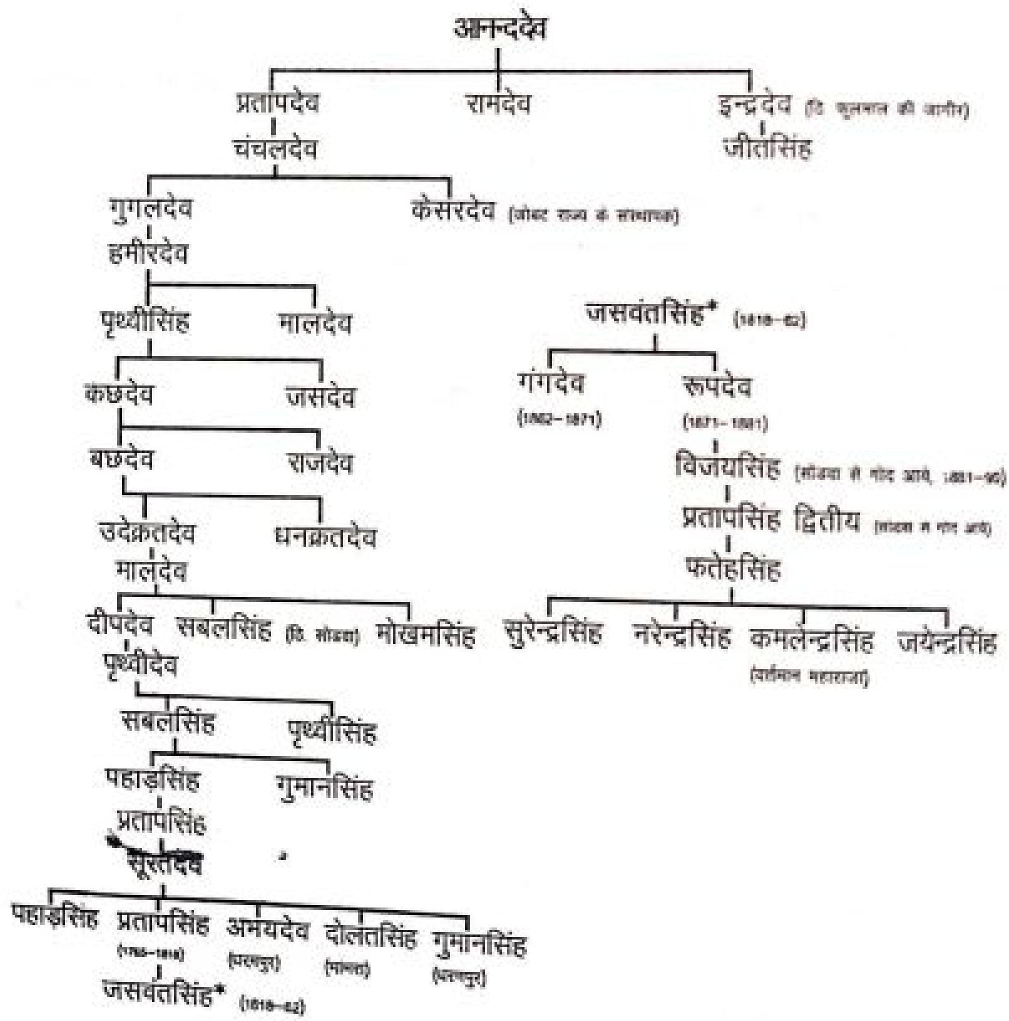
अलीराजपुर राज्य में उस समय सोण्डवा सबसे बड़ी जागीर थी जिसमें 13 गांव लगते थे। लक्ष्मणी और मालवाई यहाँ बहुत प्राचीन स्थान हैं। लक्ष्मणी अलीराजपुर के निकट स्थित है जहाँ प्राचीन मन्दिरों के खंडहर हैं तथा जैन व वैष्णव की मूर्तियाँ मिली हैं। मालवाई अलीराजपुर से पश्चिम में 5 कि.मी. दूर देवी का प्राचीन मन्दिर हैं ।[23] अन्य भी कुछ स्थान ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। उस समय अलीराजपुर में कोई विशेष मेला या त्यौहार नहीं होता था लेकिन भीलों का भगोरिया त्यौहार अपनी ही विशेषता रखता था, जो कि होली से पहले उन सब स्थानों पर होता है, जहाँ कि हाट लगते थे । आज भी भीलों के स्त्री–पुरुष और बाल–बच्चे बहुत बड़ी संख्या में उसमें सम्मिलित होते हैं। वे नाचने गाने में इतने मस्त हो जाते हैं कि दुनिया की सारी परेशानियाँ भूल जाते हैं। गांव–गांव से वहाँ मुख्य व्यक्ति अपनी 'गेर' के साथ इस त्यौहार में सम्मिलित होते थे।

ग्रामीण जनता का यही सबसे बड़ा मनोरंजन था। अलीराजपुर में बालपुर का भगोरिया आज कल विश्व विख्यात माना जाने लगा है ।

संदर्भ

अलीराजपुर राज्य का वशं वृक्ष

महाराजा उम्मेदसिंह (जोधपुर) के जन्मशताब्दी वर्ष (2003 ई.) के उपलक्ष्य में मेहरानगढ़ म्युजियम ट्रस्ट जोधपुर द्वारा प्रकाशित राठौड़ वंशावली में महाराजा जयचन्द्र के पुत्र बरदाईसेन के पौत्र और सेतराम के पुत्र सीहा का मारवाड़ में आना व राज्य करना (1250–1273 ई.) बताया है। इसी प्रकार इसी वंशावली में बरदाईसेन के भाई जयपाल का सीधे मालवा में पहुँचकर उनके वंशजों द्वारा अलीराजपुर–जोबट राज्य की स्थापना करना दर्शाया गया है। राजा जयपाल की 21 वीं पीढ़ी में राजा आनन्ददेव हुआ।



7. जोबट राज्य का संक्षिप्त इतिहास

जोबट राज्य 22^0 21′ और 22^0 30′ देशान्तर से 74^0 28′ और 74^0 30′ उत्तरी अक्षांक्ष के मध्य स्थित था ।[1] सम्पूर्ण राज्य का क्षेत्रफल 131. 20 वर्ग मील था । इसके उत्तर में झाबुआ रियासत थी तो दक्षिण–पश्चिम में अलीराजपुर रियासत थी और पूर्व में अमझेरा[2] रियासत थी।

जोबट का प्राचीन नाम घोड़ा था। 16 सितम्बर, 1636 ई. में इस जगह का नाम जोबट पड़ा । जोबट का किला जोबट राज्य की राजधानी था।[3]

जोबट राज्य के शासक राठौड़ राजपूत थे । ऐसा माना जाता है कि ये कन्नौज के राजा जयचन्द के वंशज थे। राजा जयचन्द्र के पुत्रों में से एक पुत्र महाराज रामदेव अपने राज्य को छोड़कर इस क्षेत्र में बस गया था। उस समय भीमरसत भील का वहाँ प्रभाव था । महाराज रामदेव ने भीमरसत भील को पराजित करके इस क्षेत्र पर अधिकार किया और वि. सं. 1425 (13–1369 ई.) में अपना राज्य स्थापित किया । उसने डोर[4] क्षेत्र तक अपना अधिकार कर लिया था।[5]

यह क्षेत्र पूर्व में 'राठ' कहलाता था जो बाद में जोबट तथा अलीराजपुर राज्य कहलाया। राजा रामदेव की चौथी पीढ़ी में उस राज्य का शासक दरार सेन हुआ। दरार सेन के चार पुत्र थे दीपसेन, जयसेन, हमीरदेव और सोजनजी। दीपसेन और जयसेन दोनों भाइयों ने भाभरा क्षेत्र के मोती पोल पर अपना राज्य कायम किया जो बाद में अलीराजपुर राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सबसे छोटे पुत्र सोजन ने जोबट राज्य के अन्तर्गत हीरापुर में अपनी जागीर स्थापित की ।[6] कुछ समय पश्चात् सोजन के वंशजों के हीरापुर से अपनी राजधानी जोबट को बनाया। सोजन का उत्तराधिकारी महाराजा जोधसिंह हुआ। उसने वि.सं. 1648 (1591 ई.) में किले का निर्माण कराया था। जोधसिंह का उत्तराधिकारी

वीरमदेव हुआ। वह अपने पिता जोधसिंह के मरणोपरान्त वि.सं. 1688 (1631 ई.) में जोबट की गद्दी पर बैठा।[7] राजा रामदेव मुगल शासन के प्रसिद्ध उत्तराधिकार युद्ध धर्माट के युद्ध में औरंगजेब की तरफ से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ था। वीरमदेव के दो पुत्र माधोसिंह एवं दौलतसिंह थे । वीरमदेव के वीरगति को प्राप्त होने के पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र माधोसिंह जोबट का शासक बना।[8] औरंगजेब वीरमदेव की स्वामिभक्ति एवं वीरता से बहुत प्रसन्न था । अतः वीरमदेव के पुत्र माधोसिंह को नगारा, निशान, आबदागिरी और छत्र तथा उसके पिता के स्थान पर जोबट के राज्याधिकार की मान्यता प्रदान की ।[9]

दूसरी ओर अलीराजपुर स्टेट गजेटियर से ज्ञात होता है कि 1443 ई. के लगभग आनन्ददेव नामक एक राठौड़ राजपूत ने उस क्षेत्र में एक दुर्ग का निर्माण करवाया था। उसी आनंद देव के दो पुत्र जुगलदेव (गुगलदेव) व केसर देव थे। उसमें से जुगलदेव तो अलीराजपुर का स्वामी बना और केसर देव ने जिस क्षेत्र पर अधिकार किया वह क्षेत्र 'जोबट' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।[10]

अंग्रेजों द्वारा मालवा पर आधिपत्य स्थापित करने के साथ ही जोबट राज्य का भी ब्रिटिश राज्य से राजनैतिक संबंध स्थापित हो गया।

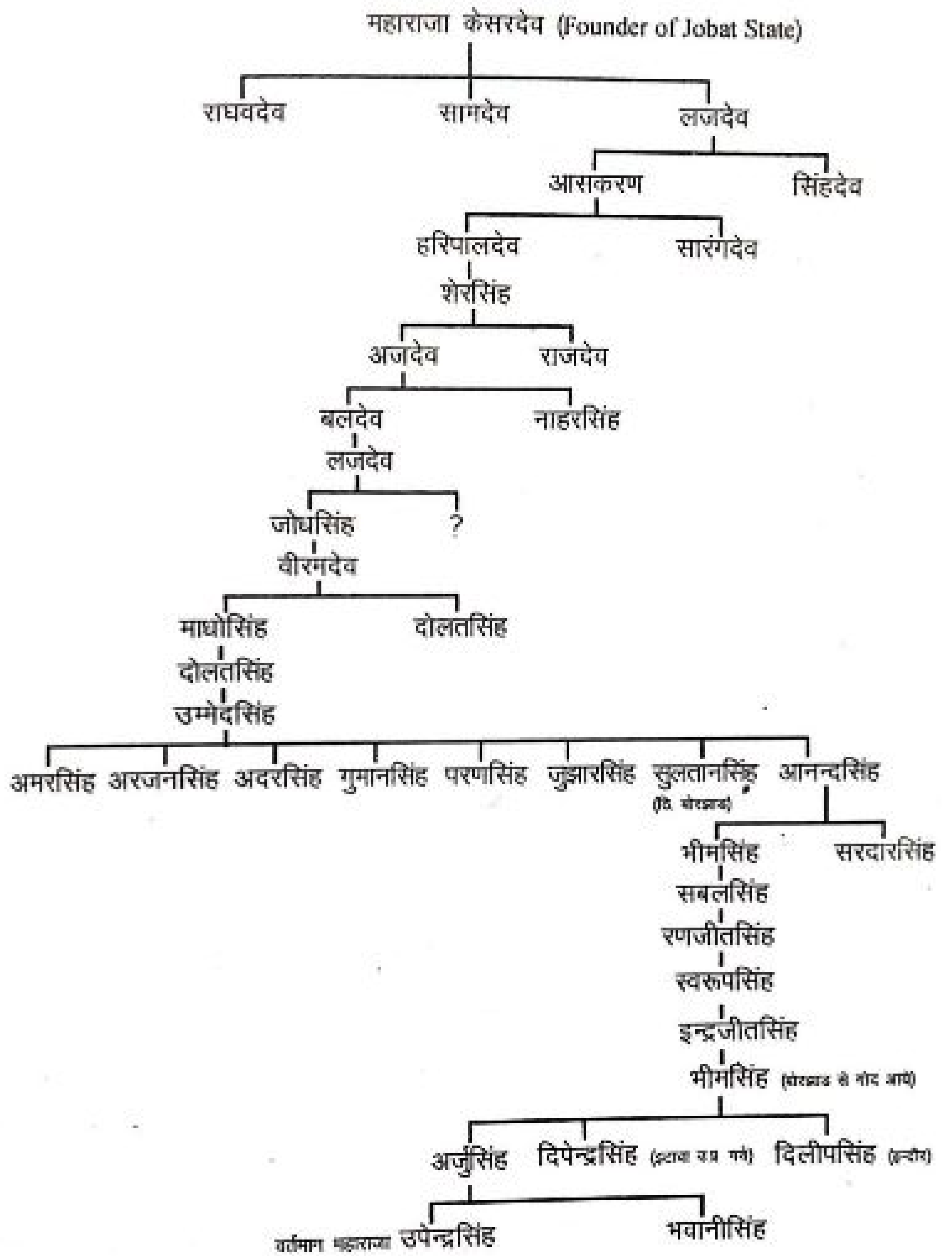
जोबट के शासक माधोसिंह के पश्चात् का इतिहास प्राप्त नहीं होता तथा केशवदेव द्वारा पृथक से जोबट राज्य की स्थापना का उल्लेख अलीराजपुर गजेटियर में किया गया है । जोबट राज्य का कोई क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध आधार सामग्री से प्राप्त नहीं होता है । वहाँ की वंशावली से ज्ञात होता है कि माधोसिंह का उत्तराधिकारी दौलतसिंह हुआ। माधोसिंह निःसंतान मरा था । अतः दौलतसिंह को गोद लिया गया था । दौलतसिंह का उत्तराधिकारी उम्मेदसिंह हुआ । उम्मेदसिंह का उत्तराधिकारी आनन्दसिंह हुआ तथा आनन्दसिंह का उत्तराधिकारी सबलसिंह हुआ। सबलसिंह का शासनकाल 1831 से 1849 ई. तक रहा । उसके निधनोपरान्त रणजीतसिंह

जोबट का शासक बना । उसका शासनकाल 1849 से 1874 ई. तक रहा। रणजीतसिंह का उत्तराधिकारी स्वरूपसिंह हुआ। वह 1874 से 1897 ई. तक जोबट का शासक रहा। स्वरूपसिंह का उत्तराधिकारी इन्द्रजीत हुआ। उसने स्वेच्छा से राज त्याग कर दिया तब उत्तराधिकार की समस्या उत्पन्न हो गयी तब जोबट रियासत के ही ठिकाने बोरझड़ के जागीरदार ठाकुर माधोसिंह के छोटे पुत्र भीमसिंह को गोद लाया गया ।[11]

भीमसिंह का जन्म 10 नवम्बर, 1915 ई. को हुआ था । भीमसिंह ने देहली कॉलेज इन्दौर से 10वीं पास की थी और 1935 ई. में इण्टरमीडियेट (12वीं) सेण्ट जान्स कॉलेज आगरा से उत्तीर्ण की थी । राणा भीमसिंह ने बड़वानी राज्य के दीवान बहादुर 'सर' हीरालाल एन गोसालिया से दीवान और प्रेसीडेण्ट स्टेट कौंसिल आदि का प्रशासकीय प्रशिक्षण प्राप्त किया था।[12] राणा भीमसिंह उस समय अवयस्क था । अतः बदनसिंह उसका संरक्षक भी था । बदनसिंह का प्रमुख कार्य तत्कालीन पोलिटिकल ऐजेण्ट कर्नल फ्रेजर से सतत सम्पर्क बनाये रखना था । वह एक अच्छा प्रशासक, सहृदय, कुशल खिलाड़ी और शिक्षाविद था उसने जोबट के राणा को काफी प्रभावित किया था। 19 जनवरी, 1938 ई. को बदनसिंह की असामयिक मृत्यु हो गयी, फलस्वरूप जोबट राणा भीमसिंह ने अपना एक सच्चा मित्र और दार्शनिक तथा अपने विश्वास प्राप्त संरक्षक को खो दिया।[13] 1935–36 ई. के दौरान राणा भीमसिंह को राज्य के समस्त अधिकार प्राप्त हो गये। इस मौके पर राणा भीमसिंह ने विशेष उत्सव का आयोजन किया । इस अवसर पर मालवा का पोलिटिकल एजेण्ट एम.एस. फ्रेजर भी जोबट में उपस्थित हुआ था । इस उत्सव में भाग लेने के लिये फ्रेजर 13 मार्च, 1936 ई. की शाम को जोबट पहुँचा था । राणा भीमसिंह द्वारा उसके स्वागत की विशेष व्यवस्था की गयी थी। स्वयं राणा भीमसिंह एवं उसके पुत्र कुंवर विश्वनाथसिंह ने फ्रेजर की आगवानी की । उत्सव के अवसर पर जोबट रियासत की दोनों जागीरों के जागीरदार भी उपस्थित थे।[14] ठिकाना बोरझड़ के ठाकुर नवलसिंह और कांडा ठाकुर

गंभीरसिंह ने भी फ्रेजर का स्वागत किया । उनके साथ जोबट का राजस्व अधिकारी कुंवर नरपतसिंह भी था। उस अवसर पर फ्रेजर ने उपस्थित सदस्यों को संबोधित किया तथा गवर्नर जनरल का पत्र राणा भीमसिंह को प्रस्तुत किया।

जोबट राज्य का वंश वृक्ष



अध्याय – 4

रतलाम रियासत के राठौड़ जागीरदार एवं उनकी वंशावली

ठिकाना सरवन :

रतलाम राज्य के अन्तर्गत ठिकाना सरवन[1] के जागीरदार रामचन्द्रोत खांप के राठौड़ राजपूत हैं । सरवन अरावली पहाड़ियों के बीच बसा हुआ सुव्यवस्थित ठिकाना है। यहाँ की जलवायु सुखद एवम् शीतल है। यह ठिकाना तीन नदियों के बीच – पावन नदी, चावड़ाखेड़ी नदी व घोड़ादेव नदी के संगमस्थल पर बसा हुआ है । यहाँ श्रवण कुण्ड नामक एक तीर्थ स्थान है। ऐसी मान्यता है कि यहाँ श्रवणकुमार अपने माता–पिता के साथ कुछ देर रुके थे। यह स्थान गाँव के बाहर स्थित है। इसी से जनधारणा है कि श्रवणकुमार के नाम से इस स्थान का नाम श्रवण पड़ा जो कालान्तर में अपभ्रंश होकर 'सरवन' हो गया।

दलपतोत महेशदास के पाँचवें पुत्र रामचन्द्र का जन्म बूंदी के हाड़ा राजसिंह[2] की लड़की सूरजकुंवर की कोख से हुआ था। रामचन्द्र के जीवन का कोई भी विवरण हमें नहीं मिलता है। हां इतना अवश्य मिलता है कि जब अगस्त 31, 1642 ई. को शाहजहाँ ने महेशदास को दो हजारी जात दो हजार सवारों का मनसब दिया था तब उसे जागीर के रूप में जालौर[3] का परगना भी मिला था।[4] तब महेशदास शाहजहाँ से छुट्टी लेकर जालौर के लिए रवाना हुआ साथ में अपने ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह को भी ले गया। जालौर पहुँचकर महेशदास ने अपने इस परगने पर अधिकार स्थापित किया और वहाँ आवश्यक प्रबंध कर अपने परिवार को भी जालौर बुला लिया। महेशदास के पुत्र रायमल, कल्याणदास, फतेहसिंह और

रामचन्द्र और अन्य कुटुम्बजन ।[5]

महेशदास के पुनः शाहजहाँ की सेवा में आगरा लौट आने के बाद जालौर परगने का शासन प्रबंध संगठित करने में उसने अपने पुत्रों रायसल, कल्याणदास और रामचन्द्र का सहयोग लिया क्योंकि महेशदास के साथ–साथ रतनसिंह और फतेहसिंह शाही मनसबदार हो चुके थे।[6] अगर रामचन्द्र को भी शाही मनसब प्राप्त होता तो अपने भाइयों के साथ उसका भी उल्लेख होता किन्तु ऐसा नहीं हुआ। महेशदास के बाद रतनसिंह को जालौर की जागीर दी गयी। 1650–1651 ई. को छोड़ते हुए कोई भी वर्ष ऐसा न बीता था जिसमें रतनसिंह को जालौर से बाहर न रहना पड़ा हो । अतः जालौर का शासन प्रबंध वह अपने इन्हीं भाई बन्धुओं के सहयोग से करता था। नई जागीर रतलाम मिलने के बाद उसने अपने पूरे कुटुम्ब को जालौर से रतलाम बुलवा लिया ।[7] इस तरह रतनसिंह के परिवार के साथ–साथ रामचन्द्र का परिवार भी रतलाम आ गया किन्तु उसे या उसके किसी पुत्र को जागीर मिलने का उल्लेख नहीं मिलता है। सन् 1793–94 ई. (सं. 1850 वि.) में रामचन्द्र के एक वंशज को रतलाम राज्य में जागीर अवश्य मिली, किन्तु यहाँ उसे किसने प्रदान की और किसको दी कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है ।[8] इसके विपरीत रतलाम स्टेट गजेटियर के अनुसार सन् 1728 ई. में रतलाम के महाराजा मानसिंह (1716–43 ई.) द्वारा नाहरसिंह को सरवन की जागीर दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[9] किन्तु गुरां ग्रंथ में लिखा है कि महाराज पद्‌मसिंह (1773–1800 ई.) ने सं. 1840 में सरवन जागीर में दिया जिस पर सं. 1849 में नाहरसिंह ने अधिकार कर लिया ।[10] सरवन ठिकाने की प्राचीन वंशावली व सनद के अनुसार इतना तो स्पष्ट है कि नाहरसिंह ने सरवन ठिकाने की स्थापना की। सं. 1840 में अर्थात सन् 1783 ई. में रतलाम की गद्दी पर मानसिंह नहीं अपितु पद्‌मसिंह बैठा था। अतः गुरां ग्रंथ का कथन अधिक विश्वसनीय जान पड़ता है।

रामचन्द्र के चार पुत्र हिम्मतसिंह, महासिंह, मोखमसिंह व अनूपसिंह हुए । इनमें से मोखमसिंह बनजारों के साथ हुई लड़ाई में मारा गया था।[11] हिम्मतसिंह, अनूपसिंह के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है। महासिंह के तीन पुत्र सुलतानसिंह, बख्तावरसिंह और मुकुन्दसिंह हुए। मुकुन्दसिंह के बाद जसवन्तसिंह। गुरां ग्रंथ के अनुसार जसवन्तसिंह को गाँव ठीकरया मिला। ख्यात में आगे लिखा है कि जसवन्तसिंह बांसवाड़ा गया और लौटते हुए सरवन की सीमा पर उसका किसी से झगड़ा हुआ, जिसमें वह मारा गया। इसी दिन उसके पुत्र नाहरसिंह की सूरज पूजा थी और वह उस समय सात दिन का था। जसवन्तसिंह के पीछे उसकी दो पत्नियाँ सती हुई व उसका ठीकरया गाँव में पक्का चबूतरा भी बनाया गया था।[12]

जसवन्तसिंह के पश्चात् नाहरसिंह को गाँव ठीकरया मिला उसके पश्चात् उसे ठिकाना सरवन की जागीर मिली। नाहरसिंह को संभवतया यह ठिकाना मुंडकटाई में प्राप्त हुआ होगा। सैलाना के महाराज लक्ष्मणसिंह ने धोखे से किसी घटना में नाहरसिंह को मार दिया जिसकी मुंडकटाई में गाँव घटवा मिला ।[13] नाहरगढ़ का किला जो सरवन से 6 कि.मी. दूर एक टेकरी पर है, नाहरसिंह ने बनवाया था। नाहरसिंह के पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र खुमानसिंह सरवन ठिकाने की गद्दी पर बैठा। नाहरसिंह का द्वितीय पुत्र सालमसिंह जिसके पौत्र लालसिंह को सरवन की ओर से 'केलगज' की जागीर दी गई। खुमानसिंह के पश्चात् गोपालसिंह सरवन की गद्दी पर बैठा । गोपालसिंह की छत्री और चबूतरा सरवन में बनवाया गया ।[14] गोपालसिंह के पश्चात् जोरावरसिंह ठिकाने की गद्दी पर बैठा। जोरावरसिंह ने ठिकाने में चारभुजा भगवान का मन्दिर बनवाया जिसका उद्यापण सं. 1935 में किया गया। इसके अतिरिक्त वृन्दावन में यात्रा के दौरान कूंज कराई जिसका बन्दोबस्त मानसिंह ने किया । इसके अतिरिक्त कोसीथल में शिखरबंद मन्दिर और रामद्वारा तथा तालाब का भी निर्माण कराया ।[15] जोरावरसिंह के पश्चात् मानसिंह सरवन ठिकाने की

गद्दी पर बैठा ।

सं. 1920, सन् 1864 ई. में रतलाम महाराजा भैरवसिंह का देहान्त हो गया । उसके बाद रणजीतसिंह जिसकी उम्र उस समय 3 वर्ष की थी रतलाम की गद्दी पर बैठा । सुपरिटेण्डेण्ट मुंशी शाहामतअली के निर्देशानुसार सरवन के ठाकुर मानसिंह को इस दौरान रतलाम का शासन प्रबन्ध का कामकाज सौंपा गया । मानसिंह ने 16 वर्ष तक रतलाम के शासन प्रबंध को देखा। इस कर्त्तव्य परायणता से प्रसन्न होकर रणजीतसिंह ने सं. 1936 में मानसिंह को 'राय बहादुर' की पदवी से सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त सं. 1942 वि. को महाराजा रणजीतसिंह ने मानसिंह को सोने का कड़ा, लंगर और घड़ी आदि की हमेशा के लिए सनद दी ।[16]

मानसिंह के बाद अमरसिंह सरवन ठिकाने की गद्दी पर बैठा । इस अवसर पर आस–पास के सभी ठिकानों के जागीरदारों ने सम्मिलित होकर अमरसिंह को घोड़े, सरपाव व अन्य उपहार आदि भेंट किये।[17] अमरसिंह ने अपने समय में 'अमर सागर' तालाब का निर्माण कराया था।

अमरसिंह के बाद रघुनाथसिंह प्रतापसिंह का तीसरा पुत्र सं. 1959 वि. को गोद लेकर सरवन की गद्दी पर बैठाया गया। सं. 1959 वि. 15 अक्तूबर, सन् 1902 ई. को इस उत्तराधिकार की मंजूरी गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया के मारफत पोलिटिकल एजेन्ट का पत्र नं. 196 सी. ता. 5 फरवरी सन् 1905 ई. को आया कि आपकी गद्दीनशीनी गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया ने स्वीकार कर ली है । अतः ता. 3 जुलाई, सन् 1905 ई. को रतलाम महाराजा सज्जनसिंह अपने पूरे लवाजमें के साथ आया और रघुनाथसिंह की तलवार बंधाई की रस्म पूरी की गई ।[18] रघुनाथसिंह के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्रसिंह सरवन की गद्दी पर बैठा । महेन्द्रसिंह बचपन से ही बहुमुखी प्रतिभा का धनी था, उसे निर्माण कार्य, बागवानी तथा प्रशासन का काफी अनुभव था। उसने अपने समय में महेन्द्र सागर तालाब का निर्माण भी कराया था। वह एक उच्चकोटि का लेखक भी था उसने मालवी बोली में गीता सार, गीता ज्ञान चुटकी में भक्त जलाराम व बाल

सुलभ के 108 मनके आदि किताबें लिखीं ।[19]

ठाकुर महेन्द्रसिंह की प्रशासन और प्रबन्धकार्य की दक्षता को देखते हुए ही रतलाम महाराजा ने उसे समय–समय पर अक्टूबर 20, 1947 को 'मिनिस्टर–इन–वेटिंग, मार्च 16, 1948 को 'मेजर' की पदवी से सम्मानित किया था।[20] रतलाम महाराजा लोकेन्द्रसिंह जब लंदन में मोहनबागान की फुटबाल टीम से वर्ल्डकप में खेलने गया तब महाराजा लोकेन्द्रसिंह ने महेन्द्रसिंह को रतलाम राज्य का कार्यभार सौंप कर 'पावर ऑफ एटर्नी' देकर लंदन चला गया –

श्री

अज पेशगाह श्रीमंत श्री जी हुजूर साहब बहादुर दामइकबालहु

हुक्म

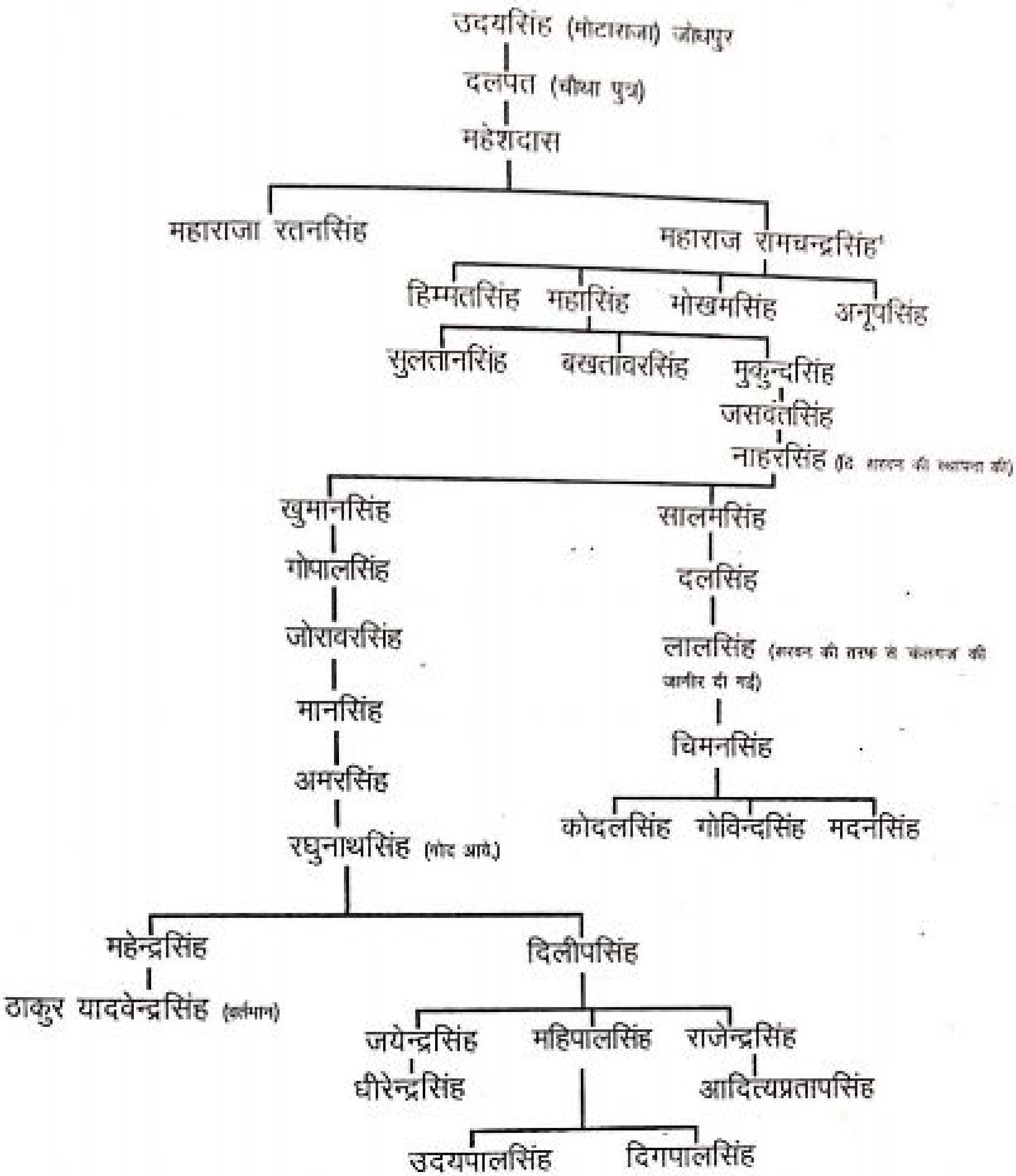
चुंके मावदौलत सफर विलायत के लिए रवाना होने वाले हैं व हमारी अदम मोजूदगी में कारहाय मुत अल्लिका का इतंजाम करना जरूरी समझकर हुक्म सादिर फरमाते हैं के मावदौलत की सफरे विलायत से वापसी होने तक मा. बदौलत के जिम्मे के तमाम काम मेजर ठाकुर महेन्द्रसिंह जी जागीरदार सरवन अंजाम देते रहेंगे व जो कागजात व अेहकामात जरूरी मावदौलत के दस्तखत से नाफिज होने के हों उन पर मेजर ठाकुर महेन्द्रसिंहजी जागीरदार सरवन के दस्तखत होते रहें – हुक्महाजा की इत्तला मुत अल्लिका दफातिर को दी जाकर असलहाजा फाइल में रहे फक्त ता. 2–5–48 ।[21]

महेन्द्रसिंह ने एक वर्ष तक रतलाम राज्य चलाया और जब सभी रियासतों का भारत में विलय हुआ तब महेन्द्रसिंह ने ही भारत सरकार को रतलाम राज्य सुपुर्द किया। महेन्द्रसिंह हसमुख और मिलनसार व्यक्तित्व के होने के कारण इस दौरान कई प्रतिष्ठित अंग्रेज गवर्नरों से मुलाकात की। यहाँ तक कि जब माउंटबेटन वायसराय बनकर भारत आया था तो उसे रतलाम में दावत पर बुलाया गया था। ठाकुर महेन्द्रसिंह के बाद उसका पुत्र

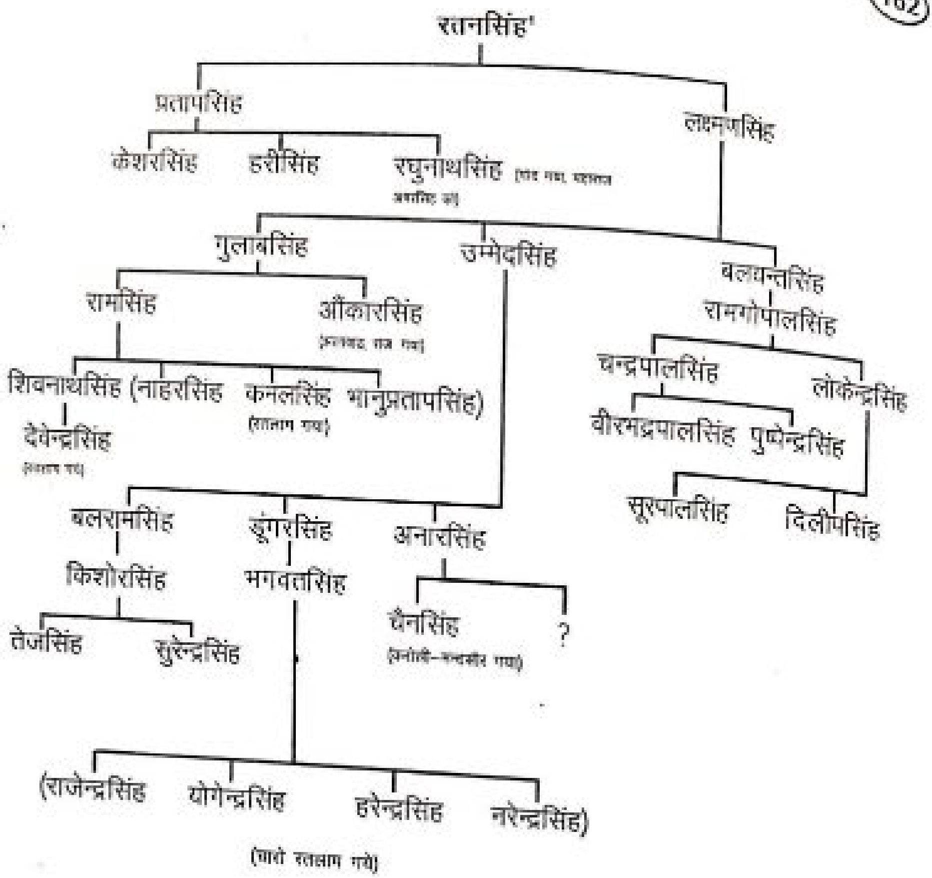
यादवेन्द्रसिंह सरवन ठिकाने के प्रमुख हैं।

रतलाम स्टेट गजेटियर के अनुसार सरवन ठिकाने का कुल क्षेत्रफल 55.57 वर्ग मील था। 1901 ई. की जनगणना के अनुसार इस ठिकाने की जनसंख्या 3,231 थी। इस ठिकाने की वार्षिक आमदनी 30,434 ब्रिटिश कलदार थी तथा टांके के रूप में इस ठिकाने को 6,086 रुपये ब्रिटिश कलदार के रूप में रतलाम राज्य को देने पड़ते थे ।[21]

ठिकाना – सरवन



1. महाराज महेशदास का पांचवॉं पुत्र था, जिसे रतलाम की ओर से सरवन की जागीर दी गई। रतलाम स्टेट गजेटियर, वंशावली चार्ट ।



1. सरवन में इनका आना रियावन से हुआ है ।

ठिकाना अमलेटा :

रतलाम राज्य के अन्तर्गत ठिकाना 'अमलेटा' के जागीरदार रतनसिंहोत राठौड़ हैं । रतलाम महाराजा पृथ्वीसिंह ने ई. सन् 1758 में अपने छोटे भाई कुशालसिंह को यह जागीर प्रदान की थी ।[1] महाराज कुशालसिंह के जन्म के संबंध में गुरां निर्भयसिंह के संग्रह में बड़ा रोचक एवं ऐतिहासिक प्रंसग है, जिसे यहाँ देना उपर्युक्त रहेगा ।

महाराजा मानसिंह की जब ई. सन् 1743 में मृत्यु हो गइ तब उनकी रानी राणावती जी (जोरावरसिंह भीमसिहोंतरी बनेड़ा की भाइप बरड़या) ने सती होना चाहा, किन्तु गर्भवती होने से धर्म और शास्त्र इसकी अनुमति नहीं देते थे। अतः रानी ने कठोर निर्णय कर स्वयं अपने हाथों से अपना पेट चीरकर गर्भस्थ शिशु को बाहर निकाला और कसकर पेट पर कपड़ा बांध लिया। रानी ने बालक[2] के लिए कहा कि कोई इसे ले लो किन्तु स्वयं के वंश वाले (परिवार के लोग) इस बात से डर गये कि यदि इस बच्चे का पालन पोषण भलीभाँति नहीं हुआ तो कहीं सती श्राप न दे दे । इस डर से राजवंश के लोग बच्चे को लेने आगे नहीं बढ़े। तब एक श्रीमाली ओझा ब्राह्मणी ने रानी से कहा कि यह बच्चा हमें दे दो। हम इसका उचित रीति से पालन पोषण करेंगे। तब रानी ने उस ब्राह्मणी को आशीर्वाद दिया कि तेरे वंश में सती होगी किन्तु आज से मेरे वंश (रतलाम राजपरिवार) में कोई सती नहीं होगी ।[3]

रतलाम महाराजा पृथ्वीसिंह की ओर से कुशालसिंह को प्रारम्भ में जागीर के रूप में दो गाँव – अमलेटा व इटावा ही मिले थे ।[4] महाराज कुशालसिंह के पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र भोपतसिंह गद्दी पर बैठा। भोपतसिंह का अधिकांश समय रतलाम महाराजा की सेवा में व्यतीत होता था। उन्हीं की सेवा के दौरान रतलाम महाराजा परबतसिंह के हुक्म से पंवार आनन्दराव की फौज से किसी बात को लेकर झगड़ा हुआ जिसमें भोपतसिंह चैत्र शुदि 2, रविवार, वि.सं. 1862 (31 मार्च, सन् 1805 ई.) को बांगरोद में काम आया। अमलेटा गाँव के पास उत्तर दिशा में नाला है जहाँ

भोपतसिंह का चबूतरा बना हुआ है, और ये जुझार रूप में पूजे जाते हैं ।[5] भोपतसिंह के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र देवीसिंह गद्दी पर बैठा । देवीसिंह ने अपने समय में अनेक निर्माण कार्य करवाये जिनमें अमलेटा में महल बनवाया, वि.सं. 1891 में गढ़ बनवाया, गढ़ में कुआ खुदवाया। रतलाम महाराजा बलवंतसिंह की कृपा से खातीपुरा रतलाम में सं. 1896 अश्विन बदि 2 को एक बाग लगाया तथा इसी बाग में सं. 1898 को एक कुआ खुदवाया । वि.सं. 1886 ज्येष्ठ बदी 5 बुधवार (25 सितम्बर, 1839 ई.) को देवीसिंह के जब प्रथम पुत्र के रूप में कुंवर फतेहसिंह का जन्म हुआ तब रतलाम महाराजा बलवंतसिंह ने प्रसन्न होकर महाराज देवीसिंह को एक घोड़ा दिया था ।[6]

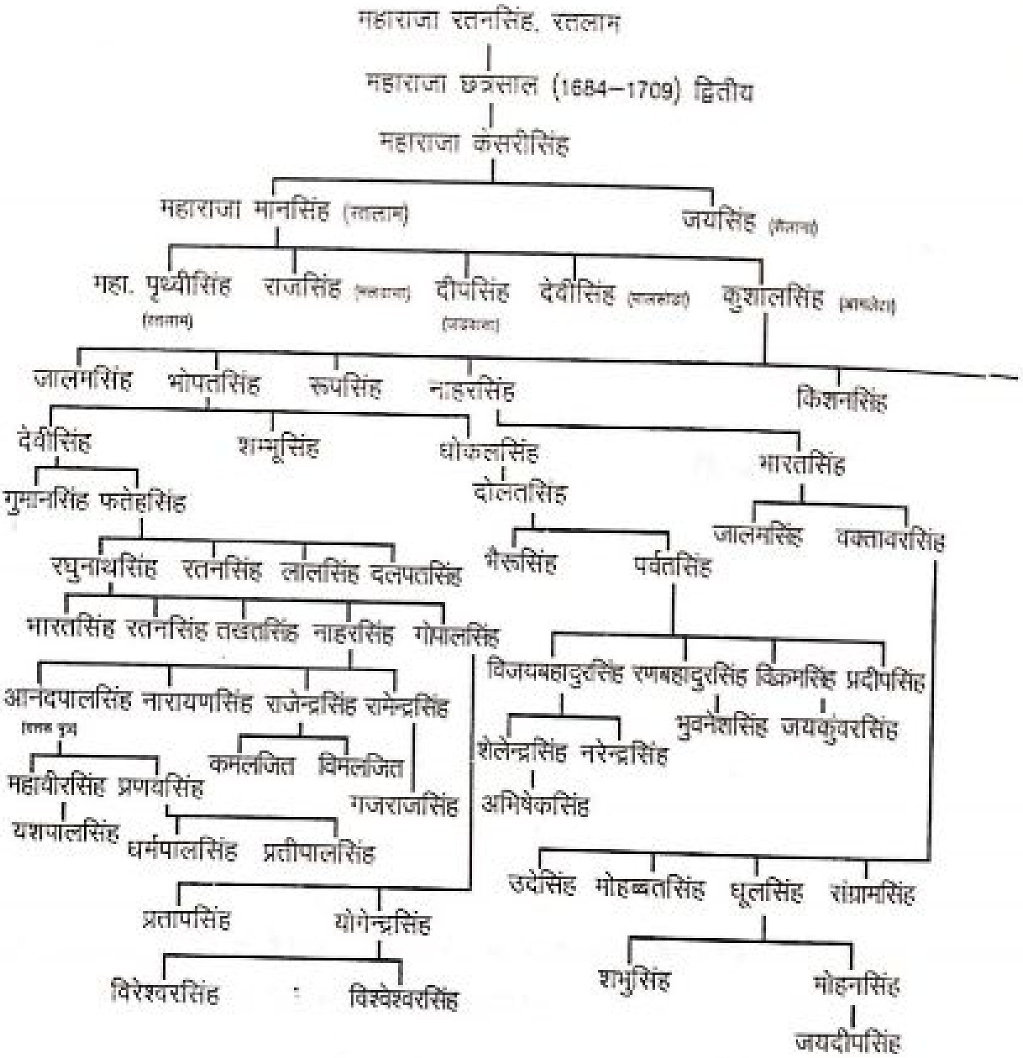
महाराज देवीसिंह अपने पिता भोपतसिंह की तरह ही रतलाम महाराजा बलवंतसिंह के पास ही रहता था। दशहरा के दिन एक आयोजित समारोह में रतलाम महाराजा की उपस्थिति में भेंसों की लड़ाई हुई जिसमें एक भेंसा (पाड़ा) गाँव की तरफ भागा, उस समय देवीसिंह खास घोड़ा (महाराजा का घोड़ा) पर चढ़ा था तुरन्त महाराजा का इशारा पाकर देवीसिंह ने घोड़ा उस तरफ दौड़ाया और एक सीध में आने पर एक ही वार में महाराजा की खास तलवार से पाड़ा मार गिराया । देवीसिंह की बहादुरी देखकर महाराजा बलवंतसिंह प्रसन्न हुआ और उसने वही खास घोड़ा, वही तलवार, नगाड़ा व निसान प्रदान किये और कहा कि तुम्हारे पिता भोपतसिंह हमारी सेवा करते हुए मारे गये थे सो किसी कारणवश जागीर नहीं दे पाये थे किन्तु उनकी सेवा व तुम्हारी बहादुरी से आज तुम्हें 2 गाँव – मलवासा, उसगार सं. 1899 अश्विन बदि 10 गुरुवार (29 सितम्बर, 1842 ई.) को दिये ।[7] देवीसिंह के बाद फतेहसिंह गद्दी पर बैठा किन्तु सं. 1923 अषाढ़ शुदि 11 (सोमवार, 23 जुलाई, 1866 ई.) को 37 वर्ष की उम्र में ही देहान्त हो गया। तत्पश्चात् गद्दी पर रघुनाथसिंह सं. 1923 श्रावण बदि 9 (6 अगस्त, 1866 ई.) सोमवार के दिन बैठा ।[8] स्टेट गजेटियर के अनुसार अमलेटा ठिकाने का ई. सन् 1908 में क्षेत्रफल

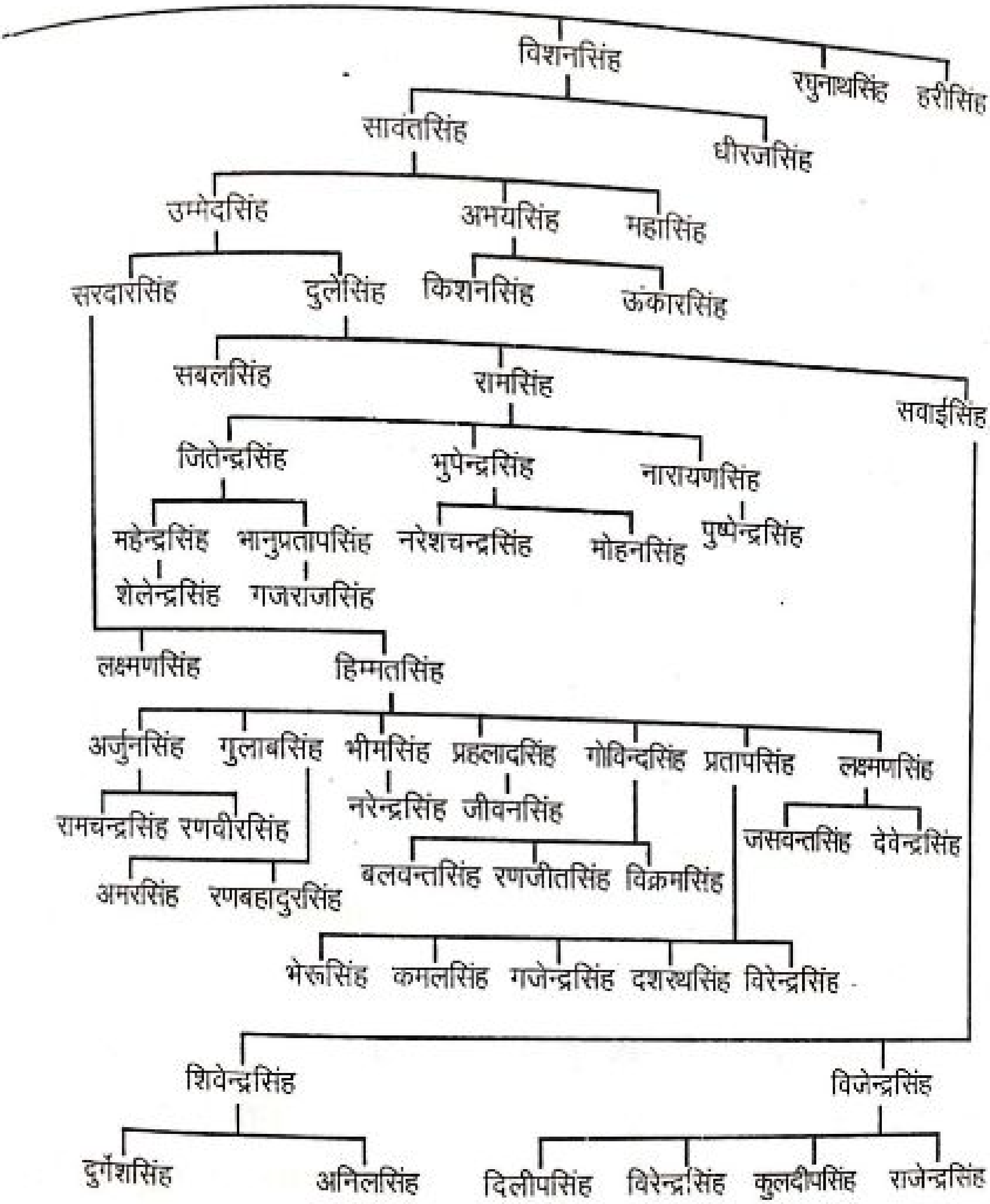
11.24 वर्गमील था। जब कि इसकी तब जनसंख्या 1794 थी। इस ठिकाने की वार्षिक कुल आमदनी 30,869 ब्रिटिश कलदार रुपये थी तथा टांके के रूप में इस ठिकाने को 4,419 रुपये देना होता था। इस ठिकाने के अन्तर्गत गाँवों की संख्या 4 थी।[9]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 148–49
2. यही बालक आगे चलकर कुशालसिंह हुआ जिसे अमलेटा की जागीर मिली ।
3. गुरां ग्रंथ 41, पत्र 12 ब ।
4. गुरां ग्रंथ 16, पत्र 107 अ; ग्रंथ 3, पत्र 89 अ ।
5. गुरां ग्रंथ 16, पत्र 107 अ; ग्रंथ 3, पत्र 89 अ ।
6. गुरां ग्रंथ 16, पत्र 107 अ; ग्रंथ 3, पत्र 89 अ ।
7. गुरां ग्रंथ 16, पत्र 107 ब; ग्रंथ 3, पत्र 89 ब ।
8. गुरां ग्रंथ 16, पत्र 107 ब; ग्रंथ 3, पत्र 89 ब ।
9. रतलाम स्टेट ग़जेटियर, पृ. 148–49 ।

ठिकाना – अमलेटा


महाराजा रतनसिंह, रतलाम
महाराजा छत्रसाल (1684–1709) द्वितीय
महाराजा केसरीसिंह
महाराजा मानसिंह (रतलाम)
जयसिंह
महा. पृथ्वीसिंह
(रतलाम)
राजसिंह
दीपसिंह
देवीसिंह
कुशालसिंह
जालमसिंह
भोपतसिंह
रूपसिंह
नाहरसिंह
किशनसिंह
देवीसिंह
शम्भूसिंह
धोकलसिंह
भारतसिंह
गुमानसिंह
फतेहसिंह
दोलतसिंह
जालमसिंह
वक्तावरसिंह
रघुनाथसिंह
रतनसिंह
लालसिंह
दलपतसिंह
भैरूसिंह
पर्वतसिंह
भारतसिंह
रतनसिंह
तखतसिंह
नाहरसिंह
गोपालसिंह
विजयबहादुरसिंह
रणबहादुरसिंह
विक्रमसिंह
प्रदीपसिंह
आनंदपालसिंह
नारायणसिंह
राजेन्द्रसिंह
रामेन्द्रसिंह
भुवनेशसिंह
जयकुंवरसिंह
कमलजित
विमलजित
शैलेन्द्रसिंह
नरेन्द्रसिंह
महावीरसिंह
प्रणवसिंह
गजराजसिंह
अभिषेकसिंह
यशपालसिंह
धर्मपालसिंह
प्रतीपालसिंह
उदेसिंह
मोहब्बतसिंह
धूलसिंह
सांग्रामसिंह
प्रतापसिंह
योगेन्द्रसिंह
शम्भुसिंह
मोहनसिंह
विरेश्वरसिंह
विश्वेश्वरसिंह
जयदीपसिंह


विशनसिंह
रघुनाथसिंह
हरीसिंह
सावंतसिंह
धीरजसिंह
उम्मेदसिंह
अभयसिंह
महासिंह
सरदारसिंह
दुलेसिंह
किशनसिंह
ऊंकारसिंह
सबलसिंह
रामसिंह
सवाईसिंह
जितेन्द्रसिंह
भुपेन्द्रसिंह
नारायणसिंह
महेन्द्रसिंह
भानुप्रतापसिंह
नरेशचन्द्रसिंह
मोहनसिंह
पुष्पेन्द्रसिंह
शेलेन्द्रसिंह
गजराजसिंह
लक्ष्मणसिंह
हिम्मतसिंह
अर्जुनसिंह
गुलाबसिंह
भीमसिंह
प्रहलादसिंह
गोविन्दसिंह
प्रतापसिंह
लक्ष्मणसिंह
रामचन्द्रसिंह
रणवीरसिंह
नरेन्द्रसिंह
जीवनसिंह
जसवन्तसिंह
देवेन्द्रसिंह
अमरसिंह
रणबहादुरसिंह
बलवन्तसिंह
रणजीतसिंह
विक्रमसिंह
भेरूसिंह
कमलसिंह
गजेन्द्रसिंह
दशरथसिंह
विरेन्द्रसिंह
शिवेन्द्रसिंह
विजेन्द्रसिंह
दुर्गेशसिंह
अनिलसिंह
दिलीपसिंह
विरेन्द्रसिंह
कुलदीपसिंह
राजेन्द्रसिंह

ठिकाना सादाखेड़ी (शिवगढ़) :

सरसी ठिकाने के संस्थापक फतेहसिंहोत राठौड़ अमरसिंह के तृतीय पुत्र धीरतसिंह ने सादाखेड़ी[1] ठिकाने की स्थापना की थी।[2] धीरतसिंह के बाद सादाखेड़ी के उत्तराधिकारी हेमन्तसिंह गद्दी पर बैठा। हेमन्तसिंह बहुमुखी प्रतिभा का धनी था । उसे उसकी सैनिक सेवाओं के उपलक्ष में सैलाना राज्य की ओर से करिया, खोखरा और थरवासा नामक तीन गाँव जागीर में दिये गये थे। वि.सं. 1840 में भीलों और मीणों का दमन कर रतलाम राज्य में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने में दिये गये सहयोग के उपलक्ष में रतलाम दरबार की ओर से उसे शिवगढ़[3] और तरखेड़ी ग्राम जागीर में प्रदान किये गये । ग्वालियर राज्य की ओर से भी उसे खाचरौद परगने में रिंगनिया ग्राम जागीर में प्राप्त हुआ । इसी प्रकार देवास छोटी पांती राज्य की ओर से रिंगनोद परगना के अन्तर्गत मेलकी ग्राम जागीर में प्राप्त हुआ था ।[4]

हेमन्तसिंह के बाद बख्तावरसिंह सादाखेड़ी ठिकाने की गद्दी पर बैठा। उसके दो पुत्र लक्ष्मणसिंह और सूरजमलसिंह हुए। बख्तावरसिंह के बाद लक्ष्मणसिंह तत्पश्चात उसका पुत्र गोपालसिंह ठिकाने का उत्तराधिकारी हुआ।[5] गोपालसिंह को सरसी, केरवासा और बोरखेड़ा ठिकानों के साथ–साथ ई. सन 1839 में कर्नल बोर्थविक की हस्ताक्षरित जावरा नवाब गौस मोहम्मद खाँ की ओर से सादाखेड़ी ठिकाने की सनद प्राप्त हुई। दूसरी सनद इन्दौर रेजिडेण्ट की ओर से ई. सन् 1844 में प्राप्त हुई।

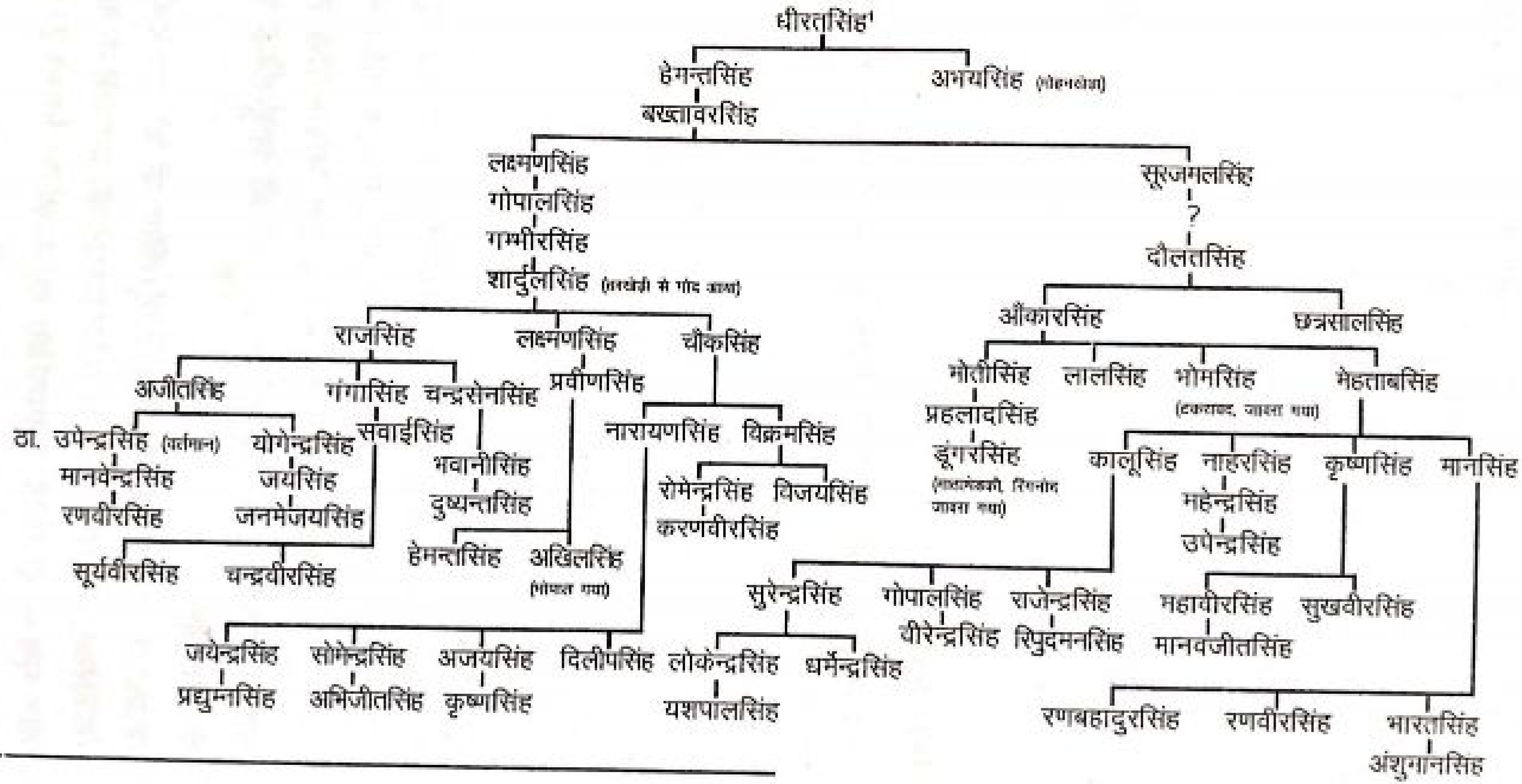
रतलाम राज्य की ओर से शिवगढ़ ग्राम जागीर में प्राप्त होने पर सादाखेड़ी से ठिकाना परिवर्तन कर शिवगढ़ को अपना निवास स्थान बनाया ।[6] गोपालसिंह के बाद गम्भीरसिंह एवं शार्दुलसिंह शिवगढ़ ठिकाने के उत्तराधिकारी बने ।[7] शार्दुलसिंह को जून 14, 1912 ई. को भारत के तत्कालीन वायसराय और गवर्नर जनरल की ओर से 'रायबहादुर' उपाधि की सनद प्राप्त हुई। शार्दुलसिंह[8] के बाद राजसिंह एवं अजीतसिंह ठिकाने के स्वामी हुए। वर्तमान में उपेन्द्रसिंह शिवगढ़ राजघराने के प्रमुख हैं।

जावरा राज्य गजेटियर के अनुसार सादाखेड़ी ठिकाने का क्षेत्रफल 1452 एकड़ था। 1901 की जनगणनानुसार इसकी जनसंख्या 445 एवं वार्षिक आय रुपये 6261 थी । ठिकाने की ओर से टांके के रूप में जावरा राज्य को 5001 रुपये सालमशाही या 2500 रुपये आठ आना कलदार दिये जाते थे ।[9] सादाखेड़ी और शिवगढ़ जागीर का सम्पूर्ण क्षेत्रफल 60 वर्गमील के लगभग था। 1921 ई. के जनगणनानुसार जनसंख्या 5271 थी। दोनों ठिकानों की कुल वार्षिक आय 42000 रुपये थी । जावरा के अतिरिक्त ग्वालियर, सैलाना, रतलाम और देवास जूनियर राज्यों को ठिकाने की ओर से निश्चित टांके की रकम भुगतान की जाती थी ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सादाखेड़ी 24^0 25′ उत्तर तथा 75^0 8′ पूर्व में जावरा से 15 कि. मी. दूर ।
2. गुरां., ग्रंथ 3, पत्र 184 ब ।
3. शिवगढ़ 24^0 40′ उत्तर तथा 74^0 50′ पूर्व में सैलाना से 15 कि. मी. एवं रतलाम से 19 कि.मी. दूर ।
4. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 185 ब ।
5. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 184 ब, 184 अ ।
6. गुरां, ग्रंथ 3, पत्र 185 ब ।
7. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 185 अ के अनुसार गम्भीरसिंह के बाद बहादुरसिंह गद्दी पर बैठा। उसके बाद उसका नाबालिग पुत्र 1953 में गद्दी पर बैठा – तत्पश्चात ग्रंथ में लिखा है कि 'नाबालगीरा सबबसूं अजंटी रा होकम सु ठीकाणां रो काम ठा श्री सार्दुलसिंह भतीजे के पाट बैठा ।'
8. जावरा गजेटियर के अनुसार शार्दुलसिंह के दो पुत्र रायसिंह (राजसिंह), चोकसिंह (पृ. 95) जबकि ठिकाने की वंशावली के अनुसार तीन पुत्र – राजसिंह, लक्ष्मणसिंह एवं चोकसिंह मिलते हैं ।
9. जावरा स्टेट गजेटियर, पृ. 95 ।

ठिकाना – सादाखेड़ी (शिवगढ़)



1. सरसी ठिकाने का संस्थापक अमरसिंह का तृतीय पुत्र था ।

(171)

ठिकाना हरसोरा :

रतलाम राज्य के अन्तर्गत ठिकाना 'हरसोरा'[1] के जागीरदार अखेराजोत या अखेसिंहोत राठौड़ हैं। हरसोरा रतलाम से 22 कि.मी. उत्तर–पश्चिम एवं सैलाना से 3 कि.मी. पश्चिम दिशा में स्थित है । गाँव मुख्यतया समतल भू–भाग पर बसा हुआ है। गाँव में अधिकांशतः आदिवासियों की जनसंख्या है । गाँव में प्रशासनिक संस्थानों का अभाव है। यहाँ तक कि इनकी स्वयं की ग्राम पंचायत न होकर कोटड़ा ग्राम पंचायत लगती है । जागीर कालीन निर्माणों का अभाव है । प्राचीन मन्दिर गाँव के बाहर अवश्य था, जिसके अवशेष वर्तमान में भी वहाँ उपलब्ध हैं।

अखेराज[2] के वंशज फतेहसिंह को ई. सन् 1823 में रतलाम महाराजा परबतसिंह के द्वारा हरसोरा ठिकाने की जागीर प्रदान की गई थी।[3] महाराजा फतेहसिंह के बाद बेरीसाल गद्दी पर बैठा। महाराजा बेरीसाल के बाद पृथ्वीसिंह सं. 1890 (ई. सन् 1833) में नौ माह की उम्र में गद्दी पर बैठा ।[4] सं. 1919 (ई. सन् 1862) ज्येष्ठ सुदी 9 सोमवार को महाराजा पृथ्वीसिंह का भीलों से झगड़ा हुआ जिसमें पृथ्वीसिंह की मृत्यु हो गई । महाराजा पृथ्वीसिंह के बाद ज्येष्ठ पुत्र पद्मसिंह गद्दी पर बैठा किन्तु सं. 1920 में पद्मसिंह की भी मृत्यु हो गई तब उसका भाई पृथ्वीसिंह का द्वितीय पुत्र पहाड़सिंह गद्दी पर बैठा।[5]

महाराज पहाड़सिंह के पश्चात भवानीसिंह[6] गद्दी पर बैठा और ये भी निःसंतान ही मृत्यु को प्राप्त हुआ । तब महाराज भगवतसिंह (भगोतसिंह) के ज्येष्ठ पुत्र रुघनाथसिंह को गोद लाकर रविवार, 27 नवम्बर, 1903 ई. को गद्दी पर बैठाया गया।[7] रतलाम महाराजा की ओर से बरछापरा के महाराज अभयसिंह के द्वारा हरसोरा आकर रुघनाथसिंह के तलवार बांधकर रस्म पूरी की गई। महाराज रुघनाथसिंह ने रतलाम में लुणेरा (लुनेरा) की हवेली के पास श्रीमाली मोहल्ला में एक हवेली का निर्माण करवाया गया तथा हरसोला में भी एक गढी बनवायी।[8]

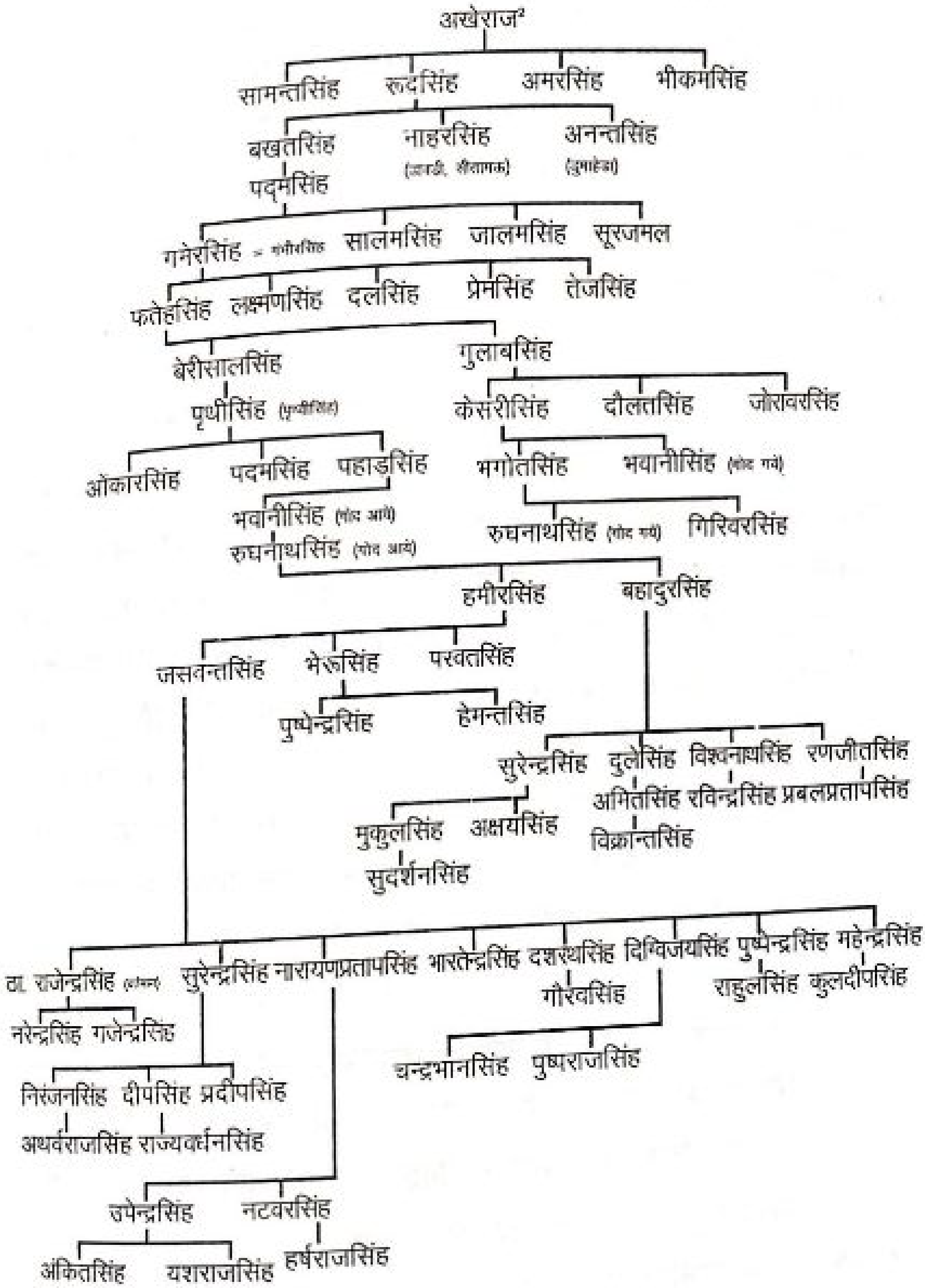
महाराज रुघनाथसिंह के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र हमीरसिंह गद्दी पर बैठा। तलवार बांधने की रस्म रतलाम महाराजा की ओर से मुनसरीम श्रीनिवास वकील रामकरन ने हरसोरा आकर जून 2, 1927 ई. (सं. 1983 ज्येष्ठ सुदी 3 गुरुवार) को तलवार बांधने की परम्परा पूर्ण की। महाराज हमीरसिंह ने अपने छोटे भाई बहादुरसिंह को भाई बांट के अन्तर्गत अर्थात हाथ खर्च के लिए जमीन माल (असिंचित) बीघा 54 तथा बीड (चरोई भूमि) बीघा 21 दी थी।[9] महाराज हमीरसिंह के पश्चात जसवंतसिंह गद्दी पर बैठा।

रतलाम स्टेट गजेटियर के अनुसार हरसोरा ठिकाने का ई. सन् 1908 में क्षेत्रफल 2.23 वर्गमील था। जबकि इसकी तब जनसंख्या 71 थी। इस ठिकाने की कुल आमदनी वार्षिक 2,032/– रुपये ब्रिटिश कलदार थी तथा टांके के रूप में इस ठिकाने को 300 रुपये ब्रिटिश कलदार के रूप में देना होता था।[10]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सामान्यतया आजकल इसका नाम 'हरसोला' बोला जाता है।
2. रतलाम महाराजा रतनसिंह का छटा पुत्र।
3. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 152–53।
4. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 114 अ; गुरां ग्रंथ 16, पत्र 129 ब।
5. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 114 अ; गुरां ग्रंथ 16, पत्र 129 ब।
6. महाराज फतेहसिंह के द्वितीय पुत्र गुलाबसिंह का पौत्र भवानीसिंह महाराज पहाड़सिंह के गोद आया।
7. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 115 ब; गुरां ग्रंथ 16, पत्र 130 ब।
8. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 115 ब।
9. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 116 अ।
10. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 152–53।

ठिकाना – हरसोरा[1]



1. सामान्यतया आजकल इसका नाम 'हरसोला' बोला जाता है ।
2. अखेराज, महाराज रतनसिंह (रतलाम) के छटे पुत्र थे ।

ठिकाना बड़छापरा :

रतलाम राज्य के अन्तर्गत ठिकाना बड़छापरा[1] के जागीरदार रतनसिंहोत शाखा के राठौड़ राजपूत हैं। रतलाम महाराजा मानसिंह (1716–43 ई.) के तृतीय पुत्र दीपसिंह के छटे पुत्र हिन्दूसिंह को रतलाम महाराजा बलवंतसिंह (1825–57 ई.) ने वि.सं. 1887 (ई. सन् 1830)[2] में बडछापरा की जागीर दी थी।[3] यह ठिकाना द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत आता था।

जागीरी न मिलने से पहले हिन्दूसिंह रतलाम महाराजा की ही सेवा में रहता था। यह बात प्रचलित है कि जब महाराजा परवतसिंह (1800–25 ई.) ने हिन्दूसिंह को किसी कार्य से उज्जैन भेजा। उज्जैन के हाकिम ने हिन्दूसिंह को गिरासिया जानकर उस पर हमला कर दिया। इस हमले में पाँच आदमी मारे गये, होलकर के दो सरदार भी मारे गये तथा हिन्दूसिंह के भी 13 घाव लगे। जब पता चला कि हिन्दूसिंह तो रतलाम का भाई है और किसी कामवश यहाँ आया था। तब हाकिम ने अपनी गलती जानकर हिन्दूसिंह से क्षमा याचना की कि अनजान में ही गलती हो गई। अत्यधिक घाव लगने से 16 महीने हिन्दूसिंह वहाँ रहा तत्पश्चात सुधार होने के बाद हिन्दूसिंह रतलाम आया। तब रतलाम महाराजा ने प्रसन्न होकर वि.सं. 1873 (ई. सन् 1816) में रामपुरा गांव दिया ।[4]

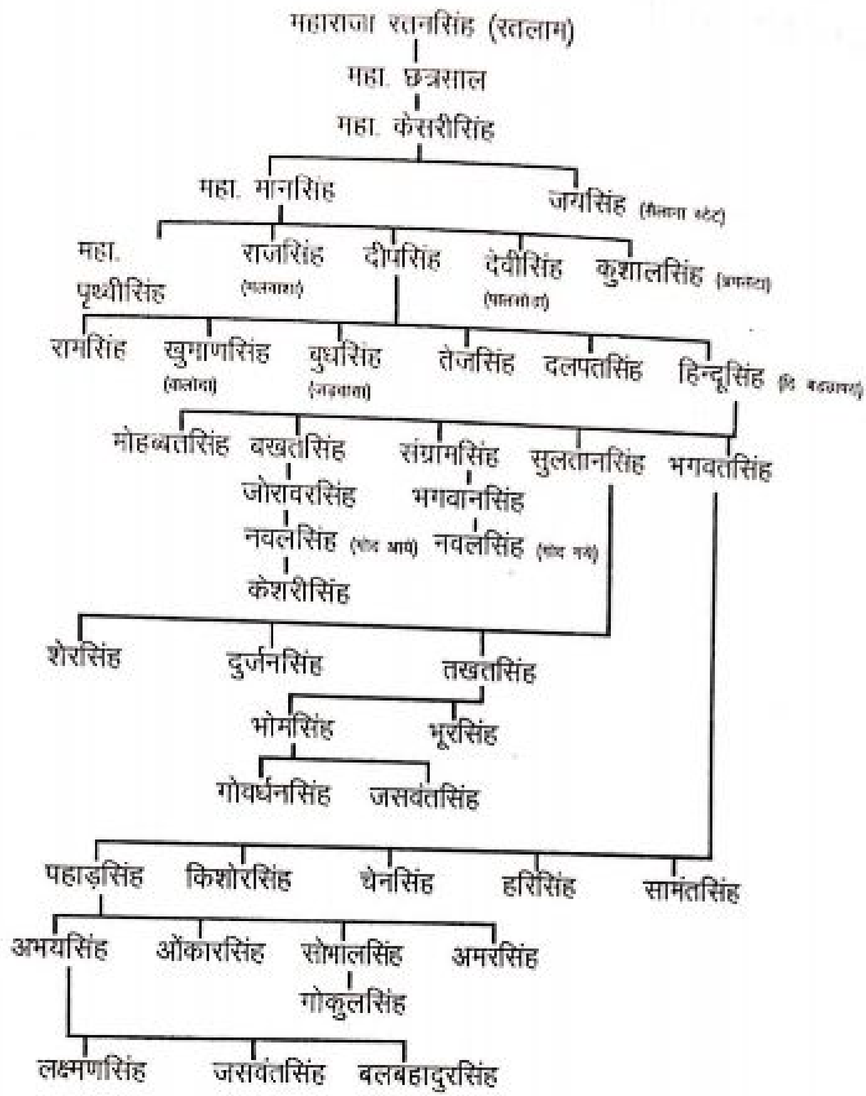
हिन्दूसिंह के पश्चात क्रमशः बखतसिंह, जोरावरसिंह, नवलसिंह व केशरीसिंह बड़छापरा की गद्दी पर बैठे । इनके संबंध में गुरां निर्भयसिंह संग्रह या अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती।

रतलाम स्टेट गजेटियर के अनुसार ठिकाना बड़छापरा का क्षेत्रफल 1.79 वर्गमील था। ई. सन् 1901 में इस ठिकाने की जनसंख्या 59 थी। इस ठिकाने की तब वार्षिक आमदनी 2016 रुपये थी तथा टांके के रूप में रुपये 202–9.6 पाई ब्रिटिश कलदार के रूप में देना होता था।[5]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 83 ब में बड़छापरा का नाम फतेहपुरा दिया गया है। इसी प्रकार रतलाम स्टेट गजेटियर में पृ. 152 पर फतेहपुरा लिखा गया है ।
2. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 152–53 के अनुसार ई. सन् 1840 में जागीर दी गई थी।
3. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 84 अ; ग्रंथ 16, पत्र 103 अ ।
4. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 84 अ; ग्रंथ 16, पत्र 103 अ ।
5. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 152–53 ।

ठिकाना – बड़छापरा


महाराजा रतनसिंह (रतलाम)
महा. छत्रसाल
महा. केसरीसिंह
महा. मानसिंह
जयसिंह (सैलाना स्टेट)
महा. पृथ्वीसिंह
राजसिंह
दीपसिंह
देवीसिंह
कुशालसिंह
रामसिंह
खुमाणसिंह
बुधसिंह
तेजसिंह
दलपतसिंह
हिन्दूसिंह
मोहब्बतसिंह
बखतसिंह
संग्रामसिंह
सुलतानसिंह
भगवतसिंह
जोरावरसिंह
भगवानसिंह
नवलसिंह (गोद आये)
नवलसिंह (गोद गये)
केशरीसिंह
शेरसिंह
दुर्जनसिंह
तखतसिंह
भोमसिंह
भूरसिंह
गोवर्धनसिंह
जसवंतसिंह
पहाड़सिंह
किशोरसिंह
चैनसिंह
हरिसिंह
सामंतसिंह
अभयसिंह
ओंकारसिंह
सोमालसिंह
अमरसिंह
गोकुलसिंह
लक्ष्मणसिंह
जसवंतसिंह
बलबहादुरसिंह

ठिकाना बेड़दा :

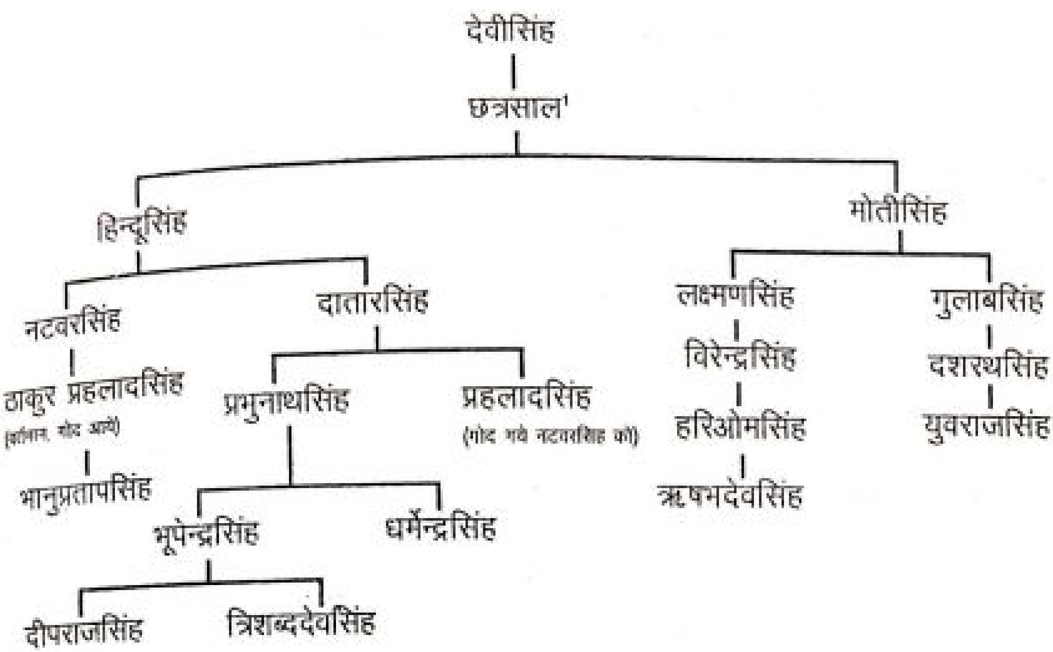
रतलाम राज्य के अन्तर्गत ठिकाना बेड़दा के जागीरदार भारमलोत राठौड़ राजपूत हैं । यह ठिकाना द्वितीय श्रेणी की जागीर में सम्मिलित था। बेड़दा रतलाम से 50 कि.मी. दूर उत्तर–पश्चिम दिशा में अरावली की सुरम्य पहाड़ियों के मध्य बसा हुआ है। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य अन्य ठिकानों की अपेक्षा अधिक देखने को मिलता है। यहाँ पहुँचने का मार्ग भी अत्यन्त विकट है। यहाँ जलस्त्रोतों को बखूबी देखा जा सकता है। इस ठिकाने की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि यह अपने स्थापना काल से वर्तमान तक 5 परिवारों तक ही सीमित है। किन्तु अब नई पीढ़ी में यह विशेषता टूटने लगी है। यहाँ की जलवायु शीत ऋतु में अधिक ठण्डी एवं ग्रीष्मऋतु में अधिक गर्म रहती है ।

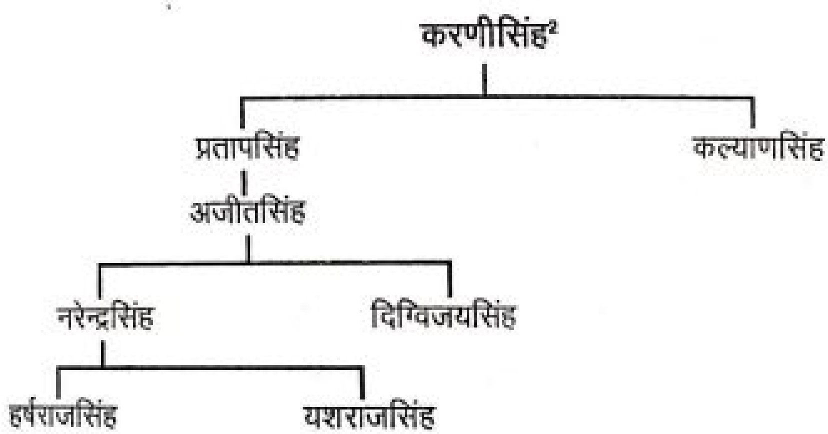
ठिकाना बेड़दा की जागीर, रतलाम महाराजा परबतसिंह ने ई. सन् 1823 में अच्छी सेवाओं के उपलक्ष में ठाकुर देवीसिंह को दी थी ।[1] इस ठिकाने की प्रारम्भिक वंशावली प्राप्त नहीं हो सकी, क्योंकि गुरां निर्भयसिंह के ग्रंथों में भी कोई स्पष्ट विवरण नहीं मिलता। ठाकुर देवीसिंह के बाद गद्दी पर कौन बैठा यह भी ज्ञात नहीं है। इसी पीढ़ी में आगे छत्रसाल गद्दी पर बैठा। ठाकुर छत्रसाल के समय ई. सन् 1908 में इस ठिकाने का क्षेत्रफल 92.75 वर्ग मील था। 1907 ई. में इस ठिकाने की जनसंख्या 702 थी । ठिकाने की कुल आमदनी वार्षिक 1353 रुपये ब्रिटिश कलदार थी, जबकि टांके के रूप में रुपये 415 आना 6 पाई 6 राज्य को चुकाने होते थे।[2] इस ठिकाने की जागीर में 24 गाँव[3] सम्मिलित थे – बेड़दा, जाम्बुरिया, रायखेरा, बोरदा, गुडभेली, अलकाखेडा, बौरनीखेड़ा, चिराखान, टौरी, पिण्डवारा, मातर, देवडूंगरा, बांद्रावाल, पुन्यापाड़ा, बेड़दी, कल्ला, चन्देरी, पाटली, साकड, आम्बापाड़ा, कल्याणपुरा, बल्लीखेड़ा, बरफटी व जामुरियामार्ग आदि ।[4]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 154 ।
2. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 154–55 ।
3. रतलाम स्टेट गजेटियर, 1908 में गाँव की संख्या 1 लिखी है पृ. 154 ।
4. सर्वे के दौरान प्राप्त जानकारी के आधार पर ।

ठिकाना – बेड़दा





1. छत्रसाल के पूर्व की वंशावली प्राप्त नहीं हो सकी है । ये ठिकाना और ईसरथोनी का ठिकाना एक है, जिनकी पाटवी वाजना थी ।
2. करणीसिंह ठाकुर छत्रसाल (बेड़दा) के काका थे ।

ठिकाना ईसरथोनी :

रतलाम राज्य के अन्तर्गत ठिकाना ईसरथोनी के जागीरदार भारमलोत राठौड़ राजपूत हैं। यह ठिकाना द्वितीय श्रेणी की जागीर में था। ईसरथोनी रतलाम से 13 कि.मी. दूर उत्तर–पश्चिम दिशा में स्थित है।

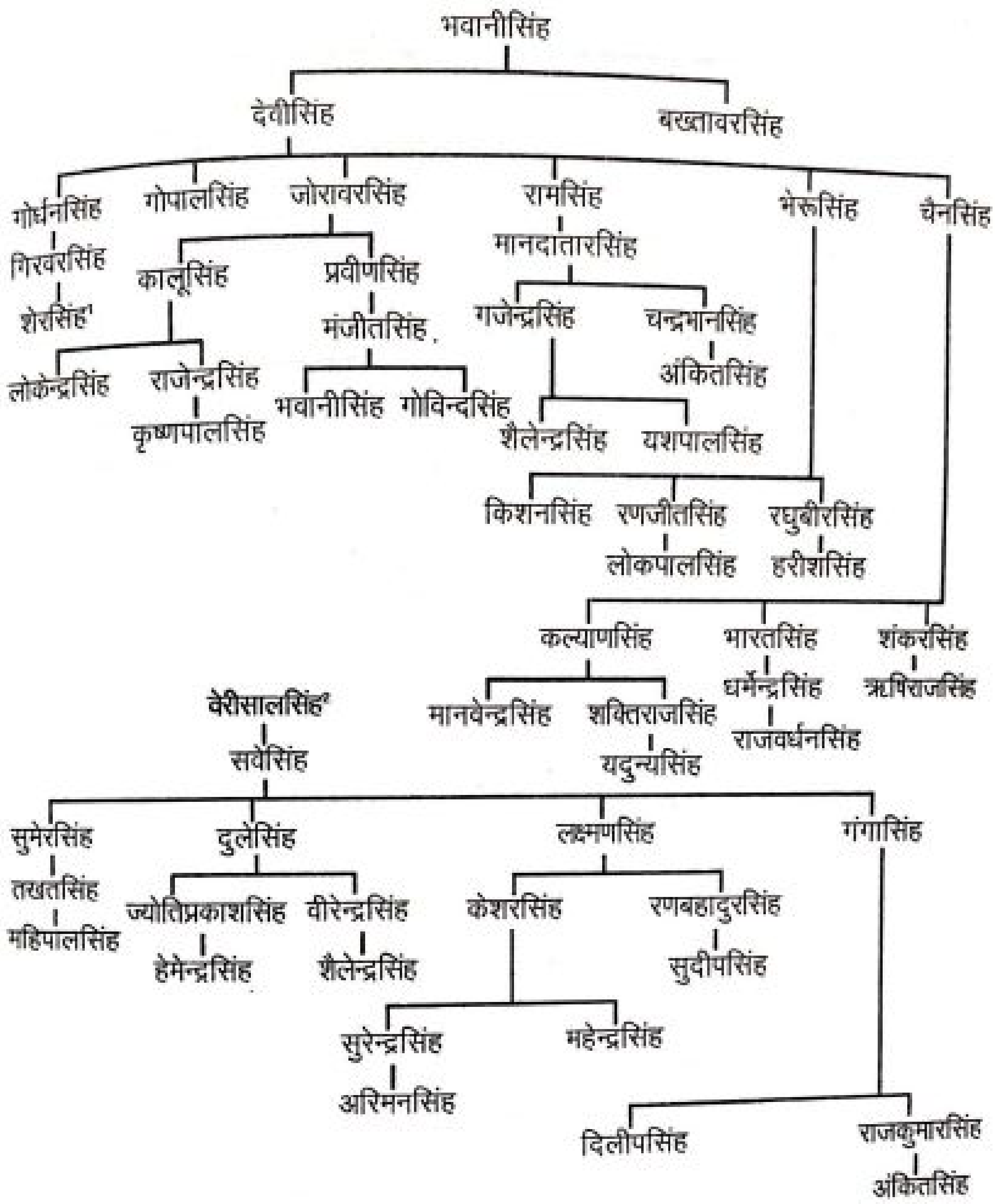
इस ठिकाने की जागीर रतलाम महाराजा परबतसिंह ने ई. सन् 1824 में ठाकुर भवानीसिंह को प्रदान की थी ।[1] ठाकुर भवानीसिंह से पूर्व की वंशावली गुरां ग्रंथों में विवरण उपलब्ध न होने के कारण प्राप्त नहीं हो सकी, किन्तु इस ठिकाने के जागीरदारों की पाटवी बाजना ठिकाना थी ।[2] ठाकुर भवानीसिंह के पश्चात देवीसिंह ठिकाने की गद्दी पर बैठा । ठाकुर देवीसिंह के समय ई. सन् 1908 में इस ठिकाने का क्षेत्रफल 3.36 वर्ग मील था, जबकि 1901 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल जनसंख्या 582 थी। सन् 1908 में इस ठिकाने की वार्षिक आमदनी 6,802 रुपये ब्रिटिश कलदार थी तथा इस ठिकाने द्वारा रुपये 1,508 ब्रिटिश कलदार के रूप में राज्य को टांके के रूप में देना होते थे ।[3] ठाकुर देवीसिंह के तीन पुत्र थे।[4] बख्तावरसिंह[5], गोवर्धनसिंह व गोविन्दसिंह।

सर्वे कार्य के दौरान जो वंशावली प्राप्त हुई थी उसके अनुसार देवीसिंह के पश्चात गोवर्धनसिंह, गिरवरसिंह व शेरसिंह क्रमशः गद्दी पर बैठे। ठिकाने के अन्तिम ठाकुर शेरसिंह ने लाओलाद होने के बावजूद भी उत्तराधिकार के लिए किसी को गोद नहीं लिया, जिससे ठिकाना स्वतः ही समाप्त हो गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

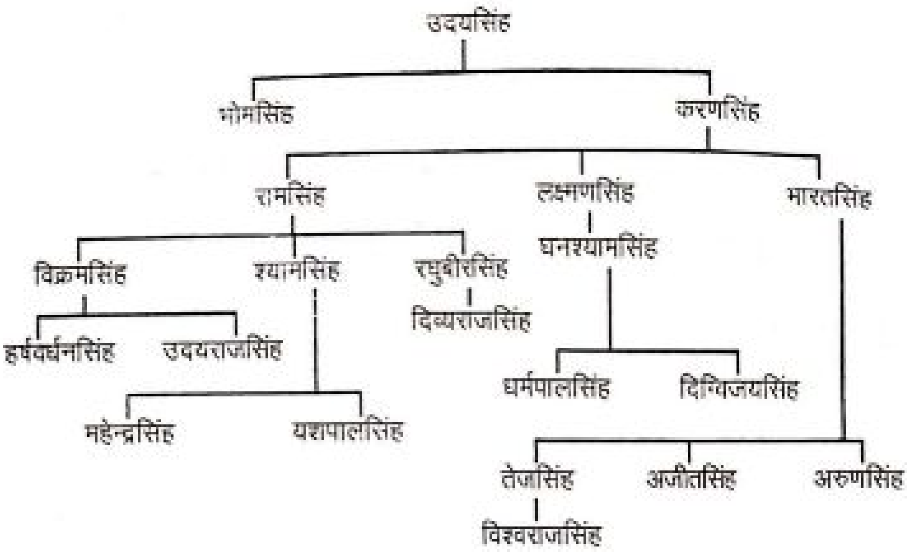
1. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 150 ।
2. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 150 ।
3. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 151 ।
4. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 151; जबकि सर्वे में प्राप्त वंशावली में देवीसिंह के छः पुत्र बताये गये हैं।
5. सर्वे में प्राप्त वंशावली में बख्तावरसिंह को भवानीसिंह का द्वितीय पुत्र बताया गया है।

भारमलोत राठौड़, ठिकाना – ईसरथोनी



1. ईसरथोनी के अन्तिम जागीरदार ठाकुर शेरसिंह ने अपने उत्तराधिकार के लिए किसी को गोद नहीं लिया, जिससे स्वतः ही गद्दी समाप्त हो गयी ।
2. यह परिवार भी जागीरदार परिवार से संबंधित है, किन्तु इसका जुड़ाव कहाँ से है, यह ज्ञात नहीं हो सका है ।

ग्राम – पंचेड़


उदयसिंह
भोमसिंह
करणसिंह
रामसिंह
लक्ष्मणसिंह
भारतसिंह
विक्रमसिंह
श्यामसिंह
रघुवीरसिंह
घनश्यामसिंह
दिव्यराजसिंह
हर्षवर्धनसिंह
उदयराजसिंह
धर्मपालसिंह
दिग्विजयसिंह
महेन्द्रसिंह
यशपालसिंह
तेजसिंह
अजीतसिंह
अरुणसिंह
विश्वराजसिंह

ठिकाना लुनेरा तथा बासिन्द्रा :

लुनेरा रतलाम से 20 कि.मी. दूर पूर्व दिशा में एक पहाड़ी चट्टान पर बसा हुआ है। इस ठिकाने के जागीरदार फतेहसिंहोत राठौड़ हैं। रतलाम महाराजा पृथ्वीसिंह ने ई. सन् 1760 में भारतसिंह को लुनेरा की जागीर दी थी। यह ठिकाना रतलाम राज्य के अन्तर्गत द्वितीय श्रेणी के जागीरदारों में सम्मिलित था।[1]

गुरां निर्भयसिंह ग्रंथ में लिखा है कि 'मा. श्री पृथ्वीसिंह रतलाम सरकार सिपावरा पधारया जद लावरी सूं ठा. भारतसिंह ने बुलाया कारण के दंगो ज्यादा थो ने भाई फतेहसिंहोत री सांणा था जी सू लाया ने चाकरी में हाजर राख्या गाँव 6 बगस्या[2] लुणेरा, सुराणो, संदलो, झर, एवरया व हरवड। सं. 1809 के साल भारतसिंह गाँव पाया।'[3]

ठाकुर भारतसिंह के पश्चात देवीसिंह गद्दी पर बैठा। उसके बाद गोपालसिंह, पद्मसिंह गद्दी पर बैठे। ठाकुर पद्मसिंह के निःसंतान रहने से ठिकाना वासीनेर के ठाकुर भेरुसिंह के चौथे पुत्र जवानसिंह को गोद लेकर गद्दी पर बैठाया गया।[4]

रतलाम स्टेट गजेटियर के अनुसार ठाकुर जवानसिंह के समय में सन् 1908 ई० में इस ठिकाने का क्षेत्रफल 3.87 वर्ग मील था। 1901 ई. में इस ठिकाने की जनसंख्या 429 थी। जबकि वार्षिक आमदनी 3,198 रुपये ब्रिटिश कलदार थी तथा इस ठिकाने द्वारा राज्य को टांके के रूप में 1, 198 रुपये 3 आना 3 पाई (1198–3–3) ब्रिटिश कलदार के रूप में देने होते थे।[5]

ठिकाना बासिन्द्रा के जागीरदार लुनेरा के ही ठाकुर जवानसिंह के वंशज है। सन् 1908 ई. में लुनेरा और बासिन्द्ररा के जागीरदार ठाकुर जवानसिंह रहे थे। बासिन्द्ररा का ठिकाना महाराजा पद्मसिंह के द्वारा सन् 1797 ई. में ठाकुर गुमानसिंह को जागीर के रूप में दिया गया था। इस ठिकाने का क्षेत्रफल 34.53 वर्ग मील था। जबकि 1901 की जनगणना

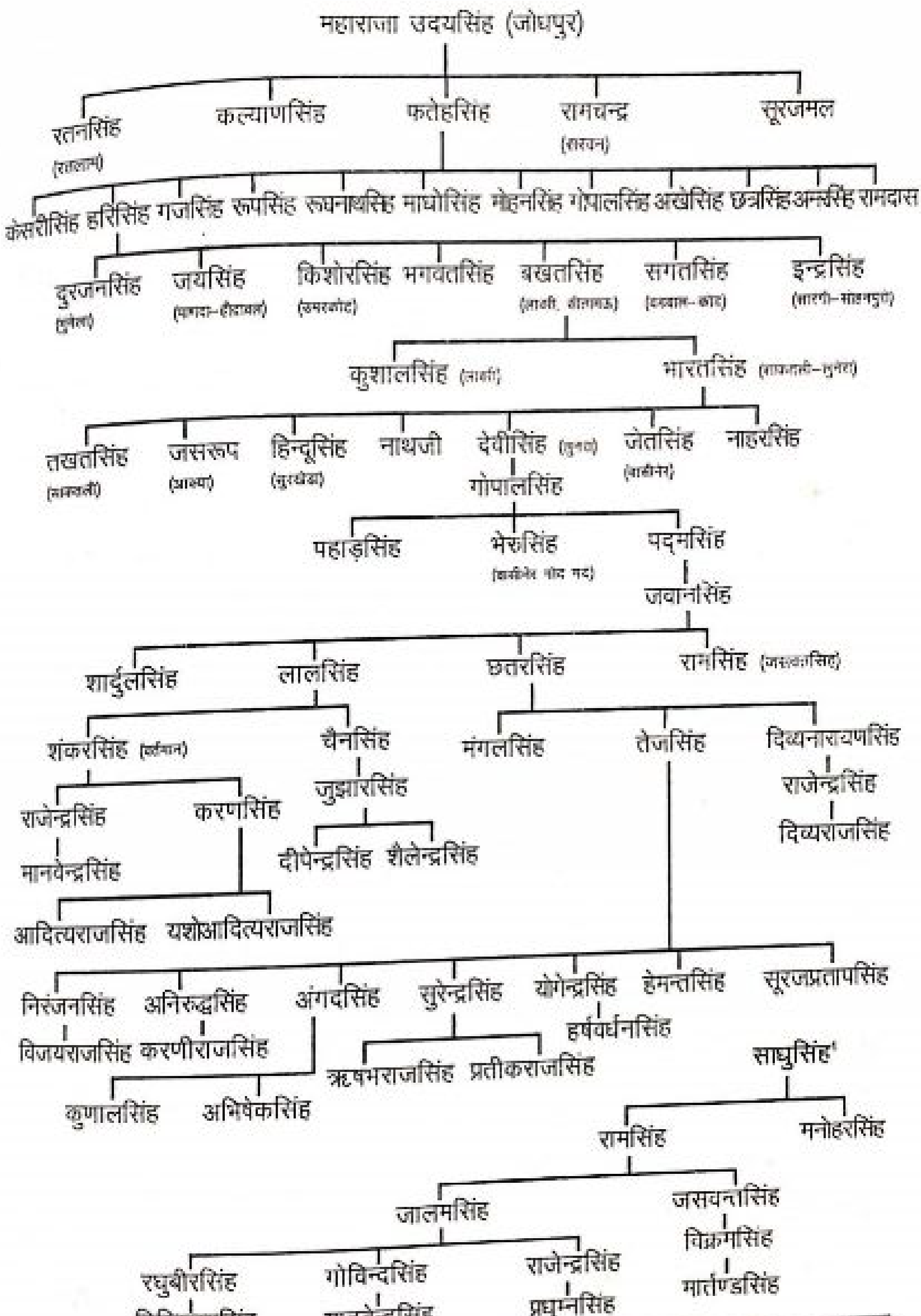
के अनुसार इसकी आबादी 454 थी । इस ठिकाने की कुल आमदनी 800–12–9 रुपये थी । टांके के रूप में राज्य को ब्रिटिश कलदार के रूप में 2741/– रुपये देना पड़ते थे ।[6]

ठाकुर जवानसिंह के चार पुत्र थे । जिनमें शार्दुलसिंह, लालसिंह, छत्रसाल और जसवंतसिंह थे ।[7]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 150 ।
2. रतलाम स्टेट गजेटियर के अनुसार गाँव दिये जाने की संख्या एक है, पृ. 150 ।
3. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 146 अ ।
4. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 147 ब ।
5. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 151 ।
6. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 150–151 ।
7. रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 151 ।

फतेहसिंहोत राठौड़, ठिकाना – लुनेरा तथा बासिन्द्रा



1. यह परिवार लुनेरा जागीरदार परिवार से संबंधित नहीं है । यह परिवार मेड़तियों चाँदावत राठौड़ है, जो मांगरोल से निकलना बताते है ।

ठिकाना सरसी :

जावरा मुस्लिम राज्य के अन्तर्गत ठिकाना सरसी के जागीरदार महेशदासोत फतेहसिंह के वंशज फतेहसिंहोत खांप के राठौड़ हैं।

सरसी ठिकाने की स्थापना फतेहसिंह राठौड़ के ग्यारहवें पुत्र अमरसिंह ने की थी।[1] फतेहसिंह के पुत्र माधोसिंह, छतरसिंह और अमरसिंह तीनों सहोदर भ्राताओं ने मिलकर जावरा क्षेत्र के सरसी इलाके पर अधिकार किया था। बाद में अमरसिंह की सेवाओं से प्रसन्न होकर औरंगजेब ने इसे नौ ग्रामों – सरसी, खीमाखेड़ी, खोकरा, केरवासा, सादाखेड़ी, रेवास, डोड़ियाना, उदियाखेड़ी और मुण्डकोशा की जागीर का पट्टा प्रदान किया था। सन् 1688 ई. में भाई बांट में माधोसिंह को डोड़ियाना, छतरसिंह को रेवास और अमरसिंह को सरसी प्राप्त हुआ। कालान्तर में माधोसिंह के वंशजों ने रुनीजा ठिकाने की स्थापना की और छतरसिंह के वंशजों ने बोरखेड़ा ठिकाने की स्थापना की और वहाँ जा बसे। रेवास भी बोरखेड़ा की जागीर में रहा। सन् 1702 ई. में अमरसिंह को पिपलौदा के डोडिया रावल पृथ्वीराज से पंचेवा चौथान की जागीर प्राप्त हुई।

अमरसिंह के तीन पुत्र हुए प्रथम पद्मसिंह, अमरसिंह का उत्तराधिकारी हुआ, दूसरा पुत्र आनन्दसिंह को केरवासा ठिकाना एवं तीसरे पुत्र धीरतसिंह को सादाखेड़ी (शिवगढ़) का ठिकाना मिला।[2]

सरसी ठिकाने की गद्दी पर पद्मसिंह के बाद अर्जुनसिंह, दुलेसिंह (दलसिंह) और प्रतापसिंह बैठे। जनवरी 6, 1818 ई. को अंग्रेजों और होलकर के मध्य सम्पन्न मन्दसौर संधि के द्वारा जावरा मुस्लिम राज्य का प्रादुर्भाव हुआ। तब इस क्षेत्र के चार फतेहसिंहोत ठिकाने सरसी, केरवासा बोरखेड़ा और सादाखेड़ी (शिवगढ़) के साथ अन्य सभी ठिकाने होलकर राज्य से निकलकर जावरा के नवीन राज्य के अधीन हो गये। ठाकुर प्रतापसिंह के बाद भवानीसिंह ठिकाने की गद्दी पर बैठे। भवानीसिंह के समय में अंग्रेजों से बन्दोबस्त होने पर इन्हें तत्कालीन जावरा नवाब गौस मोहम्मद खाँ की

ओर से कर्नल बोर्थविक द्वारा ज्येष्ठ बदि 11 संवत् 1896, सन् 1839 ई. को तीन ग्रामों सरसी, खीमाखेड़ी और खोकरा जागीर की सनद प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त पिपलौदा जमींदारी के अन्तर्गत पंचेवा चौथान की सनद दिसम्बर 28, 1839 ई. को प्राप्त हुई ।

ठाकुर भवानीसिंह के बाद दलपतसिंह सरसी ठिकाने का स्वामी बना। सन् 1857 का राष्ट्रीय विद्रोह इसी के शासनकाल में हुआ। परिस्थितिवश जावरा नवाब गौस मोहम्मद खाँ को सरसी ठिकाने के गढ़ी में अपनी बेगमों को सुरक्षित रखने की दृष्टि से बाध्य होना पड़ा था।

जावरा नवाब को अपनी बेगमें सुरक्षित रखने के लिए सरसी की ओर तांकना पड़ा इसका भी एक कारण था। जावरा नवाब गौस मोहम्मद खाँ ने फकीर के वेश में रहने वाले शाहजादे फिरोजशाह को अपने राज्य के अस्तित्व के खतरे में पड़ जाने की सम्भावना देख उसे राज्य की सीमा से निकल जाने का आदेश दिया।[3] तब शाहजादा फिरोज खाचरौद के निकट स्थित फरनाजी के मन्दिर में रहा, वहाँ से मन्दसौर पहुँचकर अगस्त, 1857 को बादशाह की भाँति मसनद पर बैठा।[4] उन्हीं दिनों अगस्त 29, 1857 ई. को रतलाम नरेश राजा बलवन्तसिंह का देहान्त हो गया ।[5] अपने घनिष्ट सम्बन्धों के कारण जावरा नवाब मातमपुर्सी के लिए रतलाम गया। उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उसके भतीजे अब्दुल सत्तार खाँ ने जावरा में विद्रोह की घोषणा कर दी । जब इस बात की खबर नवाब को लगी, तत्काल जावरा लौटा और असंगठित विद्रोह को दबा दिया । तब अब्दुलसत्तार खाँ अपने अनेक साथियों के साथ मन्दसौर चला गया, जहाँ शाहजादा फिरोज ने उसे नवाब की उपाधि एवं 5 तोपों की सलामी का अधिकार प्रदान कर अपनी सेना का सेनापति बना लिया।[6]

इन सब घटनाओं ने जावरा नवाब को काफी आतंकित कर दिया। विद्रोह के और अधिक व्यापक होने की सम्भावनाएँ काफी प्रबल हो रही थीं। उन दिनों जावरा नगर की सुरक्षा व्यवस्था हेतु न तो परकोटा बना

था और न अन्य कोई सुरक्षा के बन्दोबस्त थे । ऐसी दशा में परिवार की बेगमों को कहीं सुरक्षित स्थान पर भेजना नितांत आवश्यक था। लूट–खसोट की बढ़ती घटनाओं, जागीरदारों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं कर्मचारियों के गुप्त रूप से शाहजादा फिरोजशाह से मिले होने की आशंका से नवाब जावरा अच्छी तरह से परिचित था। अतः काफी सोच विचार करने के बाद नवाब ने बेगमों सहित जनाना महल को अपने राज्य के प्रथम श्रेणी के जागीरदार ठाकुर दलपतसिंह सरसी की गढ़ी में भेजना सर्वथा उपयुक्त लगा क्योंकि प्रथम तो रतलाम राजघराने से संबद्ध होने एवं आवागमन के मुख्य मार्ग से दूर, जावरा से कोई 17 कि.मी. दक्षिण–पूर्व में स्थित सरसी ठिकाना काफी सुरक्षित था । द्वितीय इसके पास केरवासा और सादाखेड़ी के राठौड़ ठिकाने होने एवं दो तरफ रतलाम तथा सैलाना के राठौड़ राज्यों की सीमाएँ लगी होने से सरसी के ठाकुर का ठिकाना सामरिक दृष्टि से भी सुरक्षित माना गया। तृतीय ठाकुर दलपतसिंह पर अविश्वास का भी कोई कारण न था।

अतः जावरा नवाब गौस मौहम्मद खाँ ने आवश्यक सुरक्षा प्रबन्ध के साथ बेगमों को तुरंत सरसी ठिकाने में भिजवा दिया । दलपतसिंह ने भी बेगमों के निवास की सम्मानजनक समुचित व्यवस्था कर सुरक्षा के सभी आवश्यक प्रबन्ध किए ।

दलपतसिंह के बाद स्वरूपसिंह ठिकाने का स्वामी बना । उसने वर्तमान गढ़ी में महल आदि का निर्माण कराया था। उसके पश्चात शम्भूसिंह ठिकाने की गद्दी पर काबिज हुआ। शम्भूसिंह के समय में ठिकाना सरसी टांका सालमशाही में भरता था । शम्भूसिंह के समय में सालमशाही रुपये का मूल्य घटकर छः आना (लगभग 37 पैसे) रह गया, जिससे नवाब ने सालमशाही के घटे मूल्य के कारण टांके की राशि कलदार रुपयों में बढ़ाकर लेना चाहा, जिसे सरसी ठाकुर ने स्वीकार नहीं किया । अतः टांके की, बकाया राशि के बदले नवाब इफ्तिखार अली खाँ ने सरसी के गाँव खोखरा को राजसात कर लिया।

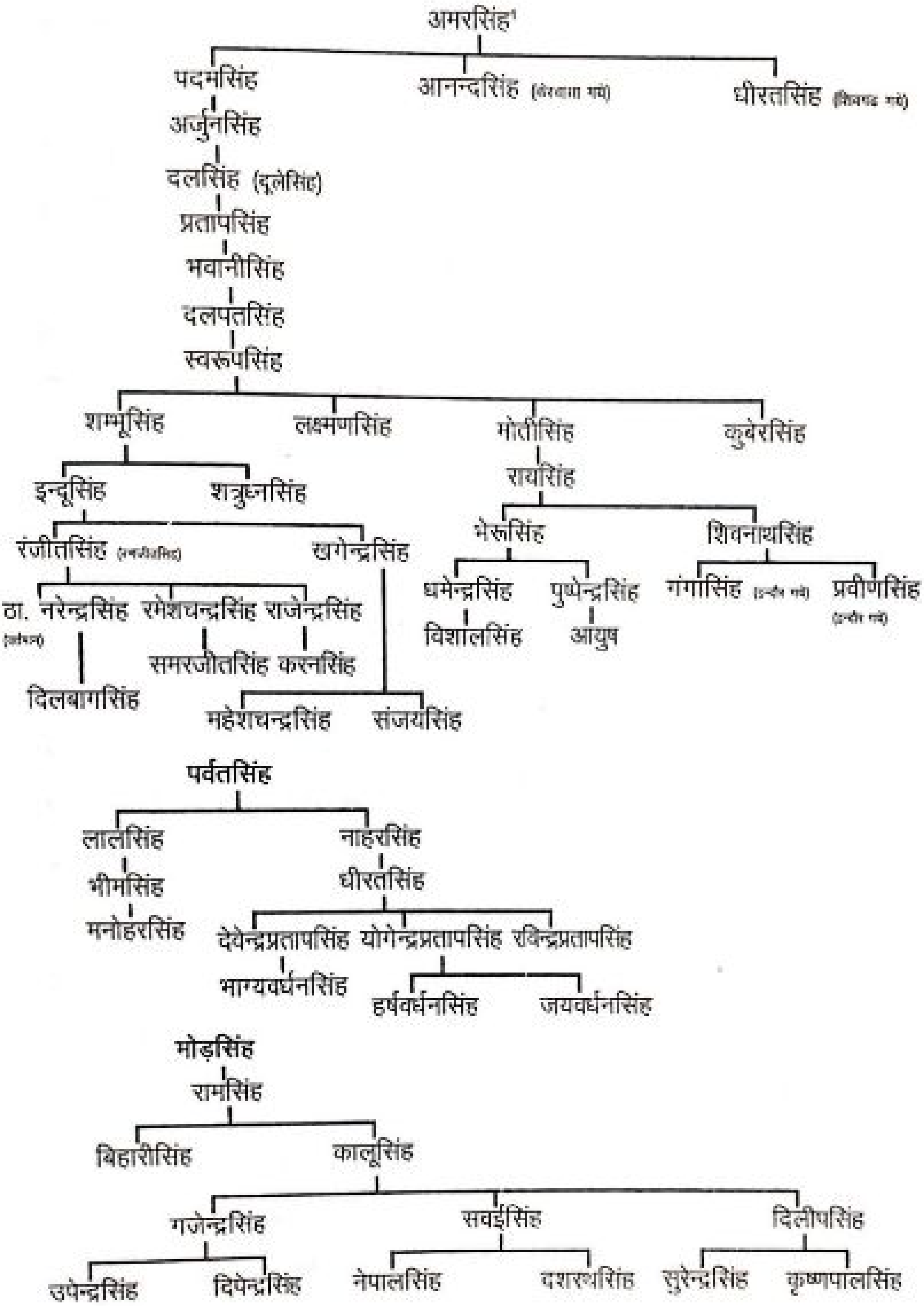
नवाब द्वारा किये गये इस व्यवहार से सरसी, केरवासा और बोरखेड़ा के जागीरदारों द्वारा लम्बी कानूनी लड़ाई लड़ी गई। अन्ततः अंग्रेज सरकार ने जावरा नवाब को समाधान कारक आपसी फैसला करने का परामर्श दिया। शम्भूसिंह के बाद सरसी में इन्दूसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। इन्दूसिंह ने अपने राजसात किये गये खोखरा ग्राम को वापस प्राप्त करने के लिए जून 2, 1941 ई. को जावरा नवाब इफ्तिखार अली खाँ को प्रार्थना पत्र भेजा, जिसमें 1857 के विद्रोह के समय ठिकाने द्वारा नवाब राजवंश की बेगमों को अपने यहाँ सुरक्षित ठहराने की सेवा का उल्लेख करते हुए राजसात किये गये ग्राम खोखरा को पुनः ठिकाने को लौटाने की प्रार्थना की गई। इस पर नवाब ने टांके की रकम कम करते हुए अपने 4 जून, 1941 ई. के आदेश द्वारा सरसी ठिकाने के राजसात किये गये ग्राम खोखरा को वापस लौटा दिया, किन्तु साथ ही सन् 1839 ई. की सनद के अनुसार सरसी ठाकुर को राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्यों के निर्वाह की ताकीद भी की।[7] इन्दूसिंह के बाद रणजीतसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। उसके तीन पुत्र – नरेन्द्रसिंह, रमेशचन्द्रसिंह और राजेन्द्रसिंह हैं। वर्तमान में ठाकुर नरेन्द्रसिंह सरसी ठिकाने के स्वामी हैं। इनके एक पुत्र दिलबागसिंह है।

सन् 1908 ई. में सरसी ठिकाने का क्षेत्रफल 9219 एकड़ था। जबकि 1901 ई. के अनुसार जनसंख्या 1352 थी। वार्षिक आमदनी 20848 रुपये थी। 12301 रुपये वार्षिक टांके के चार किश्तों में ठिकाने द्वारा जावरा राज्य को भुगतान किये जाते थे। पंचेवा चौथान जागीर का वार्षिक टांका 415 रुपये पिपलौदा दरबार को भुगतान किया जाता था।[8]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 177 अ ।
2. सरसी ठिकाने की वंशावली । गुरां. ग्रंथ 3, पत्र 179 ब, 184 ब।
3. तारीखे जावरा (हिन्दी अनु.), पृ. 61–62 ।
4. मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, भूमिका ।
5. तारीखे जावरा, पृ. 66 ।
6. तारीखे जावरा, पृ. 66 ।
7. जागीरदार सरकार जावरा, गैर मामूली जिल्द 33, नं. 2, जून 4, 1941 ई. ।
8. जावरा स्टेट गजेटियर, पृ. 93 ।

ठिकाना – सरसी



1. मालवा में जावरा मुस्लिम राज्यान्तर्गत इस ठिकाने की स्थापना फतेहसिंह राठौड़ के 11 वें पुत्र अमरसिंह ने की थी ।

ठिकाना आम्बा :

जावरा मुस्लिम राज्य के अन्तर्गत ठिकाना आम्बा[1] के जागीरदार अखेराजोत (= अखेसिंहोत) खांप के राठौड़ हैं। जिसकी स्थापना रतलाम राज्य के संस्थापक रतनसिंह के पुत्र अखेराज के वंशजों ने की थी। अखेराज रतनसिंह का छटा पुत्र था । रतनसिंह की पाँचवीं रानी कछवाही शेखावति सुखरूप दे कुंवर थी जो रायसल शेखावत के पौत्र टोडरमल के लड़के पुरुषोत्तम की पुत्री थी।[2] इसी रानी से रतनसिंह के पाँच पुत्र करण, छत्रसाल, अखेराज, पृथ्वीराज और जेतसिंह तथा दो पुत्रियाँ बनेकुंवर और महाकुंवर भी हुई ।

अखेराज का रतनरासो में नाम तो मिलता है, परन्तु उसका कोई विवरण नहीं दिया गया है।[3] अपने अन्य भाइयों के समान वह भी शाही मनसबदार था । सम्भवतः इसी मनसब की जागीर में उसे डग पड़ावा का परगना मिला था। उसे यह परगना सन् 1656–57 ई. में मिलने का उल्लेख किया गया है जो सम्भव नहीं था।[4] क्योंकि सन् 1658 ई. में रतनसिंह की धरमाट युद्ध में मृत्यु के बाद ही उसे यह परगना मिला होगा। यह परगना सन् 1664–65 ई. में उसके अधिकार से निकल गया था।[5] संभवतः इसके बाद ही अखेराज को कोटड़ी–पिड़ावा सरकार के अन्तर्गत डग दुधालिया का परगना मिला होगा, जो सन् 1679 ई. में भी अखेराज के ही अधिकार में था।[6] अखेराज का क्या मनसब था ? और कौन–कौन से परगने या गाँव उसके अधिकार में रहे तथा उनमें कब तथा क्या परिवर्तन हुए, ये सब बातें ज्ञात नहीं होती हैं ।

शाही मनसबदार होने के कारण अपने अन्य भाइयों की तरह सन् 1679 ई. में अखेराज भी अपने ज्येष्ठ भाई रामसिंह के साथ दक्षिण में शाहजादे मुअज्जम (शाह आलम) की सेना में नियुक्त था। अप्रेल 8, 1680 ई. को अखेराज अपने भाई रामसिंह के साथ औरंगजेब के शाही दरबार में अजमेर आया।[7] सन् 1682 ई. में इसे पुनः दक्षिण के सूबेदार खानजहाँ

की सेना में नियुक्त किया गया, किन्तु वह अपने छोटे भाई किशनसिंह को साथ लेकर खानजहाँ की सेना से निकल भागा । उन दिनों दुर्जनसिंह हाड़ा मालवा–बूंदी में उपद्रव मचा रहा था, ये दोनों भाई उससे जा मिले। सूबेदार खानजहाँ ने पत्र लिखकर दोनों भाइयों को समझाने का पूरा प्रयत्न किया, परन्तु उसे कोई सफलता नहीं मिली ।[8]

सन् 1685 में अखेराज, किशनसिंह और दुर्जनसिंह का मालवा में उपद्रव बढ़ने लगा । और अब तो वे मालवा सूबा के अन्तर्गत रामपुरा[9] राज्य से गाय–बैल आदि पशुओं को घेर–घेरकर उन्हें दुर्जनसिंह के पास पहुँचाने लगे। रामपुरा के गोपालसिंह चन्द्रावत ने उनको रोकने के लिए सैनिक भेजे। जिनके साथ इन दोनों भाइयों और उनके सैनिकों की मुठभेड़ हो गई, जिसमें किशनसिंह और उसके कुछ सैनिक मारे गये। तब अखेराज और उसके अन्य साथी रामपुरा क्षेत्र से भाग निकले। जब यह सारा समाचार दिल्ली पहुँचा तो कुछ माह बाद शाही दरबार से मालवा के तत्कालीन सूबेदार मुगल खाँ और बूंदी के राव अनिरुद्धसिंह के नाम हुक्म पहुँचा कि वे इन विद्रोहियों का पीछा कर उन्हें दबायें ।[10]

सन् 1686 ई. के अन्तिम महीनों में अखेराज रतलाम और बदनावर के आस–पास ही घूमता रहा । उन्हीं दिनों शाहजादा अकबर को समुद्र मार्ग से फारस रवाना कर दक्षिण से मेवाड़–मारवाड़ की ओर लौटता हुआ दुर्गादास राठौड़ मालवा से होकर गुजरा तब अखेराज उससे मिला और तीन–चार दिन तक दुर्गादास राठौड़ का खूब आदर सत्कार किया। रतलाम से रवाना होते समय दुर्गादास राठौड़ ने अखेराज को भी अपने साथ ले लिया । मार्ग में दुर्गादास राठौड़ एवं अखेराज ने शाही प्रदेश में लूटमार करते हुए अप्रेल 22, 1687 ई0 को मालपुरा लूटा और अन्त में जोधपुर नरेश अजीतसिंह की सेवा में उपस्थित हुए ।[11] डेढ़–दो साल तक अखेराज दुर्गादास के साथ जोधपुर की राठौड़ सेना में ही बना रहा और शाही सेना से हुई अनेक मुठभेड़ों में भाग लिया ।[12] बाद में वह राठौड़ सेना को छोड़कर वापस मालवा में लौट आया । मन्दसौर और

उज्जैन के फौजदारों के साथ अप्रेल 4, 1688 ई. को युद्ध हुआ और एक सप्ताह बाद अप्रेल 11 को रामसर नामक स्थान पर शाही सेना से राठौड़ों के साथ दूसरी मुठभेड़ हुई । अखेराज इन दोनों युद्धों में शाही सेना के विरुद्ध लड़ा था ।[13]

इसके बाद अखेराज के जीवन से संबंधित कोई विवरण प्राप्त नहीं होता । ऐसा अनुमान होता है कि जोधपुर की इस राठौड़ सेना के साथ कुछ समय और बिता कर अखेराज पुनः मालवा की ओर लौट आया था । क्योंकि गुरां निर्भयसिंह (गुरुजी) के आधार पर लिखा है कि अन्त में अखेराज कुशलगढ़ ठिकाने के अन्तर्गत रामझर सरवा नामक स्थान पर युद्ध करता हुआ मारा गया। वहीं उसकी दाह क्रिया की गई और उस दाह स्थान पर एक चौंतरा बना दिया गया था।[14] किन्तु आम्बा ठिकाने के वंशजों के अनुसार अब उस चौंतरे का वहाँ कहीं अस्तित्व नहीं है ।

अखेराज के कई पुत्र होना बताया जाता है। किन्तु नारायण गणेश शिरसालकर के अनुसार उसके सामंतसिंह, रुद्रसिंह और अमरसिंह नामक तीन पुत्र थे ।[15] अखेराज की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र सामन्तसिंह ने अपने पिता के अधीन रहे डग–पड़ावा परगने पर पुनः अपना अधिकार स्थापित करने के प्रयत्न शुरू किये किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। तब अपना राज्य स्थापित करने के लिए वह इधर–उधर घूमने लगा। इसी बीच सामन्तसिंह का पिपलौदा[16] के ठाकुर पृथ्वीराज से आपसी बैर हो गया और आपसी मुठभेड़ में सामन्तसिंह मारा गया।[17] सेरपुर की इस लड़ाई में जहाँ सामन्तसिंह मारा गया था, वहाँ उसकी स्मृति में एक चौंतरा बना हुआ है। आम्बा ठिकाने के लोग आज भी उसे जुझार मानकर उस चौंतरे पर उसकी पूजा–अर्चना करते हैं। शिरसालकर के अनुसार सामन्तसिंह के मारे जाने के बाद उसके छोटे भाई अमरसिंह[18] ने अपने ज्येष्ठ भ्राता सामन्तसिंह की मृत्यु का बदला लेने के लिए रतलाम क्षेत्र के अपने भाई– बन्धुओं को साथ लेकर पिपलौदा को घेर लिया तब सागथली ठाकुर वजेसिंह, पंचेड़ के ठाकुर सुलतानसिंह, सरसी ठाकुर

अमरसिंह ने बीच में पड़कर दोनों में मेल कराया । फलस्वरूप सन् 1696 ई. में पिपलौदा के ठाकुर ने अमरसिंह को सामन्तसिंह की मुंडकटाई में मय खेड़ेजात आम्बा ग्राम जागीर में प्रदान कर दिया तथा सिरोपाव देकर उसे विधिवत आम्बा का जागीरदार घोषित कर दिया ।[19] ठिकाने की सनद सन् 1702 ई. में दी गई थी। चूँकि अखेराज रतलाम के द्वितीय राज्य के शासक छत्रसाल का भाई था । अतः परम्परानुसार इसके वंशज आम्बा के ठाकुर को महाराज कहा जाता था ।

कालान्तर में जब मराठों का मालवा पर अधिकार स्थापित हो गया तब पिपलौदा जमींदारी के साथ–साथ आम्बा ठिकाना भी होलकर राज्य के अधीन हो गया । सन् 1810 ई. में होलकर ने अपने सेनापति अब्दुल गफूर खाँ को एक हजार सवारों के खर्च पेटे नवाब की उपाधि के साथ जावरा, बड़ावदा, ताल–मण्डावल, संजीत, मल्हारगढ़ और पिपलौदा के परगने जागीर में प्रदान कर दिये ।[20] तब पिपलौदा के साथ आम्बा ठिकाना भी नवाब गफूर खाँ की जागीर में सम्मिलित हो गया। 6 जनवरी, 1818 ई. की मन्दसौर संधि के द्वारा जावरा के नवीन मुस्लिम राज्य की स्थापना होने पर ये क्षेत्र इस राज्य के अन्तर्गत हो गये ।

मन्दसौर संधि के 12 वें अनुच्छेद में नवाब गफूर खाँ को पिपलौदा का टांका और सायर (Sayar) की रकम देने का ही उल्लेख था । इस आधार पर पिपलौदा ठाकुर ने जावरा राज्य के अन्तर्गत एक जागीरदार के रूप में रहना स्वीकार नहीं किया। इसके कारण जावरा और पिपलौदा के मध्य सन् 1923 ई. तक विवाद बना रहा । जनवरी, 1924 ई. के प्रारम्भ में अंग्रेज सरकार द्वारा पिपलौदा को एक स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता प्रदान करने के पश्चात ही इस विवाद का अन्त हुआ ।[21] पिपलौदा के पृथक स्वतंत्र राज्य की स्थापना हो जाने के बाद भी आम्बा ठिकाना जावरा राज्य के अन्तर्गत ही बना रहा ।

सन् 1820 से 1835 ई. के मध्य जब अंग्रेज सरकार द्वारा इस क्षेत्र के ठिकानों का बन्दोबस्त किया जा रहा था, तब आम्बा महाराज ने अपने

ठिकाने का बन्दोबस्त कराने में कोई रुचि नहीं ली । इसके कारण आम्बा ठिकाना जावरा राज्य के अन्तर्गत एक 'नॉन गारन्टेड' ठिकाना बनकर रह गया।

आम्बा ठिकाने के प्रथम संस्थापक महाराज अमरसिंह के बाद क्रमशः देवीसिंह, जालमसिंह, दलसिंह, बख्तावरसिंह एवं हरिसिंह आम्बा ठिकाने के उत्तराधिकारी बने । चूँकि आम्बा ठिकाने की जागीर नवाब जावरा द्वारा प्रदत्त तो थी नहीं। अतः आम्बा महाराज ने कभी नवाब जावरा को अपना स्वामी मानकर तदनुरूप आचरण करने की आवश्यकता ही नहीं समझी। हरिसिंह के शासनकाल में जावरा के नवाब इस्माईल खाँ (1865-95 ई.) ने आम्बा ठिकाने से सेवा, चाकरी, नजराना आदि लेने के प्रयास किये।[22] इसके विरुद्ध आम्बा महाराज ने पॉलिटिकल एजेन्ट मालवा के समक्ष शिकायत प्रस्तुत की । इस पर पॉलिटिकल एजेन्ट मालवा ने फरवरी 2, 1882 ई. के एक निर्णयपत्र में लिखा कि आम्बा ठिकाना सन् 1696 ई. में मुंडकटाई में दिया गया है। अतः नवाब जावरा को ठिकाने से टांके के अतिरिक्त सेवा, चाकरी, नजराना आदि लेने का कोई अधिकार नहीं है । इस निर्णय पत्र में कप्तान बोर्थविक पॉलिटिकल एजेन्ट मालवा के सन् 1829 ई. के फैसला क्रमांक 222 के सन्दर्भ में उल्लेख है कि सन् 1846 में ए.जी.जी. राबर्ट हेमिल्टन, इन्दौर ने आम्बा के जालमसिंह के समय नवाब गौस मोहम्मद को आम्बा संबंधी निर्णय से अवगत करा दिया था ।[23]

महाराज हरिसिंह के बाद आम्बा ठिकाने की गद्दी पर दलपतसिंह बैठा । इसके शासनकाल में भी जावरा नवाब इफ्तिखार अली खाँ ने सेवा, चाकरी, नजराना आदि लेने चाहे किन्तु ठिकाने की ओर से मनाकर दिया गया, इस अप्रसन्नता के कारण जावरा नवाब ने टांके की राशि में अभिवृद्धि कर दी जो दोनों के मध्य स्वतंत्रता के बाद राज्यों के विलीनीकरण तक बराबर बना रहा। मार्च 30, 1916 ई. को दलपतसिंह की मृत्यु हो गई उसके पश्चात उसका पौत्र विजयसिंह (वजेसिंह) ठिकाने की गद्दी पर बैठा, क्योंकि दलपतसिंह के समय में ही उनके ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मणसिंह की

मृत्यु हो चुकी थी। महाराज विजयसिंह के बाद इनके ज्येष्ठ पुत्र विश्वनाथसिंह आम्बा ठिकाने के उत्तराधिकारी बने । वर्तमान में महाराज विश्वनाथसिंह के पुत्र महाराज नरपतसिंह आम्बा घराने के प्रमुख हैं ।[24]

गणेश शिरसालकर ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि आम्बा ठिकाने के अन्तर्गत 12 गाँव जागीर में थे ।[25] किन्तु यह कथन आम्बा ठिकाने की दो सनदों को देखकर ठीक नहीं माना जा सकता। सम्भवतः पाँच–पाँच, दस–दस भीलों के मकानों वाले खेड़ों को ग्राम समझकर 12 ग्राम आम्बा ठिकाने में होना लिख दिया गया है। इन खेड़ों में से अमरगढ़ खेड़ा आम्बा महाराज ने बाघजी जलखेड़िया[26] की हत्या कराने के लिए सरवन के ठाकुर को दे दिया था।[27]

1908 ई. के जावरा राज्य के गजेटियर के अनुसार आम्बा ठिकाने का क्षेत्रफल 3437 एकड़ था, जबकि 1901 ई. की जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या 598 एवं वार्षिक आय रुपये 8223 थी । ठिकाने द्वारा सन् 1908 में 1011 रुपये सालमशाही के रूप में टांके के जावरा राज्य को दिये जाते थे ।[28]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. आम्बा 23° 32′ उत्तर तथा 74° 57′ पूर्व में सैलाना से 8 कि.मी. एवं रतलाम से 28 कि.मी. तथा जावरा से लगभग 26 कि.मी. है।
2. वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री महेशदासोत री, पृ. 79; मुहतां नैणरी 2, पृ. 35–36; गुरां ग्रंथ के आधार पर रतनरासो, पृ. 52 में इस रानी का नाम अतिरूप दे कुंवर दिया है । गुरां ग्रंथ में इस रानी को अमरसर की होना बताते हैं, परन्तु राणीमंगा में उसे मनोहरपुर की होना लिखा है । रतलाम का प्रथम राज्य, पृ.

ठिकाना – आम्बा

- महा. अमरसिंह[1]
  - महा. देवीसिंह
    - महा. जालमसिंह
      - महा. दलसिंह
        - महा. बख्तावरसिंह
          - महा. हरीसिंह
            - महा. दलपतसिंह
              - लक्ष्मणसिंह
                - महा. विजयसिंह[2]
                  - महा. विश्वनाथसिंह
                    - महा. नरपतसिंह (वर्तमान)
                      - नरेन्द्रसिंह
                      - योगेन्द्रसिंह
                      - चन्द्रवीरसिंह
                  - धनपालसिंह
                    - विक्रमसिंह
                      - हर्षवर्धनसिंह
                    - राजेन्द्रसिंह
                      - अनिरुद्धसिंह
                  - महेन्द्रपालसिंह
                    - अमरसिंह
                      - अभिजीतसिंह
                    - यशपालसिंह
                      - ब्रजपालसिंह
                    - कृष्णचंदसिंह
              - भोपतसिंह
                - पृथ्वीसिंह
                  - दुर्गापालसिंह
                    - भूपेन्द्रसिंह
                      - सोहनसिंह
                    - दिलीपसिंह
                      - कृष्णपालसिंह
                - जसवन्तसिंह
                  - राजेन्द्रसिंह
                    - सुरेशसिंह
                    - रविन्द्रसिंह
                    - विजेन्द्रसिंह
                    - देवेन्द्रसिंह
                  - महेन्द्रसिंह
                    - गजेन्द्रसिंह
                    - दिपेन्द्रसिंह
                  - कल्याणसिंह
                    - लोकेन्द्रसिंह
                    - जितेन्द्रसिंह
                  - सुरेन्द्रसिंह
                    - प्रदीपसिंह
                    - जयदीपसिंह
              - चानसिंह*

- चानसिंह*
  - दूलेसिंह
    - गुरुगोविन्दसिंह
      - आदित्यप्रतापसिंह
    - गुरुप्रतापसिंह
      - भानुप्रतापसिंह
  - तेजसिंह
    - विश्वजीतसिंह
    - राजकुमारसिंह
    - नरेन्द्रसिंह
    - हिम्मतसिंह
    - कुलदीपसिंह
  - मनोहरसिंह
    - मनीषसिंह
      - युवराजसिंह
      - आदित्यराजसिंह
    - चन्द्रभानुसिंह
    - सूर्यभानुप्रतापसिंह
      - ब्रजराजसिंह

---

1. इस ठिकाने की स्थापना रतलाम राज्य के संस्थापक रतनसिंह, महेशदासोत राठौड़ के पुत्र 'अखेराज' के वंशजों ने की थी । वास्तव में यह ठिकाना पिपलौदा के डोडिया रावत प्रीथीराज (पृथ्वीराज) ने अखेराज के पुत्र सामन्तसिंह की मुण्ड कटाई में सामन्तसिंह के छोटे भाई 'अमरसिंह' अखेराजोत को सन् 1696 ई. को प्रदान किया ।
2. महाराज दलपतसिंह के पश्चात उनके पौत्र 'विजयसिंह' ठिकाने की गद्दी पर बैठे; क्योंकि दलपतसिंह के समय में ही उनके ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मणसिंह की मृत्यु हो चुकी थी।

ठिकाना केरवासा :

जावरा मुस्लिम राज्य के अन्तर्गत ठिकाना केरवासा के जागीरदार भी फतेहसिंह खांप के राठौड़ एवं सरसी ठिकाने के भाई बंध हैं ।

सरसी ठिकाने के संस्थापक अमरसिंह के द्वितीय पुत्र आनन्दसिंह ने वि.सं. 1755 (सन् 1698 ई.) में केरवासा ठिकाने की स्थापना की थी।[1] आनन्दसिंह के बाद केरवासा ठिकाने की गद्दी पर जालमसिंह बैठा। इन्होंने अपने कार्यकाल में केरवासा गढ़ी (दुर्ग) एवं तालाब का निर्माण कराया था। इसके अतिरिक्त जालमसिंह ने पिपलौदा[2] के पास सबलगढ़ की नाल में जालमगढ़ (अपने नाम पर) गाँव भी बसाया था । आनन्दसिंह के द्वितीय पुत्र एवं जालमसिंह के द्वितीय भाई जुझारसिंह हुए । इनके तृतीय भाई पहाड़सिंह हुए जिनके वंशज लसुड़िया ग्राम में तथा चतुर्थ भाई चन्दनसिंह के वंशज केरवासा में ही हैं। जालमसिंह के दो पुत्र सरदारसिंह और तखतसिंह हुए। सरदारसिंह निःसंतान थे। अतः तखतसिंह अपने पिता की गद्दी पर बैठे । सन् 1839 ई. में अंग्रेजों से बंदोबस्त कराने के बाद जावरा राज्य के अन्तर्गत इन्हें केरवासा ठिकाने की सनद मिली।

इन्दौर रेजिडेण्ट राबर्ट हेमिल्टन की ओर से केरवासा को संरक्षित ठिकाने की द्वितीय सनद वि.सं. 1901 (सन् 1844 ई.) को प्राप्त हुई । तखतसिंह के बाद भगवतसिंह, जोरावरसिंह केरवासा ठिकाने के उत्तराधिकारी हुए। जोरावरसिंह निःसंतान थे। अतः इनके बाद भगवतसिंह के द्वितीय पुत्र एवं जोरावरसिंह के द्वितीय भाई धोकलसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को गद्दी पर बिठाया। सन् 1928 ई. में इन्होंने केरवासा गढ़ी में चार मंजिला महल का निर्माण कराया इसके साथ ही नृसिंह भगवान का भव्य मन्दिर भी बनवाया। सन् 1911 ई. में दिल्ली में आयोजित दरबार में ये सम्मिलित हुए थे। इनके एक पुत्र लक्ष्मणसिंह और पाँच पुत्रियाँ थीं, जिनका विवाह महुआ (सीतामऊ राज्य का ठिकाना), कोटड़ा (कोटा राज्य), पिपल्या हामा (ग्वालियर राज्य), चिकलाना (ग्वालियर राज्य) और राजगढ़ (कोटा राज्य)

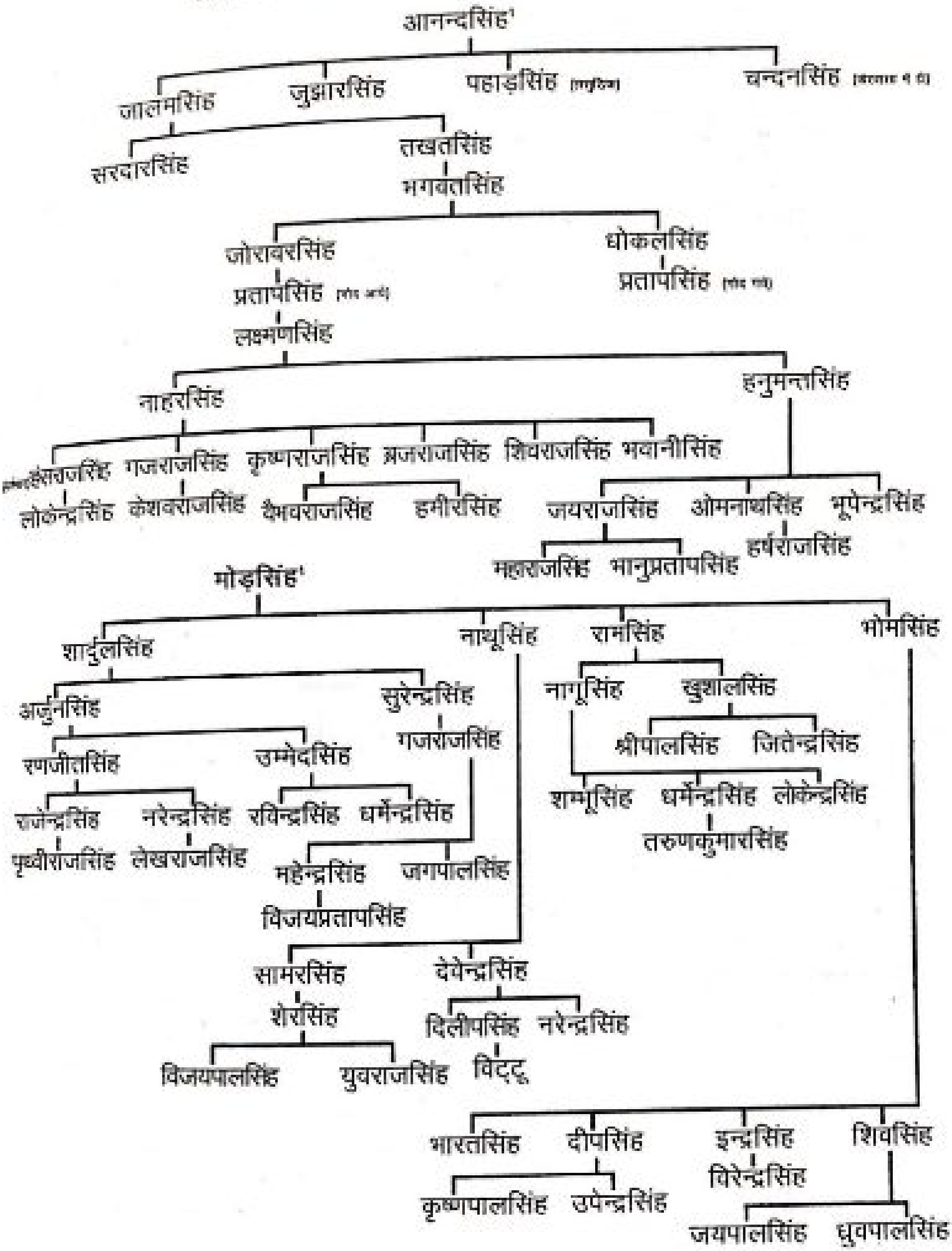
ठिकानों में किये गये । सन् 1947 ई. में प्रतापसिंह की मृत्यु के बाद इनका पुत्र लक्ष्मणसिंह गद्दी पर बैठा । लक्ष्मणसिंह के बाद इनका ज्येष्ठ पुत्र नाहरसिंह गद्दी पर बैठा । इनके छः पुत्र हंसराजसिंह, गजराजसिंह, कृष्णराजसिंह, ब्रजराजसिंह, शिवराजसिंह और भवानीसिंह हुए। नाहरसिंह के बाद वर्तमान में इनके ज्येष्ठ पुत्र हंसराजसिंह केरवासा घराने के प्रमुख हैं ।[3]

केरवासा ठिकाने को सैलाना राज्य की ओर से एक ग्राम नयापुरा जागीर में प्राप्त हुआ था, जो जागीरों के विलीनीकरण तक ठिकाने में बना रहा । सन् 1908 ई. के जावरा स्टेट गजेटियर के अनुसार इस ठिकाने का क्षेत्रफल 3259 एकड़ था जबकि 1901 ई. की जनगणनानुसार इसकी जनसंख्या 716 और वार्षिक आय 9307 रुपये कलदार थी। टांके के 5001 रुपया सालमशाही जावरा नवाब को दिये जाते थे ।[4]

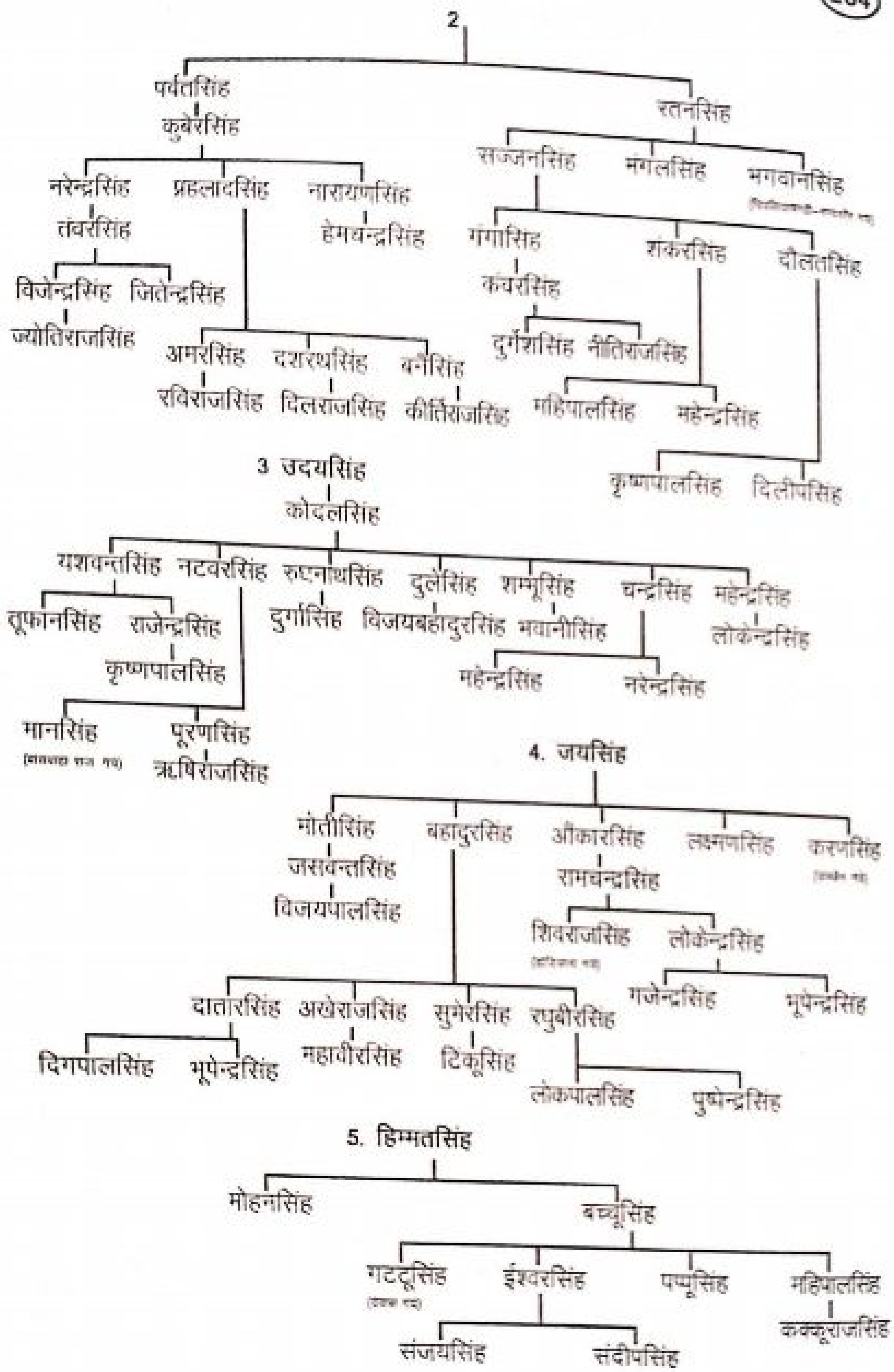
संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 179 ब ।
2. पिपलौदा 74^0 57′ उत्तर तथा 23^0 36′ पूर्व में जावरा से 17.6 कि.मी. की दूरी पर स्थित।
3. केरवासा घराने की वंशावली ।
4. जावरा स्टेट गजेटियर, पृ. 94–95 ।

फतेहसिंहोत राठौड़, ठिकाना – केरवासा



1. सरसी ठिकाने के संस्थापक अमरसिंह राठौड़ के द्वितीय पुत्र आनन्दसिंह ने केरवासा ठिकाने की स्थापना सन् 1698 ई. में की थी ।



1. 1, 2, 3, 4, 5, ये परिवार भी केरवासा ठिकाने से ही संबंधित हैं, किन्तु इनका जुड़ाव कहाँ से है, ज्ञात नहीं हो सका है ।

ठिकाना बोरखेड़ा :

जावरा मुस्लिम राज्य के अन्तर्गत इस ठिकाने के जागीरदार महेशदासोत फतेहसिंह के वंशज फतेहसिंहोत खांप के राठौड़ हैं। फतेहसिंह के 10 वें पुत्र छतरसिंह ने जावरा मुस्लिम राज्य के अन्तर्गत बोरखेड़ा[1] ठिकाने की स्थापना की थी।[2] भाईयों के आपसी बंटवारे में छतरसिंह को पहले रेवास ग्राम प्राप्त हुआ था, जो बाद में बोरखेड़ा ठिकाने के अन्तर्गत ही रहा। छतरसिंह के जीवन से संबंधित अन्य कोई विवरण नहीं मिलता है।

छतरसिंह के बाद क्रमशः देवीसिंह, भीमसिंह, उदयसिंह और बख्तावरसिंह बोरखेड़ा की गद्दी पर बैठे। बख्तावरसिंह के पाँच पुत्र जिनमें गुलाबसिंह, सालमसिंह, दीपसिंह, दातारसिंह और रघुबीरसिंह हुए । बख्तावरसिंह के बाद इनका ज्येष्ठ पुत्र गुलाबसिंह तत्पश्चात जोरावरसिंह, किशोरसिंह बोरखेड़ा ठिकाने की गद्दी पर बैठे । किशोरसिंह के तीन पुत्र भेरूसिंह, माधोसिंह और बलवंतसिंह हुए। किशोरसिंह के बाद इनका ज्येष्ठ पुत्र भेरूसिंह ठिकाने की गद्दी पर बैठा। भेरूसिंह के बाद केसरीसिंह ठिकाने के प्रमुख हुए। केसरीसिंह निःसंतान रहे। अतः किशोरसिंह के द्वितीय पुत्र माधोसिंह के पुत्र मोहरसिंह[3] को गोद लेकर ठिकाने की गद्दी पर बैठाया। इसके बाद इनके पुत्र पुष्करराजसिंह वर्तमान में बोरखेड़ा राजघराने के प्रमुख हैं ।[4]

ठाकुर गुलाबसिंह के समय अंग्रेजी शासन से बंदोबस्त कराने के बाद सन् 1839 ई. में इन्हें कर्नल बोर्थविक की हस्ताक्षरयुक्त जावरा नवाब की ओर से बोरखेड़ा ठिकाने की सनद प्राप्त हुई । ठिकाने की द्वितीय सनद राबर्ट हेमिल्टन, तत्कालीन रेजिडेन्ट इन्दौर की ओर से सन् 1844 ई. को पुनः गुलाबसिंह को प्राप्त हुई ।[5]

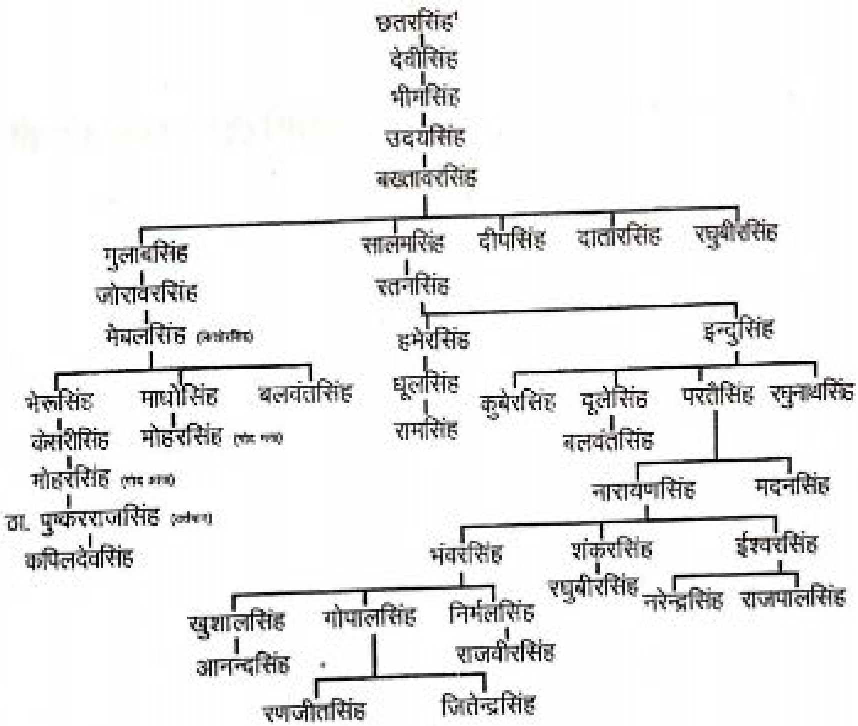
1908 ई. के जावरा स्टेट गजेटियर के अनुसार इस ठिकाने का क्षेत्रफल 5375 एकड था। जबकि 1901 ई. की जनगणना के अनुसार

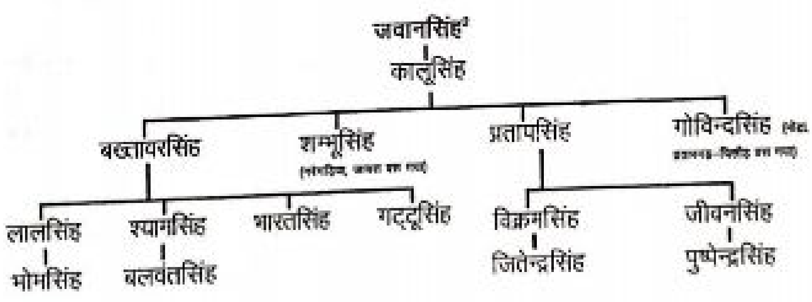
जनसंख्या 870 थी । ठिकाने की वार्षिक आय 15675 रुपया कलदार थी। ठिकाने द्वारा जावरा दरबार को टांके के रूप में 9201 रुपया सालमशाही या 4600 रुपये 8 आना कलदार चार किश्तों में भुगतान किये जाते थे ।[6]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. बोरखेड़ा 23^0 35′ उत्तर तथा 75^0 5′ पूर्व में जावरा से 12 कि. मी. दूर स्थित ।
2. गुरां ग्रंथ सं. 3, पत्र 174 अ ।
3. गुरां ग्रंथ सं. 3, पत्र 174 अ–ब; मूल ग्रंथ में मोहरसिंह के स्थान पर मोड़सिंह लिखा है ।
4. बोरखेड़ा राजघराने की वंशावली ।
5. ठिकाने की मूल सनद से ।
6. जावरा स्टेट गजेटियर, पृ. 94–95 ।

फतेहसिंहोत राठौड़, ठिकाना – बोरखेड़ा





1. फतेहसिंह महेशदासोत राठौड़ के पुत्र छतरसिंह ने जावरा मुस्लिम राज्यान्तर्गत बोरखेड़ा ठिकाने की स्थापना की थी ।
2. यह परिवार उसी जागीरदार वंश से है, किन्तु उसकी खांप का जुड़ाव कहां से है, ज्ञात नही हो सका है ।

अध्याय – 6

सैलाना रियासत के राठौड़ जागीरदार एवं उनकी वंशावली

ठिकाना सेमलिया

सैलाना राज्य के अन्तर्गत ठिकाना 'सेमलिया' के जागीरदार रतनसिंहोत राठौड़ हैं। सेमलिया, सैलाना से 16 कि.मी. दूर पूर्व दिशा में स्थित है। गाँव में प्राचीन शान्तिनाथ जैन मंदिर है, जिसका निर्माण श्रावण शुदी 15 सं. 1533 (सन् 1477 ई.) को हुआ था। यह मंदिर जैन समाज में तीर्थस्थान के रूप में देखा जाता है ।[1]

सैलाना महाराजा जयसिंह ने वि.सं. 1802 (ई. सन्. 1745) में अपने चतुर्थ पुत्र दौलतसिंह को पाँच गाँवों सहित सेमलिया की जागीर प्रदान की थी ।[2] दौलतसिंह के पश्चात बख्तावरसिंह गद्दी पर बैठा । इसने ठिकाने में एक कुआ खुदवाया तथा डोड़या पर एक बंगला भी बनवाया ।[3] बख्तावरसिंह के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह गद्दी पर बैठा। गुरां निर्भयसिंह ग्रंथ[4] के अनुसार शिवसिंह का तीसरा पुत्र हटेसिंह व चौथा पुत्र हेमन्तसिंह था। शिवसिंह के बाद कुशालसिंह गद्दी पर बैठा। कुशालसिंह का द्वितीय पुत्र प्राप्त वंशावली में देवीसिंह बताया गया है जबकि गुरां ग्रंथ में दलपतसिंह लिखा है।[5] कुशालसिंह के बाद नाहरसिंह गद्दी पर बैठा। नाहरसिंह के बाद भवानीसिंह गद्दी पर बैठा। वि.सं. 1921 (ई. सन् 1864) में भवानीसिंह ने एक उद्यान लगवाया तथा गाँव के पास एक कुआ पक्का बनवाया गया। महाराजा भवानीसिंह प्रजा हितैषी व धार्मिक सद्व्यवहार के व्यक्ति थे। इहलोक और परलोक में सद्गति प्राप्त करने हेतु भवानीसिंह वि.सं. 1924 मृगशर शुदी 3 (ई. सन् 1864) को तीर्थ

यात्रा हेतु चित्रकूट, प्रयाग, काशी, गया, मथुरा व वृन्दावन गया। वि.सं. 1931 (ई. सन् 1874) में भवानीसिंह ने सेमलिया गढ़ में बालकनी सहित एक दरीखाना का निर्माण कराया। वि.सं. 1934 श्रावण शुदी 13 (1877 ई.) के दिन ठाकुर भवानीसिंह का इन्दौर में निधन हो गया।[6]

महाराज भवानीसिंह के पश्चात उसका द्वितीय पुत्र छतरसिंह गद्दी पर बैठा। जबकि प्रथम पुत्र जसवंतसिंह, सैलाना महाराजा दुलेसिंह के औलाद न होने से गोद चला गया।[7] छतरसिंह की अपने बड़े भाई जसवंतसिंह के साथ ही प्रारंभिक शिक्षा इन्दौर डेली कालेज में हुई थी। इन्दौर में 5 वर्ष रहने के पश्चात छतरसिंह सेमलिया आ गया तथा 3 वर्ष 8 माह पश्चात तलवार बांधने की परम्परा अनुसार सैलाना से कामदार खुशालसिंह शिवगढ़ ठाकुर गमेरसिंह सेमलिया आये। इस अवसर पर एक अंग्रेज एजेण्ट कर्नल बुलर भी आया था ।[8]

वि.सं. 1954 (ई0सन् 1897) में छतरसिंह द्वारा पायगा पर दूसरी मंजिल बनवाई तथा जनाना महल को भी दो मंजिला बनवाया गया । वि. सं. 1971 (ई. सन् 1914) में गढ़ की दक्षिण दिशा में एक बुर्ज बनवाया गया । छतरसिंह अपने पूर्वजों की भांति काफी धार्मिक प्रवृत्ति का था। वि. सं. 1962 (ई. सन् 1905) में उसने अपने परिवार सहित 35 व्यक्तियों के साथ श्रीनाथद्वारा, कांकरोली, हरिद्वार, ऋषिकेश, मथुरा, वृन्दावान, गोकुलजी, गोवर्धन पर्वत, दाऊजी, सोरमघाट व उज्जैन आदि स्थानों की तीर्थयात्रा की। वि.सं. 1969 (ई. सन् 1912) में उसने पुनः द्वारकापुरी, सुदामापुरी व गिरनार की यात्रा की। वि.सं. 1970 (ई. सन् 1913) में छतरसिंह अपने रणवास सहित श्री ओंकारेश्वर की भी यात्रा की थी ।[9]

सैलाना महाराजा जसवंतसिंह की तरफ से धर्म महामंडल के डेपुटेशन में लार्ड मिण्टो से मिलने ठा. छतरसिंह कलकत्ता भी गया। दिसम्बर 7, 1911 को छतरसिंह सैलाना महाराजा जसवंतसिंह के साथ दिल्ली कारोनेशन दरबार में भी गया जहाँ उसे चांदी के पदक से सम्मानित

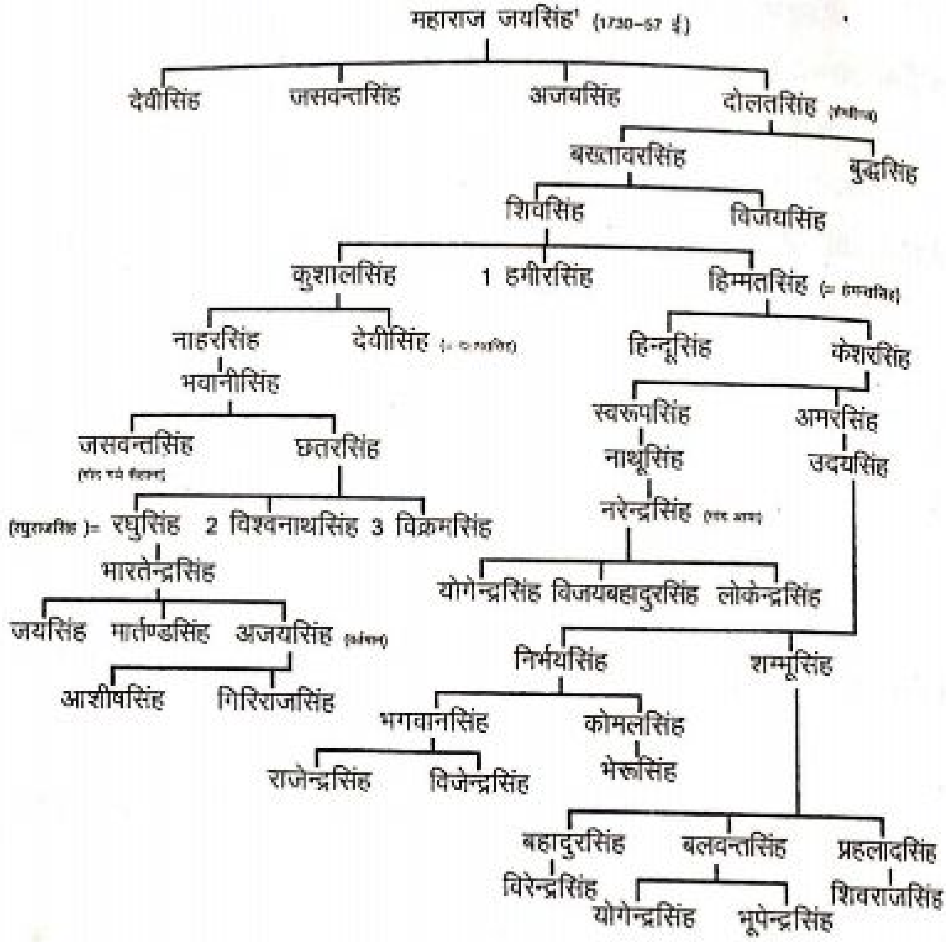
किया गया ।[10]

सैलाना स्टेट गजेटियर के अनुसार ई. सन् 1908 में ठिकाना की वार्षिक आमदनी 30,000 ब्रिटिश कलदार रुपये थी तथा सैलाना स्टेट को टांका के रूप में कितना रुपया भुगतान किया जाता था यह ज्ञात नहीं। इस ठिकाने के जागीरदारों को 'महाराज' की उपाधि प्राप्त थी। इस ठिकाने की जागीर के अन्तर्गत तब 5 गाँव सम्मिलित थे ।[11]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सैलाना स्टेट गजेटियर (1908), पृ. 5 ।
2. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 101 अ; ग्रंथ 16, पत्र 118 अ; सैलाना स्टेट गजेटियर, पृ. 3 ।
3. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 101 अ ।
4. गुरां ग्रंथ 16, पत्र 118 अ ।
5. गुरां ग्रंथ 16, पत्र 118 ब ।
6. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 102 अ–ब; ग्रंथ 16, पत्र 118 ब ।
7. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 102 ब; ग्रंथ 16, पत्र 118 ब; सैलाना स्टेट गजेटियर, पृ. 4 ।
8. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 102 ब; ग्रंथ 16, पत्र 118 ब ।
9. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 103 अ ।
10. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 103 अ ।
11. सैलाना स्टेट गजेटियर, पृ. 74 ।

रतनसिंहोत, ठिकाना – सेमलिया (सैलाना)



ठिकाना बिरमावल

सैलाना राज्य के अन्तर्गत ठिकाना 'बिरमावल'[1] रतलाम से 30 कि.मी. व सैलाना से 50 कि.मी. दूर दक्षिण–पूर्व दिशा में स्थित है। इस ठिकाने के जागीरदार रतनसिंहोत राठौड़ राजपूत हैं। इससे पहले यह ठिकाना पृथ्वीराजोत राठौड़ राजपूतों के अधिकार में था ।

पृथ्वीराज के पांचवें पुत्र बिहारीदास को सं. 1776 में बिरमावल की जागीर दी गयी थी ।[2] बिहारीदास को यह जागीर संभवतया रतलाम राज्य की ओर से दी गयी होगी, किन्तु जब रतलाम महाराजा मानसिंह ने संयुक्त राज्य के रूप में रतलाम पाया था तब उसी में से एक हिस्सा निकालकर मानसिंह ने सैलाना के जयसिंह को नए सिरे से दिया था उसमें बिरमावल[3] सैलाना में चला गया होगा। ठाकुर बिहारीदास के देवलोक होने के पश्चात दौलतसिंह सं. 1782 में गद्दी पर बैठा। ठाकुर दौलतसिंह के बाद इन्द्रसिंह गद्दी पर बैठा। ठाकुर इन्द्रसिंह के निःसंतान होने से रावटी के ठाकुर सूरजमल का तीसरा पुत्र नरसिंहदास[4] को गोद बैठाया व इन्द्रसिंह के देवलोक होने पर सं. 1814 में नरसिंहदास गद्दी पर बैठा। नरसिंहदास ने अपने द्वितीय पुत्र कीरतसिंह को भाई बांट की जागीर के अन्तर्गत 'बोला' गाँव की जागीर दी। ठाकुर नरसिंहदास के देवलोक होने के बाद सं. 1835 में उसका ज्येष्ठ पुत्र जोधसिंह गद्दी पर बैठा।[5]

ठाकुर जोधसिंह के बाद क्रमशः सं. 1854 में उम्मेदसिंह, उम्मेदसिंह के बाद सं. 1887 में गोपालसिंह, सं. 1912 में हिन्दूसिंह, तथा सं. 1946 में हिन्दूसिंह के बाद मोतीसिंह गद्दी पर बैठा ।[6] ठाकुर मोतीसिंह द्वारा अपने समय में अनेक निर्माण कार्य जिनमें सं. 1947 में मोती सागर तालाब, दरवाजा ऊपर एक बंगला सं. 1953 में, एक बाग सं. 1956 में तथा सं. 1966 में मोतीमहल आदि का निर्माण कराया गया।[7] ठाकुर मोतीसिंह एक कुशल प्रशासक के साथ–साथ धार्मिक सद्चरित्र का व्यक्ति भी था। वि. सं. 1967 में मोतीसिंह द्वारा चित्रकूट, प्रयाग, काशी, गयाजी, पुष्कर आदि

स्थानों की तीर्थ यात्रा की गयी । दिसम्बर 7, 1911 ई. में ठाकुर मोतीसिंह सैलाना महाराजा जसवंतसिंह के साथ दिल्ली दरबार ताजपोशी समारोह में गया जहाँ मोतीसिंह को चांदी के पदक से सम्मानित किया गया।[8]

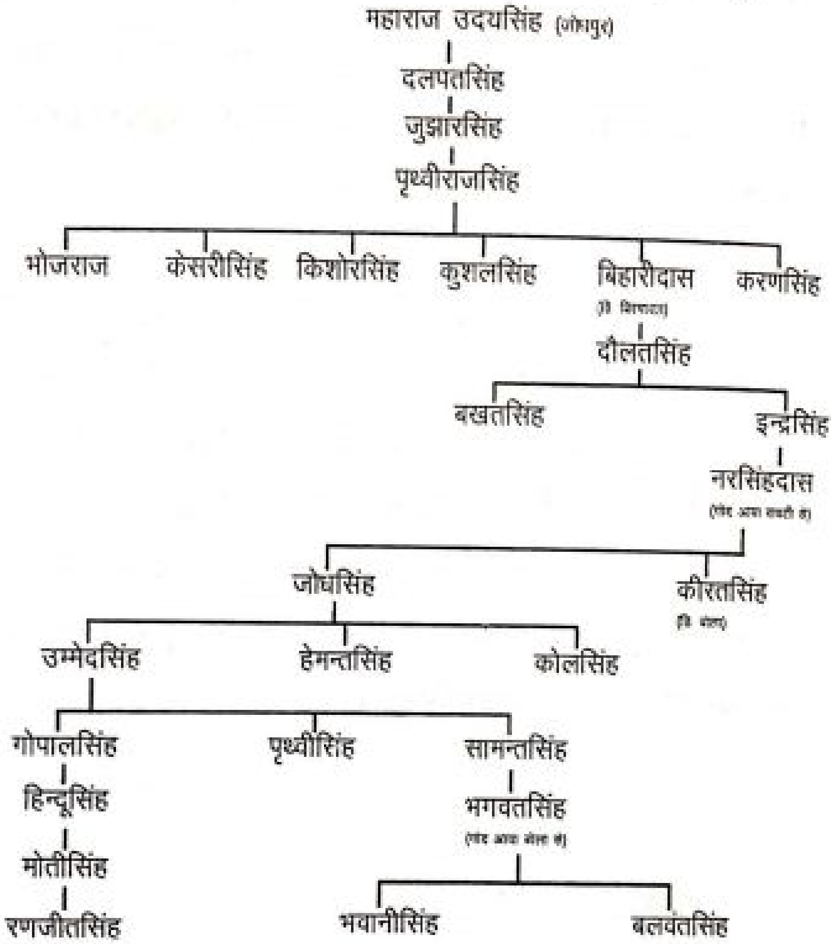
ठाकुर मोतीसिंह के देवलोक होने के बाद ठिकाना कुछ समय तक सैलाना सरकार की निगरानी में रहा और जब सैलाना महाराजा दिलीपसिंह का अपने परिवार सहित बिरमावल किसी कारणवश आना हुआ तब कनेरी के महाराज (अपने तृतीय भाई) रामचन्द्रसिंह को कनेरी के साथ ही बिरमावल की जागीर भी दी । गद्दीनशीनी व तलवार बंधाई सं. 1981 (ई. सन् 1924) में हुई।[9] और इस तरह पृथ्वीराजोत ठिकाना, रतनसिंहोत राठौड़ राजपूतों के अधिकार में चला गया ।

सैलाना स्टेट गजेटियर के अनुसार सन् 1908 में इस ठिकाने की वार्षिक आमदनी 20,000 ब्रिटिश कलदार रुपये थी । इस ठिकाने की जागीर के अन्तर्गत 3 गाँव सम्मिलित थे ।[10]

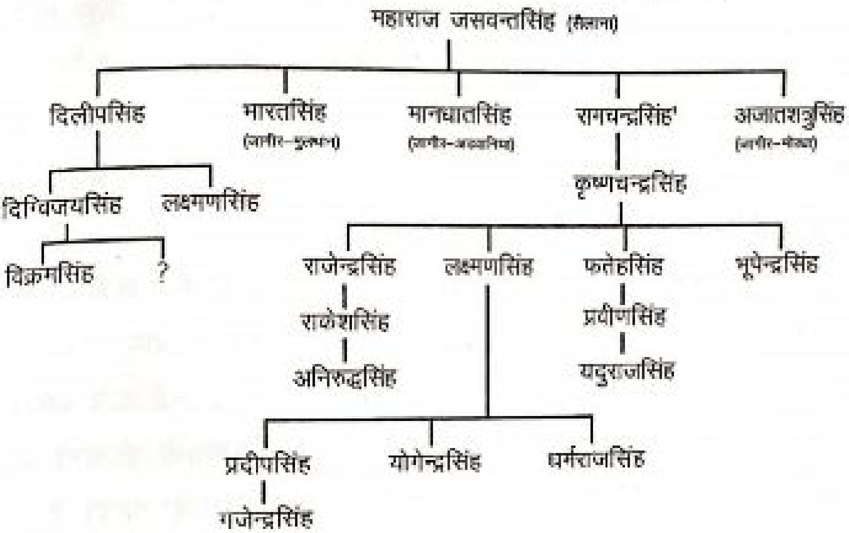
संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. गुरां ग्रंथों में 'भरमावल' लिखा हुआ है ।
2. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 217 अ ।
3. इसी जागीर विभाजन में बिरमावल, रावटी व कनेरी सैलाना राज्य में चले गये थे ।
4. गुरां ग्रंथ में कहीं नरसिंहदास की जगह नारायणदास लिखा है।
5. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 217 अ ।
6. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 217 अ–ब ।
7. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 217 ब ।
8. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 218 अ ।
9. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 100 ब ।
10. सैलाना स्टेट गजेटियर, पृ. 74 ।

पृथ्वीराजोत राठौड़, ठिकाना – बिरमावल (सैलाना)



रतनसिंहोत राठौड़, ठिकाना – बिरमावल (सैलाना)



1. महाराज रामचन्द्रसिंह को सर्वप्रथम बड़ोदा की जागीर प्रदान की गई थी, किन्तु उन्होंने इसे लेने से इंकार कर दिया था । इसके बदले में उन्होंने बिरमावल की जागीर लेना स्वीकार किया था । स्टेट गजेटियर सैलाना, वंशावली चार्ट ।

ठिकाना रावटी

सैलाना राज्य के अन्तर्गत ठिकाना 'रावटी' 23° $13'$ उत्तर तथा 74° $55'$ पूर्व देशान्तर पर सैलाना से 32 कि.मी. व रतलाम से 35 कि.मी. दूर दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित है। यह ठिकाना पहाड़ी भू–भाग पर बसा हुआ है। गाँव आर्थिक दृष्टि से समृद्ध है। पुराने निर्माण स्थलों का अभाव है। इस ठिकाने के जागीरदार पृथ्वीराजोत राठौड़ थे।

पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ' लिखते हैं कि 'रतलाम महाराजा छत्रसालजी के पौत्र मानसिंह के छोटे भाई जयसिंह ने वि.सं. 1787 (ई. सन् 1730) में अपनी जागीर रावटी में स्वतंत्र राज्य कायम किया। इसके बाद वि.सं. 1793 (ई. सन् 1736) में इन्हीं जयसिंह ने नवीन राजधानी सैलाना की स्थापना की।'[1] यहाँ रेउ ने रावटी की जागीर की स्थापना 1630 ई. में करना बताया है, जबकि अपने ग्रंथ के द्वितीय भाग[2] में जयसिंह को, काका प्रतापसिंह के मारे जाने के बाद ई. सन् 1716 में ही उनका उत्तराधिकारी बताकर रावटी पर अधिकार करना बता रखा है।

सैलाना और रतलाम राज्यों के गजेटियरों में इसके सम्बन्ध का कोई विवरण नहीं मिलता। सैलाना स्टेट की 'सावेनियर हिस्ट्री' में सैलाना राज्य के दृष्टिकोण से ही इस संबंध में घटना का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरे आधार ग्रंथ या पुराने कागज आदि देखने को नहीं मिलते हैं। उपर्युक्त दोनों राज्यों में इस बात पर काफी मतभेद रहे कि जयसिंह को प्रतापसिंह का हिस्सा (जागीर) किस हैसियत से मिला। प्रारंभ में जो हिस्से[3] छत्रसाल ने किये और उनमें से जो हिस्सा प्रतापसिंह को मिला था, प्रतापसिंह का दत्तक पुत्र बनकर जयसिंह उस विभाग का शासक बना या दिल्ली से लौटने पर मानसिंह ने जो संयुक्त राज्य (रतलाम) पाया उसी में से एक हिस्सा निकालकर मानसिंह ने जयसिंह को नए सिरे से दिया, इस प्रश्न पर कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती।[4]

सैलाना की तवारीख में लिखा है कि जयसिंह को उनके चाचा प्रतापसिंह ने गोद लिया था। परंतु जब प्रतापसिंह ने अपने भाई (जयसिंह के पिता) केसरीसिंह को मार डाला तब जयसिंह ने अपने पिता का बदला लेने को अपने काका प्रतापसिंह पर चढ़ाई कर दी। इस युद्ध में प्रतापसिंह मारा गया। जयसिंह रतलाम का राज्य अपने बड़े भाई मानसिंह को सौंप प्रतापसिंह की जागीर रावटी में चला गया।[5] कुछ भी हो, परंतु यह निश्चित है कि जयसिंह ने रावटी से जाकर ही सैलाना को अपनी राजधानी बनाया था।

जयसिंह रावटी को छोड़ सैलाना जा बसा तब जयसिंह द्वारा रावटी की जागीर पृथ्वीराजोत राठौड़ सूरजमल को दे दी गयी थी ।[6] ठाकुर सूरजमल के बाद नाथूराम, सालमसिंह[7] बख्तावरसिंह, लक्ष्मणसिंह, पहाड़सिंह, रुघनाथसिंह गद्दी पर बैठा ।

ठा. लक्ष्मणसिंह की रानी सीसोदिया सरसकुंवर ने वि.सं. 1899 में रावटी में गढ़ के आगे दरवाजा व दरवाजा के आगे मंदिर बनवाया तथा सं. 1908 आषाढ़ शुदी 3 को मंदिर का उद्यापन किया । इस मंदिर पर तब 2500 रुपये खर्च हुए थे । इस मंदिर में द्वारकाधीश की प्राण प्रतिष्ठा की गयी तथा इस मंदिर व बालभोग खर्च हेतु 10 बीघा जमीन दी थी ।[8]

ठाकुर रुघनाथसिंह के देवलोक होने के पश्चात वि.सं. 1929 फाल्गुन शुदी 9 को जसवंतसिंह गद्दी पर बैठा । वि.सं. 1949 चैत्र शुदी 11 को ठाकुर जसवंतसिंह देवलोक हुआ तब सैलाना महाराजा दुलेसिंह ने मऊ के ठाकुर दौलतसिंह को बुलाकर रावटी गोद बिठाया और मऊ ठिकाने को खालसा कर लिया गया। वि.सं. 1959 में दौलतसिंह भी देवलोक हो गया तब उसका पुत्र दलपतसिंह गद्दी पर बैठा। ठाकुर दलपतसिंह की प्रारंभिक शिक्षा अजमेर मेओ कालेज में हुई थी।

सं. 1964 को दलपतसिंह अजमेर में देवलोक हो गया तब दलपतसिंह के बे–औलाद होने से ठिकाना रावटी खालसा कर लिया गया।[9]

सैलाना महाराजा जसवंतसिंह (1895–1919 ई.) के.सी.आई. ने अपने तीसरे पुत्र मानधातासिंह (रतनसिंहोत) को भाई बांट की जागीर में ठिकाना रावटी जिल्ला समेत करमदी व सैलाना खास में हरिकुंड सहित दी, जो पहले पृथ्वीराजोतों की जागीरी में था।[10] ठिकाने द्वारा टांका का रुपया 250 कलदार वार्षिक निश्चित किया गया व मानधातासिंह को महाराज की पदवी से विभूषित किया गया।

ई0सन् 1911 में महाराज मानधातासिंह अपने पिता (सैलाना महाराजा जसवंतसिंह) के साथ दिल्ली ताजपोशी के दरबार में गया वहाँ पंचमजार्ज का शाही गोन (गाऊन) उठाने में ये भी शामिल हुआ।[11] सन् 1919 ई. को महाराजा जसवंतसिंह के निधन हो जाने के बाद और तात्कालिक अपने भ्राता दिलीपसिंह के सैलाना में गादीनशीन होने के पश्चात् मनमुटाव हो जाने से अपने पिता द्वारा प्राप्त भाई बांट की जागीर रावटी को छोड़कर मानधातासिंह अपने छोटे भाई अजातशत्रुसिंह[12] को लेकर नरसिंहगढ़ अपनी बहन शिवकुमारी के पास चला गया । तथा वहाँ से सन् 1921 ई. में बीकानेर महाराजा गंगासिंह के पास चला गया व वहाँ पर रेवेन्यु सेक्रेटरी पद पर नियुक्त हो गया।[12]

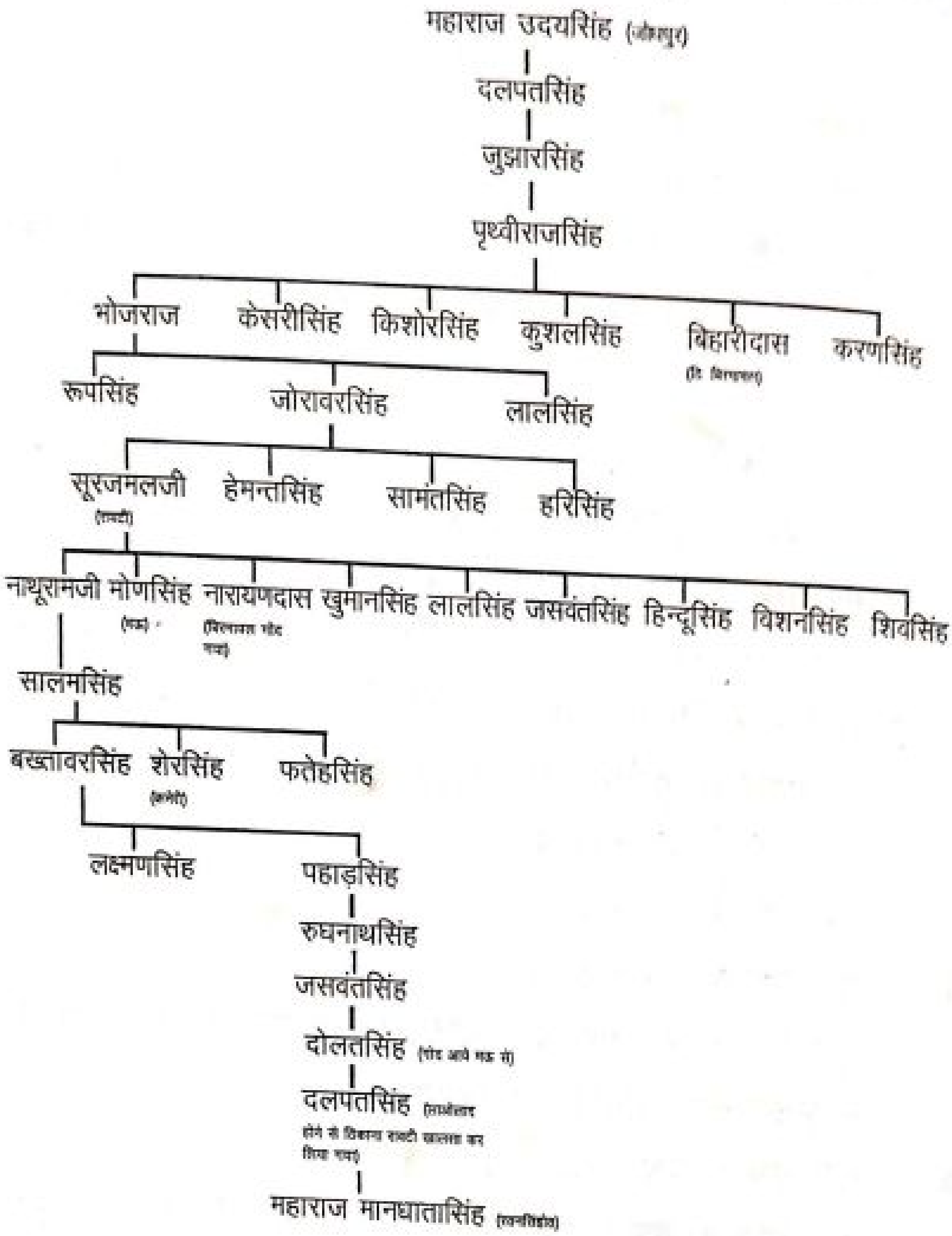
ई. सन् 1946 में ईडर के महाराजा हिम्मतसिंह ने अपने राज्य में मानधातासिंह को प्रधानमंत्री नियुक्त किया ।[13] मार्च 8, 1953 में मानधातासिंह का बम्बई में स्वर्गवास हो गया। इनके शादीशुदा रानी से कोई संतान नहीं थी । एक पासवानी संतान थी, जिसका नाम शालीवाहन था उसको बम्बई की जायदाद मिली।[14]

सैलाना स्टेट गजेटियर के अनुसार ई. सन् 1908 में इस ठिकाने की वार्षिक आमदनी 12,000 ब्रिटिश कलदार रुपये थी।[15]

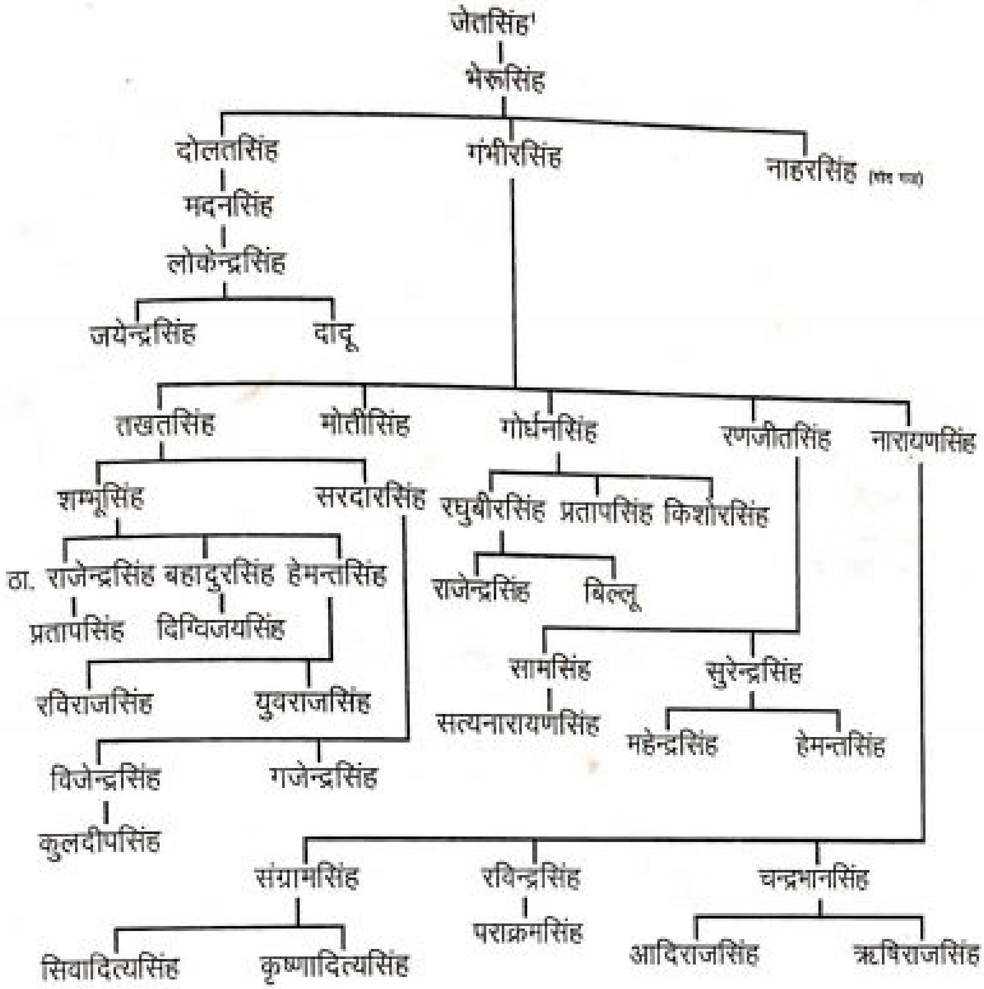
संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ, मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, पृ. 179 ।
2. मारवाड का इतिहास, भाग 2, पृ. 689, वंशावली ।
3. महाराजा छत्रसाल ने रतलाम राज्य की भूमि को तीन भागों में– पौत्र बैरीसाल को धामनोद, द्वितीय पुत्र केसरीसिंह को धराड़ और तृतीय पुत्र प्रतापसिंह को रावटी के परगने बांटे थे। रतलाम स्टेट गजेटियर, पृ. 8 ।
4. मालवा में युगान्तर, पृ. 117 ।
5. विश्वेश्वरनाथ रेउ, भारत के प्राचीन राजवंश, पृ. 416 ।
6. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 193 ब; ग्रंथ 9, पत्र 22 ब ।
7. ठाकुर सालमसिंह के समय जागीर को लेकर एक बखेड़ा हुआ था जिसमें ठिकाना जाता रहा किन्तु सं. 1930 फाल्गुन शुदी 8 को महाराजा दुलेसिंह ने जसवंतसिंह को पुनः लौटा दिया था, गुरां ग्रंथ 3, पत्र 194 ब ।
8. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 194 ब ।
9. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 195 अ ।
10. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 100 ब; जबकि सैलाना स्टेट गजेटियर पृ. 5 में अडवानिया जागीर देना लिखा है ।
11. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 100/1 ।
12. अजातशत्रु को भाई बांट की जागीर अन्तर्गत अडवानिया, गोरधनपुरा, जसनगर, भरोडा व सैलाना में मोतीमहल, कुआ व बीड मिला था, गुरां ग्रंथ 3, पत्र 100/2; सैलाना स्टेट गजेटियर पृ. 5 में मोर्दा देना लिखा है ।
13. गुरा ग्रंथ 3, पत्र 100/1 ।
14. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 100/2 ।
15. सैलाना स्टेट गजेटियर, पृ. 74 ।

ठिकाना – रावटी (सैलाना)


महाराज उदयसिंह (जोधपुर)
दलपतसिंह
जुझारसिंह
पृथ्वीराजसिंह
भोजराज
केसरीसिंह
किशोरसिंह
कुशलसिंह
बिहारीदास
करणसिंह
रूपसिंह
जोरावरसिंह
लालसिंह
सूरजमलजी
(रावटी)
हेमन्तसिंह
सामंतसिंह
हरिसिंह
नाथूरामजी
मोणसिंह
नारायणदास
खुमानसिंह
लालसिंह
जसवंतसिंह
हिन्दूसिंह
विशनसिंह
शिवसिंह
सालमसिंह
बख्तावरसिंह
शेरसिंह
फतेहसिंह
लक्ष्मणसिंह
पहाड़सिंह
रुघनाथसिंह
जसवंतसिंह
दोलतसिंह
दलपतसिंह
महाराज मानधातासिंह

पृथ्वीराजोत राठौड़, ठिकाना – रावटी (सैलाना)



1. इनका पृथ्वीराजोत राजपरिवार से कोई संबंध नहीं मिलता है अथवा इनका जुड़ाव वहाँ से ज्ञात नहीं हो सका है ।

ठिकाना कनेरी

सैलाना राज्य के अन्तर्गत ठिकाना 'कनेरी' के जागीरदार पृथ्वीराजोत राठौड़ थे, किन्तु अब यह ठिकाना रतनसिंहोत का है । कनेरी रतलाम से 10 कि.मी. दूर दक्षिण–पश्चिम में स्थित है।

ठिकाना रावटी के ठाकुर सालमसिंह के द्वितीय पुत्र शेरसिंह को कनेरी की जागीर दी गयी थी। ये रावटी के भाई थे।[1] सैलाना में हयात खाँ के द्वारा एक उपद्रव (बखेड़ा) कर दिया तब सैलाना महाराजा लक्ष्मणसिंह सैलाना छोड़ रावटी चला गया। कनेरी के ठाकुर शेरसिंह जो महाराजा की सेवा में था, ने स्वयं सैलाना जाकर हयात खाँ को युद्ध में परास्त कर उसे सैलाना से बाहर निकाल दिया और शेरसिंह ने सैलाना में सुशासन स्थापित कर महाराजा लक्ष्मणसिंह को सैलाना चलने को कहा। तब लक्ष्मणसिंह ने उसके अदम्य साहस को देखकर प्रसन्नतापूर्वक थाने जागीर में बिलपांक दी और एक आदेश कर पट्टा कर दिया।[2] सं. 1869 को पुनः बखेड़ा हो गया जिसमें शेरसिंह काम आया। उसका चबूतरा अमझेरा के ठिकाना सन्दला के बाग में है। ठाकुर शेरसिंह की जब मृत्यु हुई थी तब उसके दोनों पुत्र मोहब्बतसिंह व हेमन्तसिंह अपने मामा के पास रहते थे। उन्हें रतलाम बुलाया गया और रतलाम की तरफ से जागीर में बीबरोड गाँव देने लगे किन्तु यह समाचार जब सैलाना महाराजा लक्ष्मणसिंह ने सुना तब कुछ आदमी भेजकर मोहब्बतसिंह को सं0 1897 में बिलपांक की जगह भरोड़ा गाँव मुंडकटी में दिया और उसका पट्टा कर दिया।[3]

सं. 1887 में महाराजा नाहरसिंह ने मोहब्बतसिंह को जमुण्या गाँव देना चाहा किन्तु मोहब्बतसिंह की इच्छा अनुरूप जमुण्या की जगह कनेरी गाँव पुनः जो उसके पिता के समय में था लौटा दिया।[4] ठाकुर मोहब्बतसिंह के कोई संतान न होने से हेमन्तसिंह के द्वितीय पुत्र खुमानसिंह को मोहब्बतसिंह के गोद बिठाया गया। ठाकुर मोहब्बतसिंह के देवलोक होने

के पश्चात खुमानसिंह सं. 1902 वैशाख शुदी 5 शुक्रवार को गद्दी पर बैठा।[5]

ठाकुर खुमानसिंह के देवलोक होने के पश्चात सं. 1915 भादवा बदी 3 को पद्मसिंह गद्दी पर बैठा। ठाकुर पद्मसिंह के निःसंतान देवलोक होने पर सैलाना महाराजा दुलेसिंह ने 'बोला' से मोतीसिंह को लाकर कनेरी की गद्दी पर बैठाया। सं. 1963 (ई. सन् 1906) में मोतीसिंह के देवलोक होने व उसके बे–औलाद होने से ठिकाना कनेरी खालसा कर लिया गया।[6]

सैलाना महाराजा जसवंतसिंह के.सी.आई.ई. ने अपने चौथे पुत्र रामचन्द्रसिंह को भाई बांट की जागीर में से खालसा जागीर कनेरी व गाँव तीतरी, माथुरी, सैलाना में मेहता वाला कुआ आदि दी।[7] टांके का रुपया 9 निश्चित किया गया तथा महाराज की पदवी से विभूषित किया गया। ठिकाना कनेरी जो पहले पृथ्वीराजोतों का था वह अब रतनसिंहोत राठौड़ राजपूतों के अधिकार में आ गया। महाराज रामचन्द्रसिंह की शिक्षा दीक्षा मेओ कालेज अजमेर में हुई थी। सं. 1966 (ई. सन् 1909) में महाराज रामचन्द्रसिंह ने कनेरी में आकर अधिकार किया। पुत्र कृष्णचन्द्रसिंह का जन्म सं. 1976 फाल्गुन शुदी 15 गुरुवार (ई. सन् 1919) को हुआ। जो अपने पिता रामचन्द्रसिंह के बाद गद्दी पर बैठा।[8]

सैलाना स्टेट गजेटियर के अनुसार ई. सन् 1908 में इस ठिकाने की वार्षिक आमदनी 6,000 ब्रिटिश कलदार रुपये थी। इस ठिकाने की जागीर के अन्तर्गत 6 गाँव सम्मिलित थे।[9]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 195 ब; ग्रंथ 16, पत्र 220 अ ।
2. इस आदेश का पट्टा सं. 1854 वैशाख शुदी 3 को किया गया, गुरां ग्रंथ 3, पत्र 196 अ; ग्रंथ 16, पत्र 220 अ ।
3. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 196 अ; ग्रंथ 16, पत्र 220 अ ।
4. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 196 ब ।
5. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 195 ब; ग्रंथ 16, पत्र 220 अ ।
6. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 196 ब; ग्रंथ 16, पत्र 220 अ ।
7. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 100 ब; किन्तु सैलाना स्टेट गजेटियर पृ. 5 में बड़ोदा की जागीर देना लिखा है ।
8. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 100 ब ।
9. सैलाना स्टेट गजेटियर, पृ. 74 ।

पृथ्वीराजोत राठौड़, ठिकाना – कनेरी (सैलाना)

- सालमसिंह (रावटी के माई)
  - शेरसिंह
    - मोहब्बतसिंह
      - खुमाणसिंह
        - पद्मसिंह
          - मोतीसिंह ([illegible])
    - हेमन्तसिंह
      - प्रतापसिंह
      - खुमाणसिंह
      - अमरसिंह
      - गमेरसिंह

नोट – निसंतान होने से कनेरी खालसा कर लिया गया ।

रतनसिंहोत राठौड़, ठिकाना – कनेरी (सैलाना)

- जसवन्तसिंह (सैलाना, 1895 ई.)
  - दिलीपसिंह (सैलाना)
  - भारतसिंह ([illegible])
  - मानधातासिंह ([illegible])
  - रामचन्द्रसिंह (कनेरी)
    - कृष्णचन्द्रसिंह
      - राजेन्द्रसिंह
        - राकेशसिंह
      - लक्ष्मणसिंह
        - प्रदीपसिंह
      - फतेहसिंह
        - प्रवीणसिंह
      - भूपेन्द्रसिंह ([illegible])
        - हेमेन्द्रसिंह
        - मंजीतसिंह
  - अजातशत्रुसिंह ([illegible])

ठिकाना चन्दोड़िया

सैलाना राज्य के अन्तर्गत ठिकाना 'चन्दोड़िया' सैलाना से 10 कि.मी. व रतलाम से 20 कि.मी. दूर उत्तर–पश्चिम दिशा में पंचेड़ ठिकाने के पास स्थित है। इस ठिकाने के जागीरदार भोपतोत राठौड़ राजपूत हैं।

ठिकाना चन्दोडिया के पाटवी खेजड़िया (सीतामऊ) है। तथा इनका ठिकाना लोद से निकलता है जो इनका प्रारंभिक ठिकाना है। लोद के ठाकुर नाथसिंह के द्वितीय पुत्र रुघनाथसिंह को सं. 1883 (ई. सन् 1826) में चन्दोडिया की जागीर सैलाना राज्य की ओर से दी गयी।[1] ठाकुर रुघनाथसिंह के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र गमेरसिंह गद्दी पर बैठा। ठाकुर गमेरसिंह धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था, सं. 1883 में गमेरसिंह तीर्थ यात्रा हेतु गंगाजी गया। सं. 1912 फाल्गुन शुदी 15 शुक्रवार को गमेरसिंह देवलोक हुआ तत्पश्चात उसका पुत्र नवोनिधसिंह चैत्र बदी 10 के दिन गद्दी पर बैठा। सैलाना महाराजा दुलेसिंह चन्दोडिया आया और तलवार बंधाकर परम्परा पूरी की। इस अवसर पर महाराजा दुलेसिंह एक दिन ठिकाने में ही रुका ।[2]

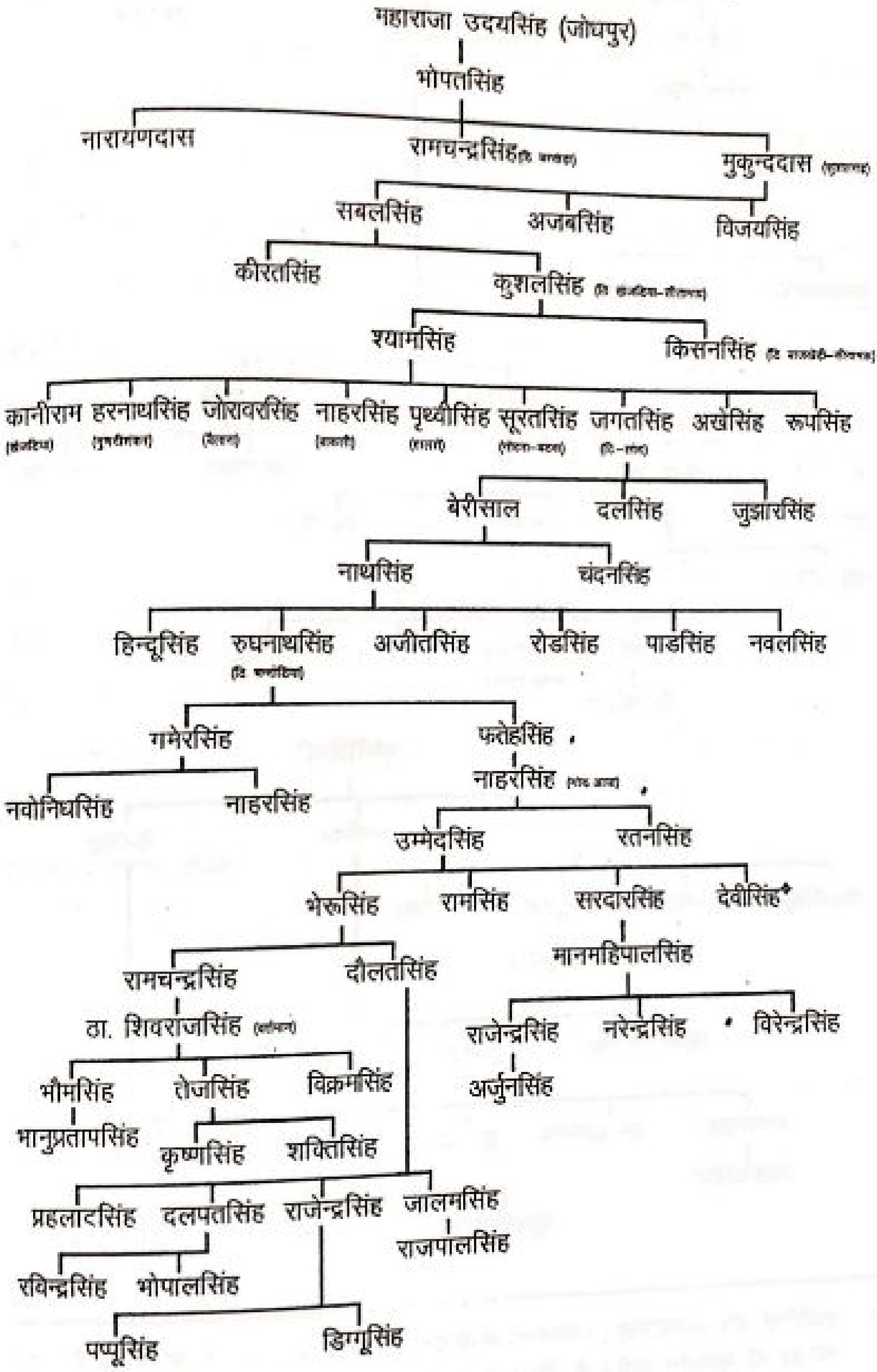
ठाकुर नवोनिधसिंह के बाद गद्दी पर कौन बैठा यह गुरां ग्रंथों से ज्ञात नहीं होता क्योंकि गुरां ग्रंथ के अनुसार नवोनिधसिंह बे–औलाद था और उसके बाद गमेरसिंह का द्वितीय पुत्र नाहरसिंह जो फतेहसिंह को गोद चला गया था गद्दी पर बैठने का उल्लेख मिलता है।[3] ठाकुर नाहरसिंह के बाद उम्मेदसिंह गद्दी पर बैठा।[4]

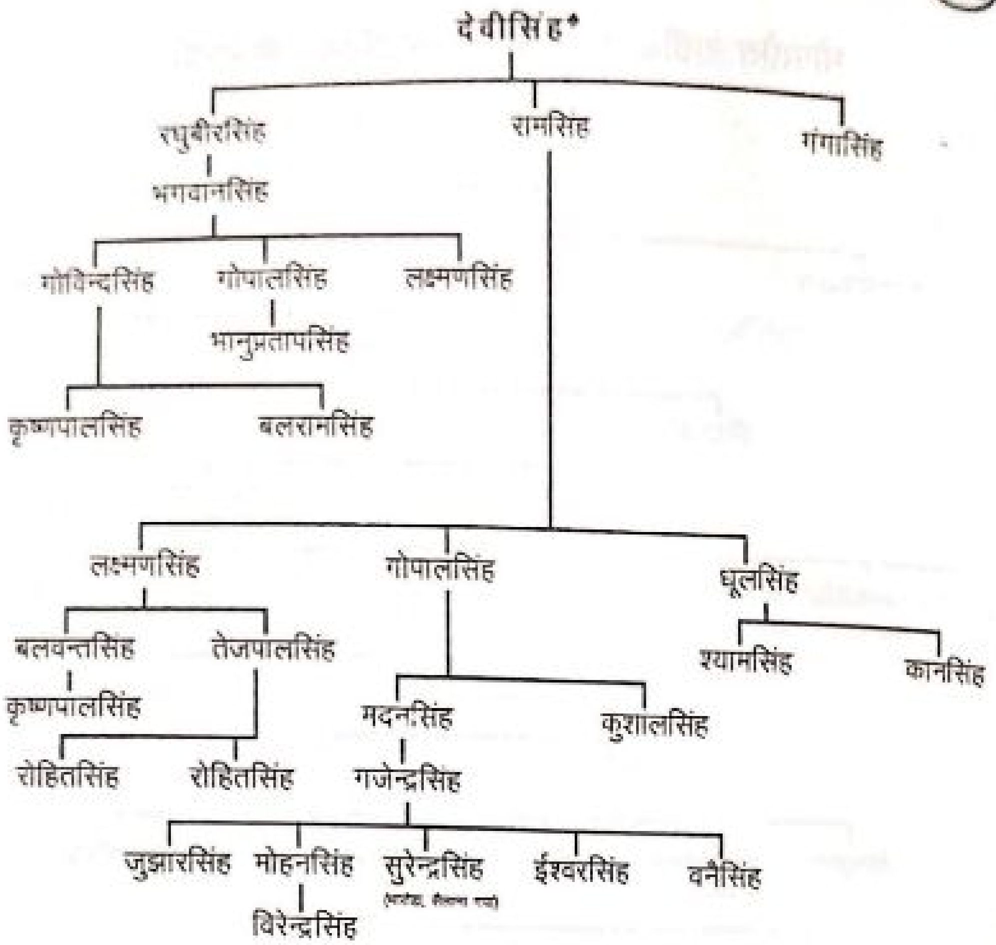
सैलाना स्टेट गजेटियर (1908) के अनुसार ठाकुर उम्मेदसिंह के समय ठिकाने की वार्षिक आमदनी 2,000 ब्रिटिश कलदार रुपये थी। इस ठिकाने के अन्तर्गत एक गाँव सम्मिलित था।[5]

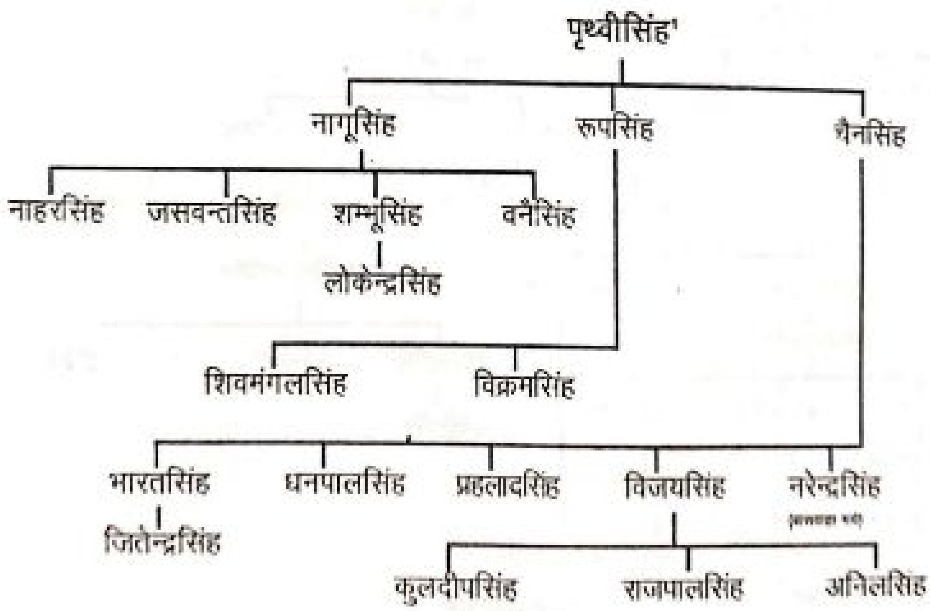
संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 268 अ ।
2. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 268 अ ।
3. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 268 ब ।
4. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 268 ब; सैलाना स्टेट गजेटियर, पृ. 74 ।
5. सैलाना स्टेट गजेटियर, पृ. 74 ।

भोपतोत राठौड़, ठिकाना – चन्दोड़िया (सैलाना)







1. पृथ्वीसिंह और उम्मेदसिंह (बन्दोडिया) दोनों एक ही समय लोध (जावरा) से निकले हैं । यह परिवार भी भोपतोत राठौड़ है, किन्तु इनका संबंध जागीरदार परिवार से नहीं है ।

ठिकाना कोटड़ा

सैलाना राज्य के अन्तर्गत ठिकाना 'कोटड़ा' सैलाना से 3 कि.मी. दक्षिण–पश्चिम दिशा में रतलाम–बांसवाड़ा रोड पर स्थित है। यह ठिकाना यहाँ के तीर्थस्थल छोटे केदारेश्वर व बड़े केदारेश्वर के बीच स्थित है। इस ठिकाने के जागीरदार भोपतोत राठौड़ राजपूत हैं।

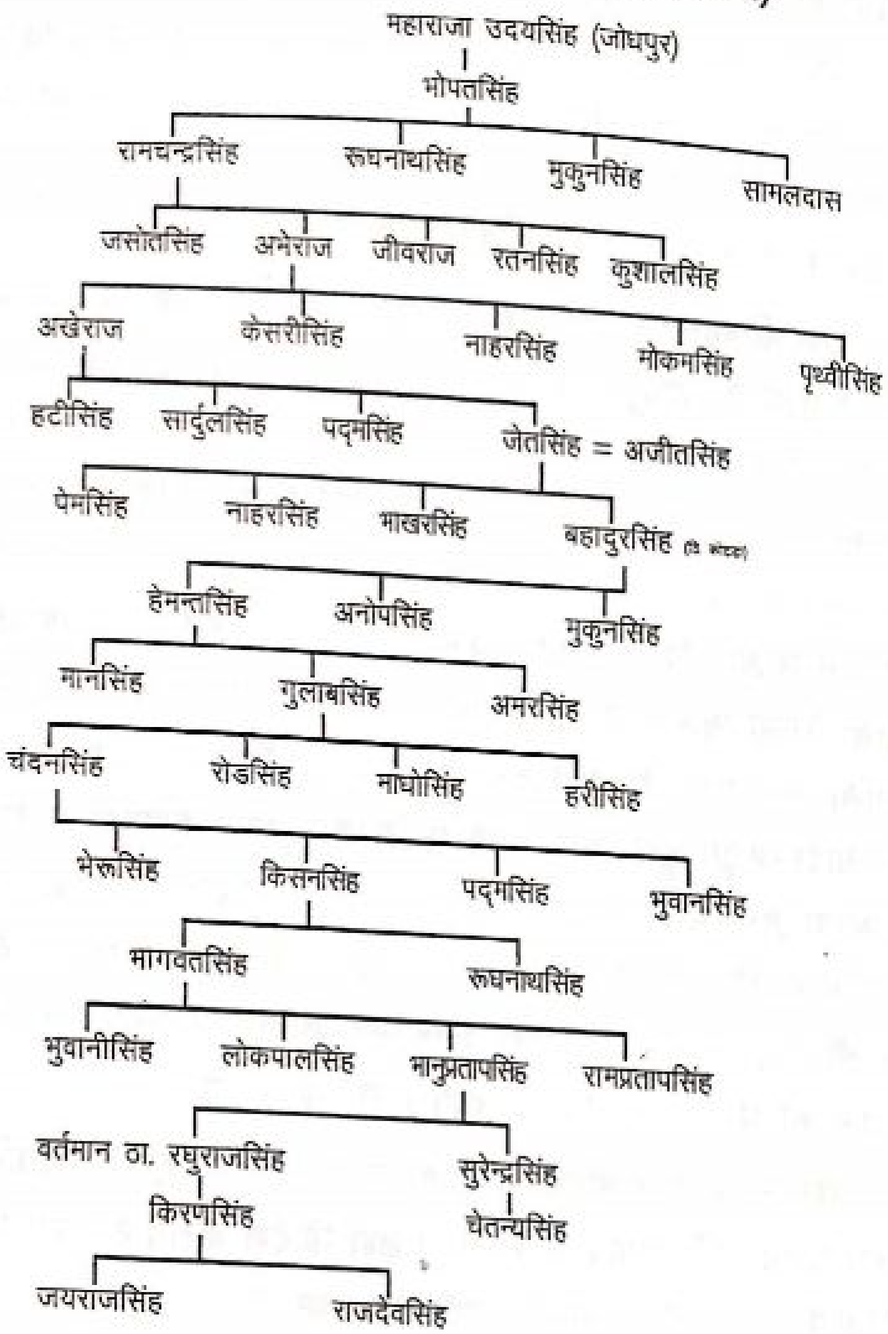
इस ठिकाने का निकास रियावन–कालूखेड़ा के बीच स्थित कन्सेर से हुआ है। ठाकुर जेतसिंह के चौथे पुत्र बहादुरसिंह को कोटड़ा की जागीर सैलाना राज्य की ओर से दी गयी थी।[1] ठाकुर बहादुरसिंह के बाद हेमन्तसिंह, गुलाबसिंह, चंदनसिंह, किसनसिंह, भागवतसिंह गद्दी पर बैठा। ठाकुर भागवतसिंह के समय में सैलाना महाराजा दुलेसिंह ने टांके के रुपये में से 200 (दो सौ) रुपये कम कर दिये थे, जिसका विवरण कुछ इस तरह लिखा मिलता है – "सैलाना महाराजा दुलेसिंह लीखावता भाई किसनसिंह भगोतसिंहजी ने कोटड़ा का ने लीख दीयो के थांके गांम को टांको ज्यादा मालूम हुवो, अण सबब सू सिरकार प्रवस फुरमाया ने टांका में सू रुपया 200 अखेर रुपया दोय सो सीके सालमसाही सं. 1920 का साल सूं माफ कीदा है, सो साल दर साल पुस्त–दर–पुस्त पाल्यां जासी। होकम श्री हजुर मारफत कोठारी चनणसिंह की छे, पंचोली जीवणराम पन्नालाल का छे–श्रावण सुदी 5 बुधवार सं. 1919 का।"[2]

सैलाना स्टेट गजेटियर (1908) के अनुसार ठाकुर भागवतसिंह के समय ठिकाने की वार्षिक आमदनी 1,200 ब्रिटिश कलदार रुपये थी। इस ठिकाने के अन्तर्गत एक गाँव सम्मिलित था।[3]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. गुरां ग्रंथ 9, पत्र 27 अ; ग्रंथ 11, पत्र 14 ब।
2. गुरां ग्रंथ 3, पत्र 236 अ।
3. सैलाना स्टेट गजेटियर, पृ. 74।

भोपतोत राठौड़, ठिकाना – कोटड़ा (सैलाना)



***